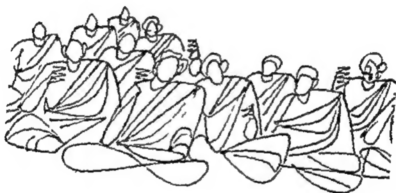


अवसर



पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२

अवसर

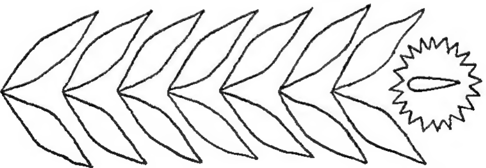


नरेन्द्र कोहली

मूल्य सोलह रुपये/ दूसरा सस्करण १६७८/ प्रकाशक पराग प्रकाशन ३/११४ कण गली विश्वासनगर शाहदरा दिल्ली ११००३२/मुद्रक भारती प्रिंटस दिल्ली ११ ०३२

AVSAR (*Novel*) Narendra Kohli Rs 16 00

लखनऊ के तीन महानागरिकों—
अमृतलाल नागर
यशपाल
तथा
भगवतीचरण वर्मा
को सादर



अवसर

१

सम्राट की वृद्ध आंखों में सर्प की-सी फूत्कार थी।

"हु !"

बस एक 'हु'। उससे अधिक दशरथ कुछ नहीं कह सके।

ऐसा क्रोध उन्हें कभी-कभी ही आता था। किंतु आज ! क्रोध कोई सीमा ही नहीं मान रहा था। आंखें जल रही थीं, नथुने फड़क रहे थे, और उस सन्नाटे में जैसे तेज सांसों की सांय-सांय भी सुनाई पड़ रही थी।

नायक भानुमित्र दोनों हाथ बांधे सिर झुकाए स्तब्ध खड़ा था। सम्राट की अप्रसन्नता की आशंका उसे थी। वह बहुत समय तक सम्राट के निकट रहा था और उनके स्वभाव को जानता था। किंतु उनका ऐसा प्रकोप उसने कभी नहीं देखा था। सम्राट का यह रूप अपूर्व था। वैसे वह यह भी समझ नहीं पा रहा था कि सम्राट की इस असाधारण स्थिति का कारण क्या था। उसे विलंब अवश्य हुआ था, किंतु उससे ऐसी कोई हानि नहीं हुई थी कि सम्राट इस प्रकार भभक उठें। वह अयोध्या के उत्तर में स्थित सम्राट की निजी अश्वशाला में से कुछ श्वेत अश्व लेने गया था, जिनकी आवश्यकता अगले सप्ताह होने वाले पशु-मेले के अवसर पर थी। यदि अश्व प्रातः राजप्रासाद में पहुंच जाते, तो उससे कुछ विशेष नहीं हो जाता, और संध्या समय तक रुक जाने से कोई हानि नहीं हो गयी... किंतु सम्राट...

वह अपने अपराध की गंभीरता का निर्णय नहीं कर पा रहा था।

सम्राट के कुपित रूप ने उसके मस्तिष्क को जड कर दिया था। सम्राट के मुख से किसी भी क्षण उसके लिए कोई कठोर दड उच्चरित हो सकता था उसका इतना साहस भी नही हो पा रहा था कि वह भूमि पर दडवत लेटकर सम्राट से क्षमा-याचना कर

सहसा सम्राट जैसे आप मे आए। उन्होंने स्थिर दष्टि से उस देखा और बोले आओ। विश्राम करो।'

भानुमित्र की जान म जान आयी। उसने अधिक-से-अधिक झुककर नम्रतापूवक प्रणाम किया और बाहर चला गया।

भानुमित्र के जाते ही दशरथ का क्रोध फिर अनियत्रित हो उठा मस्तिष्क तपने लगा आभास तो उन्हे पहल भी था, किंतु इस सीमा तक

क्या अथ है इसका ?

दशरथ ने अश्व मगवाए थे। अश्व रात म ही अयोध्या के नगरद्वार के बाहर विश्रामालय म पहुच गए थे, किंतु प्रात उन्हें अयोध्या म घुसने नही दिया गया। नगरद्वार प्रत्येक आगतुक के लिए बद था—क्योकि महारानी कैकेयी के भाई केकय के युवराज युधाजित अपने भाजे राजकुमार भरत और शत्रुघ्न को लेकर अयोध्या से केकय की राजधानी राजगह जान वाले थे। नगरद्वार बद पथ बद हाट बद—जब तक युधाजित नगर द्वार पार न कर लें तब तक किसी का कोई काम नही हो सकता

किसी का भी नही।

दशरथ का काम भी नही।

तब तक सम्राट के आदेश स घोडे लेकर आने वाला नायक भी बाहर ही रुका रहेगा।

सम्राट का काम रुका रहेगा क्याकि युधाजित उस पथ स होकर नगरद्वार से बाहर जान वाला था। अपनी ही राजधानी म सम्राट की यह अवमानना!

किसने किया यह साहस ? नगर रक्षक सनिक टुकडियो ने। कसे कर सके वे साहस ? इसलिए कि वे भरत के अधीनस्थ सनिक हैं। वे सनिक जानत हैं कि भरत राजकुमार होते हुए भी सम्राट से अधिक महत्त्वपूण

है क्योंकि वह कैकेयी का पुत्र है। युधाजित सम्राट से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वह कैकेयी का भाई है

कैकेयी!

कसा बाधा है कैकेयी ने दशरथ को!

सम्राट् की आखें कहीं अतीत म देख रही थी

कोसल की सेनाए राजगृह में जा घुसी थी। राजप्रासादों को घेर लिया गया था, और केकय के राज-परिवार का प्रत्येक सदस्य बांधकर दशरथ के सम्मुख लाया गया था। केकय का राज-परिवार दुबल था, इसलिए दशरथ ने उन्हें बाधकर अपने सम्मुख मगवाया था—पर कैकेयी को देखते ही दशरथ दुबल पड गए थे, और तब कैकेयी ने उन्हें बाध लिया था। दशरथ कैकेयी की प्रसन्नता पाने के लिए कुछ भी देने को तैयार थे कुछ भी कर गुजरने को—और तब दशरथ को केकय-नरेश ने बाधा था 'कैकेयी का पुत्र ही कोसल का युवराज होगा।' दशरथ बधे थे प्रसन्नता-पूर्वक। पर तब दशरथ ने इस पक्ष पर विचार नहीं किया था।

केकय-नरेश अपनी पराजय को कभी न भूले होंगे। युधाजित को अपनी किशोरावस्था की एक एक बात याद होगी। उसने उन बातों को सायास याद रखा होगा। अपने मन म दशरथ के विरुद्ध विष को जीवित रखने उसे पोषित और विकसित करने का प्रत्येक प्रयत्न किया होगा। उसने वर्षों स्वय को उसी ताप म तपाया होगा, ताकि अवसर आते ही वह दशरथ को अपमानित करे।

आज अयोध्या म कैकेयी महारानी है। भरत युवराज न सही, युवराज प्राय है। सेना की अनेक महत्वपूर्ण टुकडिया उसके अधीन हैं। कैकयी का मवधी पुष्कल सचिव है। केकय का राजदूत अयोध्या म विशेष आदर सम्मान तथा स्थिति का स्वामी है। उसके पास सम्राट की अनुमति से अग रक्षकों की विशाल सेना है—कितनी शक्तिशालिनी है कैकेयी! उसकी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष-छाया मात्र पान वाला सैनिक भी दशरथ के नायक को रात भर अयोध्या के बाहर रोके रख सकता है।

ऐसा नहीं है कि दशरथ ने आज पहली बार कैकेयी की शक्ति का अनुभव किया हो—उसका आभास उन्हें विवाह के पश्चात् अयोध्या लौटते

ही मिलने लगा था। और वह शक्ति क्रमश बढ़ी ही है कम नहीं हुई। अनेक बार दशरथ का अपने सम्मुख ही नहीं दूसरो के सम्मुख भी अपमानित होना पडा है किंतु उन्होंने आज तक कैकेयी की शक्ति को अपनी पत्नी की शक्ति मानने का भ्रम पाला है—पर आज वे देख रहे हैं कैकेयी की शक्ति युधाजित की बहन की शक्ति है। भरत की शक्ति दशरथ के पुत्र की नहीं, युधाजित के भाजे की शक्ति है—और युधाजित को अयोध्या म इतना शक्तिशाली नहीं होना चाहिए

युधाजित से उनका सबध, कैकेयी से सबध होने स पहले का है। वह सबध राजनीतिक सबध है—विजयी के लौह शृखलाओ और पराजित की कलाइयों का सबध। बधे हुए हाथो और झुके हुए सिर वाले अपमानित किशोर युधाजित को दशरथ कैसे भूल गए? वे कैसे भूल गए कि नय सबधो के बन जाने स पुराने सबध मिट नहीं जाते। कैकेयी से दाम्पत्य का नया सबध हो जाने से, युधाजित से पुराना सबध कैसे समाप्त हो सकता है। दशरथ भूल भी जाए पर युधाजित कैसे भूलेगा?

दशरथ को पहले देखना चाहिए था कि अयोध्या म उनकी आखो के सम्मुख, सत्ता हथियाने का कैसा खेल खेला जा रहा है। वे कैकेयी के सौन्दर्य और यौवन-सपन्नता की ओर लोलुप दृष्टि स ताकते रहे। लोलुप दृष्टि अपना विवेक खो बैठती है। वे कैसे देखते कि कैकेयी को प्राप्त करने की प्रक्रिया म उनके हाथो म से क्या खिसकता जा रहा है

और अभी तो दशरथ सम्राट हैं—चाहे कटे हुए हाथो वाले। पर कैकेयी के पिता को दिए गए वचन के अनुसार यदि उन्होंने आधिकारिक रूप स सत्ता भरत को सौंप दी, तो? भरत की शक्ति का अथ है, युधाजित की शक्ति। जब शक्ति दशरथ के हाथ म थी और युधाजित बाधकर उनके सामने लाया गया था, तो दशरथ ने उसके कठ पर खड्ग रखकर, उससे अभद्र व्यवहार किया था। यदि उनकी इच्छा हुई होती तो व खड्ग दबा कर युधाजित के कठ म छिद्र भी कर सकते थ। यदि भरत के हाथो म सत्ता आने पर, युधाजित भी उतना ही शक्तिशाली

दशरथ का कठ सूख गया। कठ म स्थान-स्थान पर खड्ग की नोकें उग आयी थीं। कठ की नलिया जैसे जल रही थी, और रक्त झरने सा फट

कर बाहर आने को था

दशरथ के हाथ-पैर ठडे हो गये। वर्ण पीला पड गया। उन्होंने माथे पर हाथ फेरा—माथा ठडा और पसीने से गीला था। उन्हें लगा कि वे एक भयकर स्वप्न देख रहे हैं—वे पहाड की एक ऊची चोटी से नीचे फेंक दिए गए हैं। वे बडी तीव्र गति से सहसा हाथ गहरी खड्ड में गिरते जा रहे हैं। वे देख रहे हैं कि नीचे गिरते ही उनकी एक एक हड्डी चूर हो जाएगी। पर वे कुछ नहीं कर सकते। उनका शरीर जड हो चुका है। वे हाथ-पैर हिलाना चाहते हैं पर हिला नही पाते। वे चीखना चाहते हैं किंतु उनके कठ से ध्वनि नही निकली। सारा शरीर जड हो गया है बस आखें खुली हैं और देख रही हैं। मस्तिष्क सक्रिय है और अनुभव कर रहा है

बडी देर तक दशरथ उसी स्तभित दशा म बैठे रहे, और सहसा वे सजग हुए—निश्चित रूप से वे बहुत घबराए हुए ही नही, डरे हुए भी थे। मन बार-बार कह रहा था कुछ कर दशरथ! यही अवसर है नही तो बहुत देर हो जाएगी।' पर उनका मन उस छोटे बालक के समान था जो हाथ म पूरी ईट लिये हिंस्र भेडिए के सम्मुख खडा सोच रहा था—ईंट न मारू तो यह मुझे खाने म कितनी देर लगाएगा और मारू तो यह मर जाएगा या कुपित होकर मुझे और भी जल्दी खा जाएगा? भेडिए की आखो म क्रोध था उसकी लाल-लाल हिंस्र तथा लोलुप जीभ मुह से बाहर लटक रही थी, बडे बडे तीखे श्वेत दाता की चमक बढ़ती जा रही थी

भेडिया मुझे खाएगा अवश्य, मैं ईट मारू या न मारू

दशरथ की चिंता बढती जा रही थी

ईट मारू?

न मारू?

सम्राट् को राज-सभा मे आने मे विलब हुआ था।

विलब से आना सम्राट् का नियम नही था। अपवादस्वरूप ही ऐसा होता था। जब कभी ऐसा होता था, सम्राट जल्दी जल्दी लबे लब डग उठाते हुए, सभा म आते थे और सिंहासन पर बैठते ही बडी शालीनता से खेद प्रकट करते थे। उनका सारा व्यवहार अतिरिक्त रूप से विनीत और

नम्र होता था। विलंब से आने के कारण सभासदों को हुई असुविधा की क्षतिपूर्ति का प्रयत्न अंत तक चलता रहता था।

आज वैसा कुछ भी नहीं हुआ। सम्राट विलंब से आए थे, पर न कोई जल्दी थी न कोई संकोच। वे स्थिर डगों से दृढ़ चाल चलते हुए आए और जब सिंहासन पर बैठकर उन्होंने आँखें उठाईं तो सबने देखा उनकी आँखें थकी किंतु गर्वक थीं—संभवतः अपनी किसी चिंता के कारण सम्राट रात भर सो नहीं पाए थे।

किन्हीं कारणों से सम्राट को विलंब हुआ महामंत्री ने सम्राट को चिंतित देखकर बड़े नम्र ढंग से अपनी बात आरंभ की। अपेक्षा थी कि सम्राट कहेंगे हाँ महामंत्री! चिंतित था रात भर सो नहीं पाया

किंतु सम्राट ने महामंत्री की ओर दृष्टि उठाई तो उनके चेहरे का आवरण बहुत कठोर था। उतने ही कठोर स्वर में उन्होंने कहा सम्राट मैं हूँ। राज परिषद का समय मेरी इच्छा से निश्चित होता है।'

महामंत्री ने आश्चर्य से सम्राट को देखा, और फिर उनकी दृष्टि गुरु वसिष्ठ पर जम गई—जैसे कह रहे हों दशरथ की राज-सभा की तो यह परिपाटी नहीं है किंतु गुरु ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे भी ऐसी ही दृष्टि से सम्राट को देख रहे थे जैसे कुछ समझ न पा रहे हों

राज-सभा में एक अटपटा मौन छाया रहा।

किंचित् प्रतीक्षा के पश्चात् महामंत्री ने स्वयं को संतुलित कर पुनः साहस किया सम्राट की अनुमति हो तो आवश्यक सूचनाएँ निवेदित की जाएँ।'

आरंभ कीजिए। सम्राट के शब्द सहज थे, किंतु उनका स्वर अब भी सहज नहीं हो पाया था।

महामंत्री के संकेत पर पहले चर ने सूचना दी सम्राट! मैं राज साथों के संग यात्रा करने वाला दूत सिद्धार्थ हूँ। मैं राजकुमार भरत तथा शत्रुघ्न का समाचार लेकर आया हूँ। राजकुमार अपरताल तथा प्रलंब गिरियों के मध्य बहने वाली नदी के तट से होते हुए हस्तिनापुर में गंगा को पार कर सकुशल आगे बढ़ गए हैं।'

सम्राट ने पूरी तन्मयता से समाचार सुना। उनके मन में उल्लास का

एक स्वर फूटा, भरत अयोध्या से दूर हो गया।' उनकी आकृति की कठोर रेखाएं शिथिल हो गइ। आखो म सतोष झाकने लगा और होठो के कोना म हल्की-सी मुसकान उभरी।

सभा धैयपूवक सम्राट के उत्तर की प्रतीक्षा करती रही किंतु सम्राट् पूण आत्म-सतोष क साथ अपने अधरों की मुसकान पीते रहे।

अत म फिर महामत्री ही बोले दूत! तुम्हारा समाचार शुभ है। सम्राट राजकुमार का कुशल समाचार जानकर सतुष्ट हैं। तुम जाओ। विश्राम करो।'

दूत प्रणाम कर चला गया।

तब महामत्री स सकेत पाकर न्याय-समिति के सचिव आय पुष्कल उठकर खडे हुए 'सम्राट का स्मरण होगा कुछ दिन पूव सम्राट के अग-रक्षक दल के सनिक विजय की, केकय राजदूत के रथ क घोडों से टकरा उनके खुरो के नीचे आकर कुचले जाने के कारण मत्यु हो गयी थी। सम्राट ने इस घटना की जाच न्याय-समिति को सौंपी थी। न्याय-समिति ने उस दुघटना की सम्यक खोज की है। अपनी खोज के पश्चात् समिति इस निष्कष पर पहुची है कि वह दुघटना मात्र आकस्मिक थी। उसमे केकय राजदूत की न इच्छा थी, न असावधानी। अत समिति केकय राजदूत को निर्दोष पाकर अभियोग मुक्त घोषित करती है। सम्राट ने प्राथना है कि वे इस निणय को अपनी मान्यता प्रदान करें।'

दशरथ का मस्तिष्क नामों पर अटक गया। जिस सैनिक की हत्या हुई वह दशरथ के अग रक्षक दल का था। जिसने हत्या की, वह केकय का राजदूत है, अर्थात युधाजित का राजदूत। अपराधी पर अभियोग लगाने वाल सैनिक भरत के अधीन हैं। जाच करन वाला पुष्कल है—कैकेयी का सबधी। तो केकय राजदूत निर्दोष क्या नहीं होगा!

दशरथ के होठों के कोनों पर फिर मुसकान उभरी, किंतु यह सतुष्टि की मुसकान नहीं थी। बोले वे अब भी कुछ नहीं।

सम्राट को मौन देख महामत्री ही बोले "न्याय-समिति की जाच स सम्राट सतुष्ट हैं और समिति क निणय को मान्यता देते हैं"

सहसा महामत्री की बात काटकर दशरथ बोल, किंतु न्याय-समिति

ने मतक के परिवार की क्षतिपूर्ति का कोई सुभाव नही रखा। यह अनुचित है। सनिक विजय के परिवार को क्षतिपूर्ति के रूप मे उसके वतन का दुगुना भत्ता प्रति मास दिया जाए।"

महामत्री ने आश्चय से सम्राट को दखा।

आय पुष्कल ने भी उसी मुद्रा मे सम्राट को देखा किंतु वे महामत्री के समान मौन नही रहे "याय-समिति के सचिव के रूप म मेरा यह क्तव्य है कि मैं सम्राट को स्मरण दिलाऊ कि ऐसी स्थितिया म "वनित क" वेतन का आधा भत्ता देने का विधान है।

किंतु "याय-समिति के सचिव को कौन स्मरण दिलाएगा" सम्राट का स्वर अतिरिक्त रूप से तिक्त था कि विधान म सम्राट के अपने कुछ विशेषाधिकार भी है। सम्राट का भत्ते की राशि को घटा वढा सकन का पूण अधिकार है।'

आय पुष्कल के मन मे अनेक आपत्तिया थी—सम्राट को विशेषाधिकार तो हैं, किंतु वे विशप परिस्थितियो के लिए है। इस घटना म एसी कोई विशेष बात नही है।

किंतु सम्राट की भगिमा ऐसी नही थी कि आय पुष्कल या कोई अय पापद कुछ कहने को प्रोत्साहित होता। सम्राट अप्रस न है यह साफ-साफ दीख रहा था किंतु क्या ? किससे ? क्या वे स्वय पुष्कल से अप्रसन्न है ?

आय पुष्कल न अपनी बात कठ म ही रोक ली।

सभा मे फिर मौन छा गया। सम्राट के इस प्रकार खीझने के अधिक अवसर नही आत थे, और जब आत थ उनका टल जाना ही उचित था। किसी का साहस नही था कि सम्राट की ओर देखे। सबकी दृष्टि भूमि पर गडी हुई थी

ऐसी स्थिति से परिषद को राज-गुरु तथा अय ऋषि ही उबार सकते थे। उन पर सम्राट का अनुशासन अनिवायत लागू नही होता था। किंतु सामायत सम्राट द्वारा याचना होने पर ही गुरु तथा अ य ऋषि अपना अभिमत देते थ अथवा बहुत असाधारण स्थिति होने पर ही वे लोग सैद्धांतिक हस्तक्षेप करते थे—किंतु आज की बात तो सामाय-सी वैधानिक बात थी।

सबका मौन देख, सम्राट् ने इस विषय का यही समाप्त मान लिया।

वे सभा म आन क पश्चात पहली बार स्वय सक्रिय हुए, ' नगर रक्षा के लिए कौन-सी सेना नियुक्त है महावलाधिकृत ?"

साम्राज्य की तीसरी स्थायी सेना, सम्राट !"

' कितने समय से यह दायित्व इस सना के जिम्मे है ?"

'उन्हें यह काय सभाल केवल छह माम हुए है सम्राट !'

उसका महानायक कौन है ?"

स्वय राजकुमार भरत ! ' महाबलाधिकृत ने सूचना दी किन्तु अयोध्या स उनकी अनुपस्थिति म सना उपनायक महारथी उग्रदूत की आज्ञा क अधीन है।'

दशरथ ने कुछ क्षणा तक चिंतन का नाटक किया और फिर अपना पूव निश्चित निणय सुना दिया महाबलाधिकृत ! साम्राज्य की तीसरी स्थायी सना के उपनायक को आदेश है कि वे अपनी सना को लेकर उत्तरी सीमात पर स्थित स्कधावार म चले जाए। वहा उनकी आवश्यकता पड सकती है। यह प्रयाण कल प्रात ही हो जाना चाहिए।"

'जो आज्ञा, सम्राट ! '

और अयोध्या की रक्षा का दायित्व मेरे अग रक्षक दल के महानायक चित्रसेन को सौंप दिया जाए। सम्राट का स्वर पहले स भी ऊचा हो गया था।

महाबलाधिकृत जो आज्ञा न कह सके। तीसरी स्थायी सेना का स्थानान्तरण यद्यपि अनियमित था, क्योंकि नियमत एक सेना को एक स्थान पर साधारण परिस्थितियों म प्राय तीन वर्षों तक रखा जाता है— फिर भी सभव है कि सम्राट के मन म कोइ असाधारण बात हो सभव है उनके उस आदेश के पीछे कोई तक हो। यद्यपि ऐसे आदेशो के कारण महाबलाधिकृत से गुप्त नही रखे जाने चाहिए, और ऐसे आदेशो का पालन महाबलाधिकृत से उसकी सहमति लिए बिना नही होना चाहिए, फिर भी सम्राट कभी-कभी विशेषाधिकार का उपयोग कर लेते हैं। अतत ऐसे निणय लाभदायक ही होते हैं। किंतु नगर रक्षा का दायित्व सम्राट क निजी अग रक्षकों को सौंप दना क्या हो गया है सम्राट की बुद्धि को ?

क्षमा हो, सम्राट !" महाबलाधिकृत बहुत साहस कर बोले "नगर-रक्षा का दायित्व सम्राट के अग रक्षक दल को सौंप देना अपूव निणय है। अग रक्षकों की सख्या इतनी अधिक नही है कि वे सम्राट की निजी रक्षा राज-सभा राज-कार्यालयों तथा राजप्रासादो की रक्षा के साथ साथ नगर रक्षा का दायित्व भी सभाल सकें। सम्राट विचार करें यह आदेश अ यावहारिक है। यह तब तक यावहारिक नही हो सकता जब तक कि अग रक्षकों की सख्या एक पूरी सेना तक न पहुचा दी जाए।'

सम्राट न अधैर्यपूवक महाबलाधिकृत की बात सुनी और पुन बडे कटु स्वर म उत्तर दिया महाबलाधिकृत का ज्ञात होना चाहिए कि सम्राट ने अपनी आयु इस सिंहासन तथा राज-सभा म ही यतीत नही की है। मैंने सेनाए स्कधावार तथा सेना-व्यवस्थाए ही नही देखी—बडे-बडे युद्ध अभियानो म एकाधिक सेनाओ का सफल नेतत्व भी किया है। महाबलाधिकृत मुझे यह सीख न दें कि कौन सी सेना किस कत य के लिए उपयुक्त है।

विचित्र स्थिति थी—व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी व्यवस्था-सबधी तक सुनने को प्रस्तुत नही था। अनुभवो की बात कहकर उ होंने महाबलाधिकृत का मुख बद करने का प्रयत्न किया था। सम्राट का यवहार देख महाबलाधिकृत हतप्रभ हो चुके थ। महामत्री आरभ स ही निरस्त-स थ। गुरु न भी अपूव चुप्पी धारण कर रखी थी

अत म आय पुष्कल ही उठे सम्राट यदि अनुमति दें, तो मैं उनके विचाराथ विधान की परपरा का उल्लख करना चाहूगा जिसके अनुसार *नगर रक्षा का काय अग रक्षकों के कत य स पथक* '

और सहसा जस विस्फोट हो गया।

सम्राट अमर्यादित रूप स कुपित हो गये। उनका चेहरा तमतमा गया था। नथुनो के साथ अधर भी फडक रहे थे। उनका स्वर धीमा होता तो सप का फूत्कार लिये होता ऊचा होता तो फटने फटने को होता

प्रत्यक सभासद को स्पष्ट रूप स ज्ञात हो कि अभी दशरथ ही सम्राट है और इस सिंहासन पर विराजमान ही नही है सत्ता सपूणत उसके अधिकार में है। मैं सम्राट की सत्ता की अवहेलना अथवा उसक अवमूल्यन

की रत्तीमात्र अनुमति नहीं दूंगा। सम्राट् के आदेशों पर विचार विमर्श अथवा वाद विवाद नहीं होगा। मैं यह निर्भ्रान्त चेतावनी दे रहा हूं कि सम्राट् का विरोध करने वाले न केवल पदच्युत होंगे, वरन् दंडित भी होंगे। सम्राट् का विरोध राज-द्रोह माना जाएगा जिसका परिणाम भयंकर होगा।"

परिषद् जड़ हो गयी। सम्राट् के निर्णय तो तर्कशून्य थे ही, उनका व्यवहार भी पर्याप्त चकित करने वाला था। सम्राट् अपने इस वय में, अपनी नम्रता ही नहीं शिथिलता के मध्य इतना कठोर तथा परंपरा-विरोधी व्यवहार करें—अकल्पनीय बात थी।

सभा से उठकर आ जाने के पश्चात् भी दशरथ का मन क्षणभर को शांत नहीं हुआ। उनके मन में आज राज-परिषद् में हुई एक-एक बात कई-कई बार पुनरावृत्ति कर चुकी थी। एक-एक पार्षद उनकी कल्पना की आंखों के सामने था। एक-एक व्यक्ति की कही हुई एक-एक बात जैसे उनकी स्मृति पर खोद दी गयी थी... और अंत में उनके विचार दो व्यक्तियों पर आ अटके थे—महाबलाधिकृत तथा न्याय-समिति-सचिव पुष्कल।

क्या महाबलाधिकृत मेरा विरोधी है?

यदि है तो क्यों?

किंतु महाबलाधिकृत ने कभी राजनीति में विशेष रुचि नहीं ली। किसी का पक्ष अथवा विपक्ष उसने नहीं साधा। वह सैनिक परंपरा में पला हुआ अधिकारी के सम्मुख सिर झुका देने वाला शस्त्र-व्यवसायी है। उसका न कैकेयी से विशेष संबंध है न भरत से, न कैकय राजदूत से, न युधाजित से। उसने जो कुछ कहा वह केवल सैनिक कार्य पद्धति की दृष्टि से कहा होगा। उस व्यक्ति को इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि वह अपने काम से काम रखे। राज-परिषद् के षड्यंत्रों अथवा पक्ष विपक्ष में न पड़े। न्याय-अन्याय का विचार उचित-अनुचित का विवाद कर्तव्य अकर्तव्य का विश्लेषण बड़ी अच्छी बात है—किंतु आज की परिस्थितियों में सबसे अच्छी बात है—मौन! यदि वह सम्राट् को अप्रसन्न करने का प्रयत्न नहीं करेगा, तो सम्राट् उससे अप्रसन्न नहीं होंगे

राजनीति के सारे सिद्धातो, आदर्शों तथा नैतिकता का एकमात्र सूत्र है—विरोध उ मूलन। विरोधी का उ मूलन भी

दशरथ का मन हुआ जोर से खिलखिलाकर हस पडें—ऐसी हसी जिसकी क्रूरता लोगो के कलेजे दहला दे। उनके विरोधियो को मालूम हो कि सत्ता का विरोध क्या अथ रखता है और उसका कितना बडा मूल्य चुकाना पडता है

आय पुष्कन को लिये हुए, उनका रथ स्थिर गति से उनके भवन की ओर चला जा रहा था।

उनका मन खिन था। पिछल कुछ दिनो से राज सभा से निकलत हुए उनका मन रोज ऐसा ही खि न होता था। सम्राट प्रतिदिन नियमित रूप से अभद्र व्यवहार कर रहे थे। क्या हो गया है सम्राट को? रोज कोई न कोई आकस्मिक निश्चय करते हैं। एक से एक विचित्र निश्चय और तदनुकूल आदेश। अब तो जसे परपरा ही चल पडी है। और प्राय निणय एकमत से होत हैं। सभा म कोई इसका विरोध नही करता। किसी प्रस्ताव पर विचार विमश अथवा वाद विवाद नही होता। बस प्रस्ताव स्वीकार भर कर लिये जाते हैं। पिछले कुछ दिनो से उनका स्वभाव कितना चिडचिडा हो गया है। बात बात पर अप्रसन हो जात है जसे खीभन का कोई बहाना खोज रहे हो। राज-काज म मनमानी कितनी बढ़ गयी है। छोटी छोटी बातो पर आशकित हो उठत है।

क्या करे कोई? किसी म न तो इतना साहस है कि सम्राट के सम्मुख बोले न किसी को अधिकार। गुरु कह सकत है किंतु गुरु ने जसे राजनीति से वराग्य ले लिया है। वे कुछ कहते ही नही

राजकुमारो मे राम पिता को समभा सकते हैं, किंतु व अयोध्या से बाहर गये हुए हैं। भरत और शत्रुघ्न भी अपनी ननिहाल चले गये हैं। वसे भी वे अभी छोटे है। सम्राट का न तो विरोध कर सकते हैं न उ ह समभा सकते है। लक्ष्मण अवश्य अयोध्या म वतमान है किंतु एक तो वे छोटे हैं दूसरे भयकर उग्र। उ ह कुछ कहना व्यथ है। कहना ही हो तो राम के माध्यम स कहलाना चाहिए। उ ह या तो राम की सच्चाइ का विश्वास है

या अपनी मा सुमित्रा की

हा महारानी कैकेयी से बात की जा सकती है। वे मेरी बात सुन भी लेंगी, और सम्राट का अनुशासन भी वे कर सकती है। उनसे अवश्य बात की जानी चाहिए वही से यह सूचना भी मिल जाएगी कि राम कब अयोध्या लौट रहे हैं। राम लौट आए और वे महारानी कैकेयी के साथ मिलकर प्रयत्न करें तो सम्राट को अवश्य ही समझाया जा सकता है।

यह ठीक रहगा

मन कुछ हल्का हुआ नही तो वे अपनी खिन्नता से ही पागल हुए जा रहे थ

वे बहिर्मुखी हुए। उनका रथ अपने भवन के निकटतम चौराह पर पहुच रहा था। सहसा उनका ध्यान विपरीत दिशा से आते हुए एक अन्य रथ की ओर चला गया। रथ असाधारण तीव्र गति से भागा चला आ रहा था। नगर के मुख्य पथो पर रथो को इस गति से नही दौडाना चाहिए—वे सोच रह थे—दुघटनाए ऐसे ही तो होती

पर वह तो उन्ही के रथ पर चढा चला आ रहा था सहसा इतने अकस्मात रूप स, इतने निकट आकर वह रुका कि भ्रम हुआ, जैसे दोनो रथ परस्पर भिड गय हो।

ऐसी ही एक दुघटना म पिछले दिनो म सम्राट के अग रक्षक दल का एक सनिक मारा गया था—आय पुष्कल सोच रहे थे—य दानो रथ टकरा गये होत तो आज अधिक व्यक्तियो के प्राण गय होत। उनके सारथी ने बडी सावधानी स काम लिया था। तीव्र चालक अच्छा सारथी नहीं होता, अच्छा सारथी तो अच्छा नियत्रक होता है।

दूसरे रथ के रुकते ही, उसम से कूदकर, चार हृष्ट पुष्ट युवक नीचे उतरे। उनके वस्त्र साधारण नागरिको के-स थे—जो इतने बहुमूल्य रथ मे यात्रा करने के उपयुक्त नही थे। वस्त्रो को देखकर उनके व्यवसाय अथवा स्थिति के विषय मे कुछ कहना कठिन था। उनकी आकृतियो पर होती होती रह गयी दुघटना का कोई प्रभाव नही था। वे तो जसे किसी कम के लिए उद्यत थे

वे सीधे उनके रथ की आर बढ आए। उन्होने बिना एक भी शब्द

कर आय पुष्कल के दोनों अंग रक्षकों तथा सारथी को रथ से नीचे घसीट लिया।

आय पुष्कल की आंखें फट गयीं—यह क्या हो रहा है ?

अंग रक्षक असावधानी में पकड़े गये थे। फिर भी वे शस्त्र-व्यवसायी थे। उन्होंने अपने शस्त्र निकाल लिये थे। युवक भी निःशस्त्र नहीं थे। उन्होंने कदाचित् अपने वस्त्रों में शस्त्र छिपा रखे थे। और कुछ निमिषों में ही स्पष्ट हो गया कि उनका शस्त्र-कौशल असाधारण था।

दिन-दहाड़े नगर के मुख्य पथ पर इस प्रकार शस्त्र प्रहार हो रहा था, जैसे युद्ध हो रहा हो।

आय पुष्कल ने आगे बढ़कर कुछ कहना चाहा, किंतु घटना जिस गति से घटी थी उसमें कहन-सुनने का कोई अवकाश नहीं था। वे कुछ कहते और कोई कुछ सुनता—उससे पहले ही युवकों ने अंग रक्षकों को हताहत कर भूमि पर डाल दिया था। सारथी को अंग रक्षकों के साथ ही नीचे पथ पर घसीटा गया था जो अब भी भूमि पर पड़ा, पथराई हुई आंखों से सब कुछ देख रहा था।

अगले ही क्षण उन्होंने आय पुष्कल के मुख पर हाथ रख, भुजाओं से पकड़कर उन्हें हाथों से ऊपर उठा लिया जैसे यह उनका नित्य का काम हो। बड़ी दक्षता और स्फूर्ति से उन्होंने आय पुष्कल को ले जाकर अपने रथ में पटक दिया। उनके पटके जाते ही रथ बिना किसी आदेश की प्रतीक्षा किए, स्वतः चल पड़ा जैसे एक-एक कृत्य पूर्व नियोजित हो।

चलते हुए रथ में उनके हाथ-पैर अच्छी तरह बांध दिये गये। न उनसे कुछ पूछा गया न कुछ बताया गया। युवकों ने परस्पर भी कोई बात नहीं की थी। उनके हाथ कार्यरत थे मुख बंद—जैसे गूंगे हों।

आय पुष्कल के मुख पर कसकर पट्टी बांध दी गयी। जाने उन्हें क्या सुंघाया गया क्रमशः उनकी चेतना लुप्त हो गयी, और वे अंधकार में खो गये।

राज-परिषद् की कार्यवाही दूत की सूचना से आरंभ हुई।

'सम्राट! मैं राज सार्थों के साथ यात्रा करने वाला दूत विजय हूं। मैं

राजकुमार भरत तथा शत्रुघ्न का समाचार लेकर आया हूं। राजकुमार पाचाल देश से होते हुए कुरुजागल प्रदेश को पीछे छोड़ते हुए सकुशल पुण्य सलिला इक्षुमती के उस पार उतर गए हैं।'

प्रत्येक सभासद ने देखा उद्विग्न सम्राट् को इस समाचार से कुछ प्रसन्नता हुई।

भरत अयोध्या से दूर होता जा रहा है—दशरथ सोच रहे थे—दूत के अयोध्या लौटने तक के समय में वह और भी दूर हो गया होगा। किंतु अयोध्या में बैठे भरतों का क्या हो ?

महामंत्री ने बिना औपचारिक भूमिका के अपनी बात आरंभ की, 'क्षमा करें सम्राट ! परिषद की अन्य कार्यवाहियों को स्थगित कर बीच में एक आवश्यक सूचना देने को बाध्य हूं।

अवश्य पुष्कल का समाचार होगा।' सम्राट ने आश्वस्त मन से सोचा।

राज-परिषद् के प्रमुख पार्षद तथा न्याय समिति के सचिव आर्य पुष्कल का, कल सायं दिन-दहाड़े, नगर के प्रमुख चतुष्पथ से दस्युओं द्वारा अपहरण हो गया है। यह घटना अपने-आप में ही अयोध्या की शांति तथा सुरक्षा-व्यवस्था के नाम पर कलंक है। इतने प्रमुख नागरिक के साथ ऐसा अघटनीय घट जाए। ऐसी स्थिति में कोई भी सामान्य नागरिक स्वयं को सुरक्षित कैसे मानेगा ? किंतु, आर्य पुष्कल के पुत्र चिरंजीव विपुल का वक्तव्य इससे भी भयंकर लज्जाजनक, त्रासद एवं आतंकपूर्ण है। राज-व्यवस्था "

महामंत्री !" सम्राट ने बीच में ही टोक दिया, "जिस राज-व्यवस्था की आप धारा प्रवाह निन्दा कर रहे हैं उसके आप महामंत्री हैं।

सम्राट ठीक कहते हैं।' महामंत्री उसी आवेग में बोले 'किंतु यह दुर्घटना अंग रक्षक दल को नगर रक्षा का भार सौंप देने की व्यवस्था से संबंधित है जिसके लिए मैं उत्तरदायी नहीं हूं। "

अर्थात मैं उत्तरदायी हूं। दशरथ पुनः बोले। इस बार उनका स्वर शांत नहीं था। उसमें आवेश की स्पष्ट झलक थी 'तब तो महामंत्री को और भी सोच-समझकर मुख से शब्द निकालने चाहिए। व्यवस्था का

अपमान सम्राट का अपमान है, और सम्राट का अपमान

सम्राट अपने ही आवेश म मौन हो गये। शेष बात उनका तमतमाता चेहरा कह रहा था।

"मुझे अपनी ओर से कुछ नही कहना है सम्राट!" महामंत्री के स्वर म न वह प्रवाह था न तेज "आप चिरंजीव विपुल का वक्तव्य सुन लें।"

सम्राट मौन रहे।

विपुल ने झुककर सम्राट को प्रणाम किया। उसे देखते ही लगता था कि वह रातभर सोया नही है। सभवत किसी समय थोडा बहुत रोया भी था। उसकी वेशभूषा राजसभा मे उपस्थित होने के लिए उपयुक्त नही थी—कदाचित उसे इसका भी अवसर नही मिला था।

"सम्राट! कल सध्या समय हमारा सारथी जब आहत तथा अचेत अग रक्षको को रथ म डालकर भवन मे पहुचा तो हमे सूचना मिली कि पिताजी का अपहरण हो गया है। हमारे लिए यह सूचना जितनी अप्रत्याशित थी उतनी ही घातक भी। मैंने अपने अग रक्षको और निजी सैनिको को तत्काल चारो ओर दौडाया और स्वय निकटतम सैनिक चौकी की ओर बढा। मार्ग म मैने देखा कि यह समाचार सारे नगर म फैल चुका था। जगह जगह विभिन्न प्रकार की चर्चाए हो रही थी अयोध्या जैसे नगर के लिए यह अकल्पनीय घटना थी। राज्य के इतने प्रभावशाली व्यक्ति का इस प्रकार दिन दहाडे राजपथ से हरण हो जाए और नगर रक्षक कुछ न कर सकें। अविश्वसनीय! नगर म त्रास फैल गया था। हाट बद हो गये थे। व्यापार ठप्प हो गया था। लोग स्वेच्छा से अपने घरो म बद हो गये थे। सत्ता की शिथिलता का इससे बडा और क्या प्रमाण हो सकता है सम्राट!"

"युवक!" दशरथ के स्वर म चेतावनी थी।

"क्षमा हो सम्राट! दुखी व्यक्ति के मुह से कोई अनुपयुक्त बात निकल जाए तो क्षमा करें।" विपुल ने अपनी बात आगे बढाई "नगर म इतना कुछ हुआ था और सैनिक चौकी को सूचना तक नही थी। पहले तो उन्होने आर्य पुष्कल को ही पहचानने से इनकार कर दिया। जब पहचानने को बाध्य हुए तो उनके अपहरण की बात को यह कहकर उडा दिया कि व

अपने मनोरंजन के लिए कहीं चले गए होंगे। मैंने अपने सारथी तथा आहत अंग रक्षकों से प्रमाण दिलाए तो उत्तर मिला कि वे मदिरा पीकर आपस में लड़ पड़े होंगे इत्यादि। यह सोचकर कि ये सैनिक इस प्रकार के परिवाद के लिए उपयुक्त पात्र नहीं हैं मैं उच्चाधिकारियों से भी मिला। किंतु मुझे अत्यंत दुःख से सम्राट के सम्मुख निवेदन करना पड़ रहा है कि उन अधिकारियों ने मेरे साथ ही नहीं, मेरा पक्ष लेने वाले प्रत्येक नागरिक के साथ दुर्व्यवहार किया, हम सबका अपमान किया। मैं रातभर इस संबंध में विभिन्न अधिकारियों के पास भाग दौड़ करता रहा हूं, किंतु उन्होंने न इस विषय में कोई सूचना दी और न उन्हें खोज निकालने का कोई प्रयत्न किया।' विपुल ने एक क्षण रुककर सम्राट को देखा और पुन बोला किंतु सम्राट! मैंने अपने निजी सूत्रों से पता लगाया है कि वे दस्यु न तो अयोध्या के बाहर से आए थे न अयोध्या के बाहर गए हैं। वे सशस्त्र थे और उनका युद्ध-कौशल अच्छे प्रशिक्षित सैनिकों का-सा था। सम्राट मुझे यह कहने की अनुमति दें कि वे दस्यु स्वयं सम्राट के अंग रक्षक दल के सैनिक थे जिन्होंने सैनिक वेश उतारकर

सावधान!' सम्राट ने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया किसी भी घटना की आड़ लेकर इस प्रकार का अनर्गल प्रलाप करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।'

'अनन्नाता!' महामंत्री ने सम्राट की बात पूरी होते ही कहा चिरंजीव विपुल को अपनी बात पूरी करने के पश्चात प्रमाण प्रस्तुत करने को कहा जाए। यदि वे अपनी बात प्रमाणित नहीं कर सकें तो निराधार आरोप लगाने के अपराध में वे दंडित किए जाएं '

नहीं!' सम्राट का अधर मुखर हो उठा। वे फिर आवेश की स्थिति में आ गए थे इस प्रकार के दूषित प्रचार के लिए राजसभा का प्रयोग नहीं हो सकता। मैं इस विषय में विचार विमर्श की अनुमति नहीं दे सकता।

किंतु सम्राट की इच्छा के अनुकूल विपुल मौन नहीं रहा यदि मेरे पिता ने कोई अपराध किया था तो सम्राट उन पर खुला अभियोग लगाकर उन्हें बंदी कर सकते थे '

इसे बंदी किया जाए!' सम्राट ने असंतुलित आवेश में कहा।

दो प्रतिहारियों ने आगे बढ़कर विपुल को भुजाओं से पकड़ लिया। वह अपने आप ही मौन हो गया।

दशरथ उसे घूरते रहे। किंतु जब वह कुछ नहीं बोला तो सम्राट ने एक एक शब्द पर बल देते हुए स्थिर स्वर में कहा, "इस प्रकार के उत्तरदायित्वशून्य आचरण को मैं साम्राज्य के लिए हानिकारक मानता हूं। अतः आदेश देता हूं कि इस तथाकथित घटना की आड़ लेकर साम्राज्य तथा सम्राट के व्यक्तित्व के विरुद्ध प्रचार अपराध माना जाएगा। इस प्रकार का घातक प्रचार करने वाला व्यक्ति दंडनीय होगा।"

सहसा विपुल छिटककर प्रतिहारियों के हाथों से निकल गया और चीत्कार के स्वर में बोला, "पहले ही किसी को दशरथ के शासन में आस्था नहीं थी। अब और भी नहीं रहेगी।"

"इसे मौन करो!" सम्राट ने उच्च स्वर में कहा।

प्रतिहारी विपुल की ओर बढ़े।

विपुल प्रतिहारियों से बचता इधर उधर भागता रहा और साथ ही चीखता रहा, "अब किसी को अपनी सुरक्षा के लिए राज्य के सैनिकों पर विश्वास नहीं रहा। लोग अपनी रक्षा स्वयं करेंगे। निजी अंग रक्षक तथा निजी सैनिकों के युद्ध अयोध्या के हाट बाजारों में होंगे। अयोध्या के मुख्य पथ रक्तपात के..."

प्रतिहारियों ने उसे पकड़कर उसका मुख पट्टी से बांध दिया था, अब केवल उसकी आंखें खुली थीं।

प्रतिहारी सम्राट के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"इसे भूगर्भ कारागार में डाल दो।" सम्राट ने आज्ञा दी, "और आज से किसी राजकीय बंदी के विषय में अधिकारियों से पूछताछ नहीं की जा सकेगी। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक होने पर किसी भी व्यक्ति को बिना अभियोग बताए भी बंदी किया जा सकेगा।"

सम्राट उठकर खड़े हो गए।

सभा विसर्जित हो गयी।

दशरथ की चिंता तनिक सी कम नहीं हुई थी।

उन्होंने क्या करना चाहा था और क्या हुआ। अपने अंग रक्षकों का नगर रक्षा का दायित्व सौंपा था कि नगर में भरत की शक्ति कम हो जाए। भरत की शक्ति कम कर पाए या नहीं, कह नहीं सकते, हां, पुष्कल के द्वारा वैधानिक संकट अवश्य उठा दिया गया, साथ ही खतरा उत्पन्न हो गया कि यदि कैकेयी को आभास मिल गया कि दशरथ क्या करने का प्रयत्न कर रहे हैं तो उसकी ओर से जवाबी आघात हो सकता है, और संभव है कि वह आघात इतना भारी हो कि दशरथ उसे संभाल न पाएं। उससे बचने के लिए पुष्कल का अपहरण करवाया तो बवंडर मच गया

क्या हो गया है उन्हें ?

क्या सचमुच दशरथ इतने बूढ़े हो चुके हैं कि अब राजनीतिक गतिविधि उनकी क्षमता से बाहर है। उनकी प्रत्येक चाल उलटी पड़ रही है। उन्होंने सेना को पूर्णतः हस्तगत करना चाहा था—किंतु लगता है, उनकी रही सही सत्ता को भी खतरा उत्पन्न हो गया है।

इस प्रकार का बल प्रयोग दमन, लोगों के अधिकारों को सीमित करना —कब तक उनकी सहायता कर पाएगा। हर बात की सीमा होती है

इतना रोकने पर भी पुष्कल का बेटा क्या कह गया राजसभा में किसी को दशरथ के शासन में आस्था नहीं है। अब कोई अपनी सुरक्षा के लिए राजकीय सैनिकों पर निर्भर नहीं रहेगा। सभी धनवान और शक्तिशाली लोग निजी सैनिक और अंग रक्षक रखेंगे। स्थान स्थान पर निजी सेनाओं में युद्ध होंगे रक्तपात होगा

कैसा होगा अयोध्या का शासन ?

और सबसे बड़ी निजी सेना आज किसके पास है ?

कैकय के राजदूत के पास।

अब तक निजी सेनाएं अपने स्वामियों के अंग रक्षकों का काम करने की औपचारिकता निभाती रही हैं। उनके पास किसी भी प्रकार के राजकीय अधिकार नहीं हैं, किंतु यदि निजी सेनाओं के युद्ध आरंभ हुए तो फिर राजकीय अधिकारों की आवश्यकता किसको रहेगी। विशेष संबंधों को मान्यता देते हुए कैकय के राजदूत को सबसे बड़ी निजी सेना रखने की अनुमति दी गयी थी। वह सेना कैकेयी की निजी सेना हो जाएगी—तो

कैकेयी की शक्ति कम होगी या बढ़ जाएगी ?

किस झमेले में फंस गए सम्राट !

संभव है उस लड़के विपुल ने निरर्थक प्रलाप ही किया हो उसकी बात के पीछे कोई ठोस आधार न हो, किंतु संभावनाओं की ओर से आंख नहीं मूंदी जा सकती।

अब तो एक ही रास्ता है कि साम्राज्य में निजी सेनाओं का निषेध कर दिया जाए किंतु यह कैसे संभव है ? कोसल के प्रत्येक सामंत के पास अपनी निजी सेना है जो युद्ध के अवसर पर साम्राज्य की ओर से लड़ती है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के पास अपने अंग रक्षक है। प्रत्येक राज्य के राजदूत के पास अपनी निजी सेना है उन सब पर प्रतिरोध लगाया जाएगा, तो सामंतों की सेना का व्यय साम्राज्य पर आ पड़ेगा अन्य निजी अंग रक्षकों तथा सैनिकों की आजीविका का क्या होगा ? क्या साम्राज्य इतने कर्मचारियों का बोझ उठा सकेगा ? और अंत में विभिन्न राज्यों के राजदूतों की सुरक्षा का प्रबंध अयोध्या की सेना को करना पड़ेगा। फिर वे स्वतंत्र राज्य हैं दशरथ का शासन उन पर नहीं है। दशरथ उन राज्यों की पूछताछ प्रश्न जिज्ञासा पर प्रतिबंध नहीं लगा सकते

उन्हें क्या उत्तर देंगे सम्राट ?

कोई उत्तर उनके पास हो या न हो किंतु केकय के राजदूत के पास इतनी बड़ी निजी सेना दशरथ किसी स्थिति में नहीं रहने दे सकते

कल ही उन्हें राजसभा में घोषणा करनी पड़ेगी कि अयोध्या में स्थित प्रत्येक राजदूत को अपने अंग रक्षकों तथा निजी सेनाओं को कोसल के सेनापति के आज्ञाधीन मानना होगा। और कल ही उन्हें केकय के राजदूत की निजी सेना को निःशस्त्र कर अयोध्या की सेना के अधीन असैनिक पदों पर भेज देना होगा।

इतना तो उन्हें करना ही होगा—चाहे कोई प्रसन्न हो या अप्रसन्न।

यह वे कर देंगे। किंतु उसके पश्चात ?

अब स्थिति यह नहीं थी कि वे सोचें कि भिड़िए को ईंट मारें या न मारें। आधी ईंट वे मार चुके थे और शेष आधी उन्हें मारनी ही होगी उसके पश्चात भिड़िया चाहे झपट ही पड़े अब कैकेयी से यह छिपा भी

नहीं रह सकता कि उन्होंने आघात कर दिया है। कैकेयी प्रत्याघात भी अवश्य करेगी

बात अब केवल कैकेयी की नहीं है। देश के भीतर का विरोध और बाहरी आक्रमणों की संभावनाएं वह ववंडर उठेगा कि सत्ता दशरथ के हाथों में नहीं रह पाएगी। यदि बाहर से कोई न भी आया और विभिन्न दबावों में पिसकर, उन्हें अपने वचनानुसार सत्ता भरत को सौंपनी पड़ी तो पिछले दिनों के इन सारे प्रयत्नों में घर्षों आघातों का क्या होगा। भरत कुल अठारह वर्षों का तरुण है। वह स्वतन्त्र रूप से राज नहीं कर सकता। राज युधाजित ही करेगा। दशरथ का भरत विरोध खुलकर सामने आ चुका है। ऐसी स्थिति में भरत के हाथ में सत्ता गयी तो दशरथ का स्थान कहां होगा—भूगर्भ कारागार में? गुप्त यन्त्रणालय में? युधाजित के चरणों में? अथवा खड्ग की नोक पर?

कैकेयी की ओर से किसी प्रकार की दया, सहानुभूति अथवा कोमलता की अपेक्षा वे नहीं कर सकते। कैकेयी के साथ वे काफी लंबे समय तक रहे हैं। वे उसकी धातु पहचानते हैं। होने पर आए तो वह कठोर भी हो सकती है और क्रूर भी। कैकेयी की मां ने हठ के पीछे अपने पति के प्राणों तक की चिंता नहीं की थी जबकि वह पति से प्रेम भी करती थी। दशरथ जानते हैं कैकेयी को उनसे रत्तीमात्र भी प्रेम नहीं है—फिर वह दया क्या करेगी?

तो?

दशरथ स्वयं को कैकेयी की दया पर छोड़ दें?

नहीं।

तो?

दशरथ का ध्यान राम की ओर चला गया—शंबर युद्ध के पश्चात भी दशरथ को राम ने ही सहारा दिया था। तब भी दशरथ ने सोचा था—कितना बड़ा बेटा है उनका और कितना समर्थ। और अब तो राम अपनी सेवा, अपने शौर्य और अपने चरित्र की उदात्तता के कारण सारे आर्यावर्त में श्रद्धेय हो चुका है। दशरथ का ध्यान इस ओर पहले क्यों नहीं गया? उन्होंने सदा ही राम और राम की मां की उपेक्षा की है। कभी

समय स उन्हें उनका देय नही दिया।

यदि राम को युवराज घोषित कर सत्ता उस सौंप दी जाए ता किस आपत्ति होगी ? राम सम्राट की ज्येष्ठ रानी का पुत्र है। भाइयो म सबसे बडा है। योग्य, शक्तिशाली और वीर है, सबसे बढकर लोकप्रिय है। प्रजा मन से उसका स्वागत करेगी। कोई यह नही कहगा कि दशरथ न घबराकर राज छोड दिया कोई नही कह सकेगा कि दशरथ, कैकेयी अथवा युधाजित स पराजित हुए। प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेगा कि दशरथ न उचित समय पर उपयुक्त पात्र को सत्ता सौंप दी राम के हाथ म सत्ता पूरी तरह सुरक्षित रहेगी—युधाजित अपनी तथा अपन मित्रो की सपूर्ण सेना लेकर भी अयोध्या पर चढ दौडे तो राम तनिक भी विचलित नही होगा।

घबराहट और जल्दी म उठाए गए इन सारे बवडरो को राम झेल लेगा। राम साम्राज्य को सभाल लेगा, और राम से दशरथ को कोई भय नही है। दशरथ की आखें चमक उठी। दशरथ का यह पहले क्यो नही सूझा ? चारो भाइयो म से दशरथ यदि किसी को अपनी रक्षा का दायित्व सौंपकर निश्चित हो सकते हैं, तो वह केवल राम है। अपनी तीनो पटरानियो म स दशरथ किसी की निरीहता अथवा प्रेम पर विश्वास कर सकते हैं तो वह केवल कौसल्या है

दशरथ को तत्काल राम का युवराज्याभिषेक कर देना चाहिए।

और यह भी कैसा सुखद सयोग है कि राम कल वापस अयोध्या लौट रहा है। कल ही राजपरिषद म राम के अभिषेक का निर्णय हो जाना चाहिए, और यथाशीघ्र अभिषेक भी। किसी को तनिक-सी भी सूचना मिल गयी तो विघ्न उठ खडे होगे। कैकेयी अपने समर्थको की सहायता से इस अभिषेक को रोकने का प्रयत्न करेगी। सभव है राम की हत्या का प्रयत्न हो। सभव है स्वय सम्राट के प्राण लेने का षडयत्र हो—राज्याधिकार के लिए क्या नहीं होता !

दशरथ का शरीर एक बार फिर ठडे पसीने से नहा गया। मृत्यु जैसे उनके सामने खडी उनकी आखों म देख रही थी—बस हाथ बढाने की बात है। यदि उन्होंने राम की बाह पकड ली तो राम अपने खड्ग की नोक मृत्यु

के वक्ष म हूल देगा

किंतु केकय नरेश का दिया गया दशरथ का वचन ?

रघुवश म ज म लेकर कोई अपना वचन नही तोडता। तो क्या वश की प्रसिद्धि बनाए रखने के लिए दशरथ अपने कठ म मृत्यु का फदा डाल लें ?

जीवन बडा है या वचन ?

वचन की रक्षा कर मर जाना अच्छा है या जीवन की रक्षा क लिए वचन को तोड देना ?

दशरथ क मन म कहीं कोई सदेह नही था कि उनके मन मे जीवन की अदम्य लालसा थी। व जीना चाहत थे। न सही सत्ता, किंतु जीवन की रक्षा तो हो

वचन की रक्षा धम है

पर ज्येष्ठ पुत्र का उसका देय देना भी तो धम है

पहल धम के पालन से उ ह मिलगी मत्यु।

और दूसरे धम के साथ जुड़ा है उनका सुखद और सुरक्षित जीवन। उनकी रक्षा कोई कर सकता है तो केवल राम! राम उनकी रक्षा करन को तत्पर न हुआ तो फिर मत्यु

दशरथ ने अपने मन को पहचाना। भरत के नाना को दिए गए वचन की पूर्ति की कोई इच्छा उसम नही थी। वहा तो जीवन की सुख-कल्पना थी। और जीवन का अथ था राम।

किंतु क्या राम अपना युवराज्याभिषेक स्वीकार कर लगा ?

राम जानता है कि दशरथ, भरत को युवराज बनाने के लिए वचनबद्ध हैं। फिर वह क्या चाहगा कि पिता अपना वचन तोडकर अपयश लें दशरथ भली प्रकार जानत हैं कि राम को राज्य का रचमात्र भी मोह नहीं है। उसने आज तक केवल कम किया है—उसका फल कभी नहीं चाहा। उसने दायित्व निभाए हैं, अधिकार कभी नही माग।

उसे समझाना होगा कि उसका अभिषेक उसके पिता क प्राणो की रक्षा क लिए कितना आवश्यक है। उस तत्काल अभिषेक करवाना होगा—

जीवन, मात्र कम हो गया है। करने को इतना कुछ हो, तो सामाजिक दायित्व के प्रति सजग पति पत्नी अपने जीवन को पुलकित प्रेम की कहानी नही बना सकते।

फिर भी राम का भोजन कराए बिना स्वय खा लेने की बात सीता आज तक स्वीकार नही कर सकी। वे जानती हैं राम पर राज्य की ओर से सौंप गये दायित्व तो है ही उनके अपने भीतर की आग भी उन्हे निष्क्रिय बठने नही देती। जब घर से बाहर जाते हैं कही न-कही शासन की कोई अनीति शिथिलता कर्तव्यहीनता अथवा उपेक्षा देखकर या पिघल जाते हैं या जल उठते हैं। सम्राट दिन प्रति दिन वद्ध और शिथिल होते जा रहे है। शासन के सूत्र उनके हाथो से फिसलते जा रहे हैं। बहुत सतक रहने पर भी उनमे कोई-न-कोई प्रमाद होता ही रहता है। राम की अनुपस्थिति म पिछले दिनो यहा क्या कुछ नही हुआ। अब भी कही-न कही से किसी राजपुरुष के अमर्यादित अथवा अनीतिपूर्ण व्यवहार की सूचना राम को मिलती ही रहती है, और फिर राम शात नही बठ सकते। दृढ आत्म नियत्रण के कारण उनमे आवेश का ज्वार नही उठता, किंतु हल्की-हल्की आच उन्हे तपाती ही रहती है।

व्यस्त राम को विलब हो जाता है और वे भोजन के समय घर नहीं पहुच पाते तो स्वय भी भूखी रहकर सीता उन्हे शक्ति नही पहुचाती। व जानती हैं वे स्वय को अनावश्यक पीडा दे रही हैं। सीता के लिए यह सस्कार की बात नहीं है। अपनी बौद्धिकता के बल पर यथ के सस्कारो को तोडने म वे पूर्णत सक्षम है। किंतु जब पति बाहर से आता है और उसे मालूम होता है कि पत्नी उसके लिए भूखी बठी है तो उस कामकाजी जीवन म भी दोनो के बीच कुछ कोमल क्षण जाग उठते हैं। सघर्षो की इस कोमलता ने इस कर्तव्यपूर्ण जीवन म भी हरीतिमा बना रखी है। सीता उस हरीतिमा को कसे छोड दें?

वे कितना चाहती है कि सामाजिक तथा प्रशासनिक कामो म राम का हाथ बटाए पर अभी तक राम का व्यक्तिगत देखभाल के साथ स्त्रियो तथा बच्चो के कल्याण सबधी कुछ हल्के कामो के अतिरिक्त वे कुछ नही कर पायी हैं। इस परिवार का ही नही सारे समाज का ढाचा ही कुछ ऐसा है

कि नारी कहीं शोभा की वस्तु है कहीं भोग की। कहीं वह अत्यन्त शोषित है, कहीं परजीवी। अमरबेल होकर रह गई है नारी, जो अपने पति के माध्यम से समाज का रस खींचती है। समाज से उसका सीधा कोई संबंध ही नहीं है। घर की व्यवस्था में तो फिर भी उसका स्थान है सामाजिक उत्पादन में वह एकदम निष्प्रयोजन वस्तु है। निर्धन किसान की पत्नी उसके साथ खेत पर जाकर उसका हाथ बटाती है, श्रमिक की पत्नी पति के साथ या स्वतंत्र रूप से श्रम करती है किंतु धनी वर्ग की स्त्रियां मात्र जोंकें हैं। चूसने के लिए उन्हें रक्त चाहिए। उनकी सामाजिक उपयोगिता पूरी तरह शून्य है और उनकी आवश्यकताएं आसमान को छू रही हैं। उन्हें भड़कीले वस्त्र चाहिए, चमकीले आभूषण चाहिए, प्रसाधन के लिए चन्दन-कस्तूरी के छकड़े भी उनके लिए अपर्याप्त हैं, चर्वी चबाने के लिए दुनिया भर का गरिष्ठ और स्वादिष्ट भोजन चाहिए

इन निकम्मी, मोटी बुद्धि वाली, निरर्थक वस्तुओं को देखकर सीता का खून जल उठता था। उनमें घड़ी-आध घड़ी बात कर सीता का दम घुटने लगता था। रानियां महारानियां सामंत-पत्नियां, आचार्य-पत्नियां—सब ही पुराने पड़े व्यर्थ के कबाड़-सी वस्तुएं थीं जिनकी कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं थी।

पर सीता स्वयं भी सक्रिय होकर अभी तक कोई बहुत महत्त्वपूर्ण काम नहीं कर पायी थी। इस प्रायः निष्क्रियता में मग्न आशंकित रहती थी कि कहीं वे भी सार्थक परिश्रम के अभाव में उसी कमबीन कबाड़ का अंग न बन जाए। पिछले चार वर्षों में कितनी बार पति-पत्नी में इस विषय पर कहा-सुनी हुई थी। साधारण बातचीत हुई थी, तर्क हुए थे सनातनी और झगड़े भी हुए थे। पर अंत में दोनों ने यही पाया था कि यह रूढ़ व्यवस्था नारी शून्य पुरुष समाज में काम करने की इतनी अभ्यस्त हो चुकी थी कि नारी को अपने मध्य पाते ही, उसे उसे पोषक मानती थी। यह व्यवस्था नारी को उसका उचित मानवीय स्थान देने के लिए किंचित भी इच्छुक नहीं थी। नारी को पुरुष की बराबरी का स्थान दिलाने के लिए लंबा और बारम्बार संघर्ष अपेक्षित था।

सीता के छोटे मोटे स्फुट प्रयत्न, रूढ़-व्यवस्था के विरुद्ध लोह की दीवार

पर हाथ के नाखूनो स लगाई गई खरोचें मात्र थी—जो दिखाई भी नही पड रही थी। वस्तुत व प्रतीक्षा भी कर रही थी और तैयारी भी। उनका शरीर घर और बाहर की नियमित नित्य-व्यवस्थाओ म लगा रहता था, किंतु मन भविष्य की कल्पनाए करता रहता था—आने वाले समय के लिए योजनाए बनाता रहता था। कही एसा न हो कि जब अवसर आए तो सीता को करने क लिए कोई काम ही न सूझे

व्यक्तिगत जीवन अपनी जगह है। उसका सुख सबको आकाक्ष्य है। किंतु सामाजिक लक्ष्य रहित जीवन भी कोई जीवन है ? सीता जब राम को जन-सामान्य की सुविधाओ की व्यवस्था म अपने प्राणो को खपाते देखती थी तो उनके मन म तृप्ति और स्पर्धा की भावनाए एक साथ ही अकुरित हो उठती थी। धन्य है राम जो बिना कोई राजनीतिक अधिकार पाए भी अपने कत य म लगे हुए थे, यदि कही ऐसे ही ये चारो भाई होते । और स्पर्धा होती थी सीता को राम से—क्यो नही वे भी उन्ही के समान अपना जीवन कम म खपा पाती ?

इस स्पर्धा मे सीता का एक ही सहयोगी है—देवर लक्ष्मण। कितनी तडप है लक्ष्मण म स्वस्थ साहसी सामाजिक काय के लिए। अनीति देखकर लक्ष्मण रुक नही सकत। और फिर अपने भैया राम का एक सकेत उनके लिए पर्याप्त है। अब तो वे सतरह वर्षों के हो गए है। चार वष पूव जब वे राम के साथ सिद्धाश्रम गए थे तब मात्र एक किशोर ही तो थ। किंतु किसी कम म किसी जोखिम म लक्ष्मण पीछे नही रह।

भरत और शत्रुघ्न भी सात्त्विक प्रवत्ति के है और अन्याय देखकर विरोध उनक मन मे भी जागता है किंतु उनमे राम और लक्ष्मण जसी आग और तडप नही है। वे दोना ही आत्मकेन्द्रित है। समाज की गतिविधिया और प्रवत्तियो से उनका कोई विशेष सपक नही है। यही कारण है कि न्याय के प्रति पूणत समर्पित होने पर भी उन्ह अपने पडोस म होता हुआ अन्याय दिखाइ नही पडता। उनकी अपनी दीवार की छाया म अमानवीय अत्याचार पनपता रहता है और उन्ह वह तब तक दिखाई नही पडता जब तक कोई अन्य व्यक्ति उसकी ओर इगित न कर दे। उन दोनो का समस्त बल स्वय चरित्रवान बनन पर है परिवेश की गदगी दूर करने की ओर उनका

ध्यान नहीं है। ऐसे लोग अनीति के समर्थक तो नहीं होते किंतु अनीति को उनसे कोई विशेष भय भी नहीं होता।

कदाचित यही कारण था कि भरत और शत्रुघ्न का संबंध अयोध्या और अयोध्या के आस-पास होने वाली सामाजिक और राजनीतिक हलचलों से कम, भरत के ननिहाल से ही अधिक था। एक ही माता के पुत्र होने पर भी लक्ष्मण और शत्रुघ्न कितने भिन्न थे। सुमित्रा का सारा प्रशिक्षण शत्रुघ्न को भरत के प्रभाव से मुक्त कर लक्ष्मण जैसा नहीं बना सका था

परिचारिकाओं की हलचल से सीता को राम के आने का आभास मिला।

राम ने कक्ष में प्रवेश किया। उनके चेहरे पर एक हल्की-सी मुसकान थी किंतु मुसकान की उस परत के नीचे छिपी क्लांति सीता की दृष्टि से ओझल नहीं रह सकी।

प्रवास की थकान कम थी कि फिर स्वयं को इतना थका डाला।

राम की आंखों ने सीता की निरीक्षण शक्ति की प्रशंसा की तुमसे कुछ भी छिपाना कठिन है मीत।'

अभी तक भूखे हैं। कहीं भोजन भी नहीं किया होगा।

राम मुसकराए भर, कुछ बोले नहीं।

सीता ने परिचारिका को भोजन लाने का संकेत किया देखती हूं, सारे कार्यों के लिए अयोध्या में केवल एक ही व्यक्ति सुलभ है।

राम मंथर से मुसकराए 'ऐसा नहीं है प्रिय! भेजने को तो मैं अन्य लोगों को भी भेज सकता हूं, किंतु अपने अनुभव से क्रमशः जान गया हूं कि सामान्य राजपुरुष जब शासकीय कार्य के लिए जाता है तो प्रजा अथवा शासन का भला कम करता है, अपना भला ही अधिक करता है।

'कोई विशेष बात?'

बहुत नहीं। पर कुछ-न-कुछ तो होता ही रहता है। आज तो स्वयं सम्राट के उठाए हुए ही अनेक बवंडर थे। वैसे भी प्रजा के हित का ध्यान रख स्वयं राम का ही जाना उचित है। राम मुसकराए आशा है मेरी प्रिया न तो आपत्ति करेगी न बाधा देगी।

परिधारिवाण भोजन ले आयीं।

न आपत्ति न बाधा। सीता बोली किंतु आपका दिनभर के काय के पश्चात भूखा तथा थका घर लौटते देखकर मुझे कष्ट अवश्य होता है। यदि आपके कायस्थल पर भोजन तथा थोड़े आराम की व्यवस्था हो पाती तो अपने पति को सत्कार करते देख मुझे असीम तृप्ति होती।'

व्यवस्था सो हो सकती है पर भोजन के लिए राम लौटकर सीता के पास ही आना चाहता है। राम के चेहरे पर कौतुक का भाव था और सीता के साहचय के बिना विश्राम है कहां!

तो मुझे पथक काय देने के स्थान पर अपने ही साथ रखा कीजिए। मैं भी थक-हारकर सध्या समय मुझी लौटूं तो सार्थकता का सुख पाऊं। मुझे तो इधर से और संक्षिप्त काय देकर बहला दिया जाता है जसे मैं किसी योग्य ही नहीं। काय केवल राम के लिए हैं या बच जाए तो देवर लक्ष्मण के लिए।'

राम गभीर हो गए ठीक कहती हो सीते! तुम्हें अपने योग्य काय अवश्य मिलना चाहिए अन्यथा तुम्हारी समस्त ऊर्जा निष्क्रिय रहकर सड़ जाएगी। पर कठिनाई यह है कि इस समाज ने मान लिया है कि स्त्री घर से बाहर तभी कोई काय करेगी जब पुरुष मृत पगु अथवा अनुपस्थित होगा। प्रयत्न में हूं कि शीघ्रातिशीघ्र तुम्हें तुम्हारा उचित स्थान दे सकूं। '

सहसा राम चुप हो गए। उनकी दृष्टि सीता के चेहरे पर ठहरकर कुछ ढूढ रही थी। उन्हें लग रहा था सीता अब पहले जैसी स्वस्थ संतुलित नहीं रह गई थी। वे कुछ असहज थीं।

'क्या बात है सीते?'

समाज में मेरा जो स्थान और उपयोगिता है वह समझाने पिछले अनेक दिनों से कुछ वद्धाएं मेरे पास आ रही हैं।'

राम को समझने में देर नहीं लगी।

उन वचारियों पर दया ही करनी चाहिए सीता! उनका मानसिक क्षितिज इससे अधिक व्यापक नहीं है "

किंतु '

किंतु क्या?

अब माता कौसल्या ने भी इंगित किया है। वे गोद में पौत्र संतान को उत्सुक हैं।'

राम सीता को देखते रह गए। वे सीता की पीड़ा समझ रहे थे। यह बात आज पहली बार नहीं उठी थी। चार वर्षों के दाम्पत्य जीवन में ऐसे प्रसंग अनेक बार आए थे। माता कौसल्या की पौत्र के प्रति उत्सुकता भी वे समझते थे—जिस समाज में मनुष्य पुत्र-पौत्र के जन्म से ही सौभाग्यशाली माना जाता है, जहां व्यक्ति अपने कर्मों से अधिक महत्त्व अपनी कुल परंपरा को आगे चलाने को देता है, वहां यदि माता कौसल्या पौत्र मुख दर्शन को व्याकुल हों तो आश्चर्य की बात क्या है। आश्चर्य तो यह था कि अभी तक पिता की ओर से उन्हें ऐसा कोई संकेत नहीं मिला था और न ही उनके दूसरे विवाह की बात उठाई गयी थी।

कदाचित् ये सारी कुल-वधुएं, इतने अंतराल के पश्चात भी, संतान न होने का दोष सीता की अक्षमता को देती होंगी। जिनके विचार-संसार में विवाह के एक वर्ष के भीतर संतान उत्पन्न न करना वंध्या होने का प्रमाण-पत्र हो, वे सीता को चार वर्षों के पश्चात भी कुछ न कहेंगी—इतनी अपेक्षा उनसे नहीं की जानी चाहिए। आक्षेप तो होंगे ही—सीता पर हों या राम पर हों। उनसे बचना संभव नहीं है। किंतु यदि राम आक्षेपों से बचने के लिए ही कर्म करने लगें तो वे एक काम भी अपनी इच्छा से, स्वतंत्र रूप से नहीं कर पाएंगे। आक्षेपों से बचने के प्रयत्न में वे समाज की सबसे पिछड़ी हुई मानसिकता के दास हो जाएंगे। नहीं! राम को अपने चिंतन के अनुसार, अपनी इच्छा से चलना होगा। किसी के कुछ कहने के कारण आवेग अथवा प्रतिक्रिया में राम कोई निर्णय नहीं लेंगे

संतान के जन्म से पहले उसके स्वागत के लिए माता पिता की परिस्थितियां अनुकूल होनी चाहिए। वे भौतिक सुविधाओं, शारीरिक तत्परता तथा अनुकूल मानसिकता के साथ प्रस्तुत हों तो ही संतान के साथ न्याय हो सकता है। संतान को जन्म देने के पश्चात् माता पिता को लगे कि उनके पास संतान के लिए समय नहीं है, उनके पास अपनी अन्य गंभीर चिंताएं या महत्त्वपूर्ण लक्ष्य हैं, बच्चे उन्हें अपने मार्ग की बाधा लगने लगें और वे उन पर झल्लाते रहें, तो यह संतान के साथ न्याय नहीं होगा। उन्हें पूर्णत

दासियो को सौंपकर सतान के मन म ग्रथिया पदा करने और उचित व्यवहार न भर पाने पर दासियो के प्रति मन म कटुता पालन म क्या लाभ? धन के बल पर दास-दासिया निम्न आचाय उपलब्ध करा देने भर स, सतान के प्रति माता पिता का दायित्व पूरा नही हो जाता। सतान को माता पिता की भौतिक सुविधाओ क साथ, उनका समय, उनका शरीर उनका मन, उनकी आत्मा—प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता होती है

राम की मानसिकता अभी सतान क लिए अनुकूल नही है। अयोध्या की स्थिति स्थिर नही है। इन दिनो सम्राट की काय-नीति सदा अप्रत्याशितता की ओर प्रवत्त रहती है। प्रतिदिन कुछ न-कुछ नया घटित होता रहता है जिसस कोई-न कोई बवडर उठना ही रहता है। जबुद्वीप का राजनीतिक भूगोल रोज नई राज्य-सीमाए बना बिगाड रहा है। समथ जन मानवीय आदर्शों स पतित हो रह हैं। अनेक पिछडी जातिया भूखी नगी रुग्ण, असहाय और अवन पडी यातनाए सह रही हैं। बहुत प्रयत्न करने पर भी ऋषि उन तक अपना ज्ञान जागरूकता और सस्कार नही पहुचा पा रहे हैं और राक्षसा के हाथा प्रतिदिन वन्य-पशुओ के समान मारे जा रहे हैं।

राम ने विवाह किया है यद्यपि विश्वामित्र ने उन्ह रघुवशियों क पत्नी मोह के अतिरेक के विषय म स्पष्ट चेतावनी दी थी। पर पत्नी सदा माग की बाधा ही नही होती। वह सह-यात्री है—माग की सहायिका भी हो सकती है। सोच-समझकर ही सह-यात्री चुना जाए ता सहायक होता है बिना सोच समझे चुना जाए तो स्थायी सिर दद। सीता से उन्हें विघ्न की कोई आशका नही है

तो क्या सतान सदा विघ्न-स्वरूप ही होती है?

राम का मन कहता है सतान माग की बाधा नही है किंतु माता पिता की पूव व्यस्तता तथा अन्य-लक्ष्य सिद्धता अवश्य सतान के माग की बाधा हो जाती है। सिद्धाश्रम स मिथिला जाते हुए माग म पूछा गया ऋषि विश्वामित्र का प्रश्न बहुधा उनके सम्मुख आ खडा होता है ऐसा क्यो है राम! कि अपना घर फूके बिना व्यक्ति परमाथ की राह पर चल ही नही सकता?

स्वार्थपरक सामाजिक व्यवस्था की इस द्वद्वात्मकता को राम ने सदा मन म रखा है। इसम परिवार तथा समाज का स्वार्थ प्राय विरोधी है एक के लिए दूसरे का त्याग करना पडता है। राम नही चाहते कि उनके द्वारा बहुत सामाजिक दायित्व के पालन के कारण उनके सगे होने का दड उनकी सतान को मिले। व नही चाहते कि उनकी सतान बडी होकर यह कहे कि उनका दुर्भाग्य यह है कि उनका पिता सामाजिक जीवन म ईमानदारी से मग्न है या यह कि अपने जन-नायक पिता की ओर से सदा उन्हें उपेक्षा ही मिली है या यह कि उनके पिता के पास सब के लिए समय है, केवल अपनी पत्नी और बच्चो के लिए नही है।

इसका क्या अर्थ—क्या राम समझते हैं कि जब जीवन म अन्य कोई काय नही रहेगा जब व सब ओर से अवकाश प्राप्त कर लेंगे तो ही सतान की बात सोचेंगे? क्या ऐसा समय भी आएगा? जीवन म कुछ न-कुछ तो लगा ही रहता है। जब जीवन म इतना कुछ—परस्पर समान और विरोधी साथ-साथ चलता रहता है, तो सतान भी उसी वविध्यपूर्ण जीवन का एक अग बनकर क्या नही चल सकती! नही राम जीवन के महत्त्वपूर्ण कामों से अवकाश प्राप्त कर, वृद्धावस्था म सतान को जन्म देने की बात नही सोचत। सतान के जन्म का भी उचित समय होता है ताकि व्यक्ति ठीक समय से उनका पालन-पोषण कर उन्हें उनके अपने पैरो पर खडा कर दे। हा राम कुछ अधिक मानसिक अनुकूलता तथा परिस्थितियों की स्थिरता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। विवाह के पश्चात पाच-सात वर्ष सतान न हो तो कोई आसमान नही गिर पडेगा। यदि वे विवाह ही रुककर करत तो? कई लोग पतीस चालीस वर्ष क वय म विवाह करत हैं। वे तो अभी कुल उनतीस वष क हैं। व सतान क लिए दो चार वष और प्रतीक्षा कर सकत है

और फिर, सतान को इतना अधिक महत्त्व दन का भी क्या अथ कि जीवन के प्रत्यक क्षम म सतान अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाए। मनुष्य का जीवन स्वय कम करने के लिए है अथवा वश-परपरा को आगे बढाने का माध्यम मात्र? राम का जीवन कम क लिए है। बच्चे उन्ह भी अच्छे लगते हैं—वात्सल्य उनके मन म भी है किंतु अपने उत्तराधिकारी को

प्राप्ति ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य नहीं है। उन्होंने अपने लिए कोई संपत्ति अर्जित नहीं की है, जिसके लिए उन्हें उत्तराधिकारी की निपट आवश्यकता हो। संपत्ति व्यक्ति की नहीं समाज की होती है। साम्राज्य स्थापित करने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं है। अयोध्या का राज्य उन्हें ही मिलेगा—यह भी निश्चित नहीं है। अधिक संभावना यही है कि राज्य उन्हें नहीं मिलेगा। पिंडदान इत्यादि के लिए पुत्र की कामना उन्हें नहीं है। स्वर्ग किसने देखा है, और पुनर्जन्म का ही क्या प्रमाण है। यदि स्वर्ग है और वह व्यक्ति को मिलता भी है तो वह उन्हें अपने कर्मों से मिलेगा इसके लिए उन्हें संतान की आवश्यकता नहीं है।

संतान यदि उन्हें चाहिए तो केवल अपनी वात्सल्य की तृप्ति के लिए। वे प्रतीक्षा कर सकते हैं।

किंतु सीता सीता की क्या इच्छा है? कहीं वे अपने विचार सीता की इच्छा के विरुद्ध तो उन पर आरोपित नहीं कर रहे

हाथ धो लें आर्यपुत्र!'

सीता संभल चुकी थी। वे शांत और सुव्यवस्थित लग रही थीं।

प्रिये! कदाचित् तुम्हें मानसिक क्लेश पहुंचे किंतु राम का स्वर गंभीर था समस्या का समाधान उसके साक्षात्कार में होता है '

आप निश्चित रहें।' सीता मुसकराईं अब मैं दुर्बलता नहीं दिखाऊंगी।

ऐसा तो नहीं सीते! कि मेरी चिंतन-पद्धति के कारण तुम्हें अपना अप्राकृतिक दमन करना पड़ रहा हो? कुल-वृद्धाओं को छोड़ो। किंतु तुम्हारी इच्छा

'आपको आज तक मेरी इच्छा का ही पता नहीं है क्या?' सीता स्थिर ही नहीं दृढ़ थीं, 'ठीक है मुझे अभी अयोध्या में अपने मनोनुकूल कार्य नहीं मिला है किंतु मैं इतनी भी खाली नहीं हूं कि शिशु-पालन के बिना दिन न कटता हो।

तुम्हारे जीवन में संतान का कोई महत्त्व नहीं है? राम मुसकरा रहे थे।

'है। पर इतना नहीं कि अपने जीवन का सारा ताना-बाना उसी को केन्द्र म रखकर बुनू। सतान की ऐसी भी क्या जल्दी कि फिर उसके पालन के लिए किसी सम्राट मोरध्वज का सेत ढूंढना पड़े। मैं अभी प्रतीक्षा कर सकती हू।

राम मौन हो गए। बात विचारा तक ही नहीं रही थी, अचानक ही मीता की छिपी वेदना बोल उठी थी। राम भीग उठे किंतु उन्हें भावुकता म बचना होगा। उन्होंने स्वय को सभाला

'प्रतीक्षा चाहे कितनी ही लबी हो ?"

"हा।"

'फिर तो कुल-वद्धाओ के आक्षेप-उपालभ भी सुनने ही पड़ेंगे।"

'सुन नहीं रही क्या ?'

राम मुसकरा पड़े।

परिचारिका ने बाधा दी, 'आप की अनुमति हो तो राजगुरु को सूचित करू कि आप उनसे मिलने को प्रस्तुत हैं। वे आपके भोजन कर लेने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सीता सावधान हो गयीं।

राम के गभीर स्वर म प्रताड़ना का भाव था, 'गुरुदेव प्रतीक्षा क्या कर रहे हैं सुमित्रे ? उन्हें प्रतीक्षा कराने का अधिकार किसी को नहीं है।'

क्षमा करें कुमार।' सुमुखी ने सिर झुका लिया 'यह उनकी अपनी इच्छा थी।

राम ने द्वार तक जाकर अगवानी की। गुरु को आसन पर बैठा उन्होंने हाथ जोड़ दिए, क्षमा करें गुरुदेव! कह नहीं सकता किसके प्रमाद के कारण आपको प्रतीक्षा करनी पड़ी।'

गुरु मुसकराए, 'उद्विग्न न हो राम! जो कुछ हुआ मेरी इच्छा स हुआ है।

"पर क्यो ? राम सहज नहीं हो पा रहे थे।

'राम!' वसिष्ठ पूर्णत शांत थे अयोध्या म कौन नहीं जानता कि राम जन-कार्य मे कितना व्यस्त है। पुत्र! मैं अयोध्या से बाहर नहीं हू।

यह जानकर कि तुम प्रात के गए अब लौटे हो, और उस समय दोपहर का भोजन कर रहे हो जब अन्य लोग सध्या के भोजन की तैयारी कर रहे हैं—बाधा देकर मैं पाप का भागी क्यो बनता। पर इस विषय को अधिक न खीचो। मैं शुभ और महत्त्वपूर्ण सूचना लाया हू।'

"कैसी सूचना है गुरुवर ? सीता ने पूछा।

पुत्री ! आज राज-परिषद ने एकमत से निर्णय किया है कि कल प्रात राम का युवराज्याभिषेक किया जाएगा ।'

सीता का स्वर हर्षातिरेक से जसे भर्रा उठा कल प्रात ?

हा पुत्री ! गुरु बोले सामाचार अत्यन्त गोपनीय है। अभी तक राजमहल म यह सूचना प्रसारित नही की गयी। प्रयत्न यही है कि यथा सभव कम से कम लोगो को ही मालूम हो। समाचार तुम्हारे महल से बाहर न जाए तो अच्छा है। तुम लोग प्रस्तुत रहो। पुत्र ! अभी जाकर सम्राट से सभा भवन म भेंट करो। मैं प्रबध करने जा रहा हू। रात्रि से पूव फिर लौटूगा। कुछ कमकाड का विधान करना होगा

गुरु उठ खडे हुए।

एक और आकस्मिक घटना '—राम जसे भाव शून्य हो गए थे। उ होने यान्त्रिक ढग से गुरु को प्रणाम कर उन्हें विदा किया।

सीता ने अपने उल्लास से बाहर निकल राम को देखा—राम न प्रसन्न थे न उदास। व गभीर थ—चितन म मग्न प्रश्नो से जूझते हुए भीतर की उथल पुथल म लीन।

क्या हुआ राम ?

कुछ विशेष तो नही।'

आप प्रसन्न नही है ?

प्रसन्नता स्पष्टता से आती है। मैं अपने मन म स्पष्ट नही हू।

क्या ?'

एक ओर विपरीत कतव्यो ने द्वद्वो के ज्वार उठा दिए हैं और दूसरी ओर मुझे यह युवराज्याभिषेक अत्यन्त असहज लग रहा है।"

रघुकुल म ज्येष्ठ पुत्र का युवराज्याभिषेक असहज होता है क्या ?' सीता बोली।

"नहीं।" राम का स्वर मन की गुत्थियों से भारी था। "किंतु गुरु का अकस्मात आकर ऐसा महत्त्वपूर्ण निर्णय गोपनीयता से सुनाना और उठकर तुरंत चल जाना। इतना ही नहीं, आज राज-परिषद् का निर्णय करना और कल प्रातः अभिषेक हो जाना। इस भगदड़ का कारण? ऐसे समारोह महीनों की तैयारी के पश्चात होते हैं। सारे राज्य में घोषणाएं होती हैं। समस्त मित्र राजाओं, मनीषियों, ऋषियों, आचार्यों, सामंतों, श्रेष्ठियों आदि को निमंत्रित किया जाता है। पर कोसल के युवराज का अभिषेक गुप्त रीति से होगा—सबकी दृष्टि से बचाकर? रात-रात में कल प्रातः तक कितने लोगों को निमंत्रण जा सकेगा? कितने लोग अयोध्या पहुंच सकेंगे? सोचो तो, अन्य संबंधी तो दूर—सम्राट सीरध्वज तक को निमंत्रण नहीं भेजा गया। स्वयं भरत-शत्रुघ्न भी अयोध्या में उपस्थित नहीं।"

"आप ठीक कह रहे हैं।" सीता भी गंभीर हो उठी, "आप सम्राट को मिल लें। संभव है, वे कोई उपयुक्त उत्तर दे पाएं।"

"मां को सूचना दे दो। मैं पिताजी से मिलकर आता हूं।"

रथ चला तो राम ने अपने हृदय को टटोला।

गुरु के आने के बाद से उनका मन विभिन्न प्रश्नों और गुत्थियों में उलझा हुआ था—पर बात उन गुत्थियों तक ही सीमित नहीं थी। वह तो आकस्मिक प्रतिक्रिया मात्र थी—सतह में छलक आए, पानी के घूंट-सी। सोचने को तो और भी बहुत कुछ था।

उन्हें राज्य दिया जा रहा था। क्षत्रिय शासन-दंड ग्रहण कर प्रजा का पालन नहीं करेगा तो और कौन करेगा। यह उनका कर्तव्य था। राज्य का अधिकार भोग के लिए नहीं, कर्तव्य-पालन के लिए ही था। राज्यभार छोड़ना कर्तव्य से मुंह मोड़ना था। आज यह दायित्व उनके कंधों पर डाला जा रहा है, तो राम उसका तिरस्कार नहीं कर सकते।

किंतु राम जानते हैं कि सम्राट के विवाहों का अपना इतिहास है। कैकेयी के विवाह की शर्त थी कि उनका पुत्र ही कोसल का युवराज होगा। आरंभ में कैकेयी अपनी बात पर बहुत दृढ़ रही थी, किंतु धीरे-धीरे वह रघुकुल की मान-चली परंपराओं के अनुकूल होती गयी थी, और अपना —

विरोध भूलती गयी थी। राम के प्रति उसका विरोध समाप्त हो गया था कैकय नरेश द्वारा सम्राट से लिया गया वचन भी वह भूल गयी थी। क्रमशः, राम के सामने कैकेयी का चरित्र उद्घाटित हुआ था। अद्भुत थी कैकेयी! उसके हृदय में विष तथा अमृत के सरोवर एक साथ विद्यमान थे। प्रश्न केवल यह था कि किस संदर्भ में उसके हृदय का कौन सा सरोवर उद्वेलित होता है। सदय होती तो वह पूर्ण अमृत होती तब कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि रुष्ट होने पर कैकेयी तनिक-सी कठोर भी हो सकेगी। किंतु जब उसके मन का विष-सरोवर उद्वेलित होता, तो वह इतनी क्रूर हो जाती थी कि उसमें कोमलता का एक कण ढूंढ़ना भी असंभव हो जाता।

कैकय-नरेश ने सम्राट से वचन लिया था कि उनका नाती कोसल का युवराज होगा। कैकेयी का पुत्र भरत था राम नहीं। यह अन्य बात थी कि कैकेयी ने सायास उस वचन को भुला दिया था। आरंभिक कटुता के बीत जाने पर कैकेयी ने एक बार जो राम को पुत्र का स्नेह दिया तो वह भरत और राम में भेद करना भूल गयी। उसने कई बार अपने मुख से राम को अयोध्या का भावी युवराज कहकर पुकारा था।

किंतु सम्राट द्वारा बरती जा रही यह गोपनीयता राम के मन में संदेह उत्पन्न कर रही थी। भरत अयोध्या में नहीं है। उसकी अनुपस्थिति में इस त्वरित ढंग से राम का युवराज्याभिषेक क्या अर्थ रखता है? सम्राट ने फिर अपनी घबराहट में बिना समझे-बूझे कोई विकट कृत्य तो नहीं कर डाला?

राम ने राज-सभा में सम्राट के निजी कक्ष में जाकर पिता के चरणों में प्रणाम किया।

सम्राट ने गद्गद स्वर में आशीर्वाद दिया, "शत्रुओं पर विजय पाओ, पुत्र!"

सम्राट अत्यन्त चिंतित दीख पड़ते थे—अस्त-व्यस्त और परेशान कदाचित थोड़े-से भयभीत भी। सम्राट् के निजी सेवकों को छोड़ अन्य कोई भी व्यक्ति वहां उपस्थित नहीं था। सभा विसर्जित हो चुकी थी। सारे मंत्री और सामंत जा चुके थे। अकेले सम्राट किसी चिंता में डूबे खोए

खाए-से बठे थे। राम को सम्राट की आकृति पर उस चिंतित प्रहरी के-से भाव दिख जो अपने सरक्षण मे रखी गयी किसी वस्तु की सुरक्षा के लिए बहुत चिंतित हो और चाहता हो कि कुछ अ यथा हो जान से पहले किसी प्रकार वह उस वस्तु की उचित व्यवस्था कर दे

' सम्राट चिंतित हैं।" राम ने बहुत कोमल स्वर म बात आरभ की।

"सम्राट नही एक पिता चिंतित है, पुत्र ! " दशरथ बोले, 'आज मैंने राज-परिषद मे तुम्हारे युवराज्याभिषेक का प्रस्ताव रखा था। सभा न एक-मत से उसका समथन किया है। मैं चाहता हू कि यह अभिषेक कल प्रात ही हो जाए। काय जितना शीघ्र हो जाए उतना ही अच्छा।'

राम ने अपनी दृष्टि पिता की आखो पर टाग दी पिताजी ! इस अपूव शीघ्रता का कारण ? जिस ढग से मेरा अभिषेक हो रहा है उसम कुछ अनुचित होने की गध है जस धक्के मे न हुआ तो फिर यह रह ही जाएगा।'

' मैं जानता था। इसीलिए तुम्ह बुलवाया था। दशरथ का स्वर कातर था, प्रश्न मत करो राम ! इस समय कुछ मत सोचो, कुछ मत पूछो। जो कह रहा हू करो। पुत्र ! मनुष्य की बुद्धि बहुत चचल होती है, और परिस्थितिया बलवान। इससे पहल कि मेरी चित्त-वत्ति बदल जाए, अथवा मैं परिस्थितियों के सम्मुख अवश हो जाऊ, और यह अवसर हाथ स निकल जाए तुम अपना युवराज्याभिषेक करवा लो।

पिताजी !'

'शका मत करो राम ! मैं इस समय उत्तेजना और चिंता मे विक्षिप्त हो रहा हू। दिन रात दु स्वप्नो से घिरा हुआ [redacted]। अवकाश नहीं है। गुरु जैसा कह सीता-सहित वैसा ही व्रत-पालन करो। जाओ।

सम्राट की इस मन स्थिति मे उनके सम्मुख रुकना या उनस प्रश्न करना सभव नहीं था।

राम लौट पड़े।

पिता को आशका थी कि राम का युवराज्याभिषेक कदाचित् न हो पाए उन्ह विघ्न दिखाई पड रहे थे। क्यों आशका थी पिता को ? उन्हें कौन-सी बाधाए दिखाई पड रही थीं ? दु स्वप्न ! पिता न कुछ दु स्वप्नों

की चर्चा की थी—कौन से दुःस्वप्न उन्हें सता रहे थे ? निश्चित रूप से पिछले तीन सप्ताहों में सम्राट ने जो कुछ किया था, वह उन दुःस्वप्नों का ही परिणाम था।

पिता के दुःस्वप्न और राम के द्वंद्व ! पिता के सम्मुख प्रश्न यह था कि राम का युवराज्याभिषेक हो पाएगा या नहीं—कहीं अभिषेक का यह अवसर छिन न जाए। किंतु राम के सम्मुख प्रश्न था—वे अभिषेक स्वीकार करें या नहीं ? विश्वामित्र की मूर्ति प्रश्न चिह्न बनकर बार-बार उनके सम्मुख आ खड़ी होती थी, "नहीं आओगे राम ? तुम रघुवंशी होकर अपना वचन भंग करोगे ? क्या है राम तुम्हारे जीवन का लक्ष्य ? सोचो ! तुम्हारा जीवन सुख भोग के लिए नहीं है। उसके लिए अन्य लोग हैं। तुम भिन्न हो। तुम साधक हो राम ! राम ! तुम शासन भार नहीं लोगे तो भरत उसे स्वीकार कर लेगा, लक्ष्मण कर लेगा। पर तुम वन नहीं गए तो कोई नहीं जाएगा—न भरत, न लक्ष्मण, न शत्रुघ्न।"

पिता एक बात कहते हैं, विश्वामित्र दूसरी। इसी ऊहापोह के मध्य किसी समय स्वयं राम के अपने मन का भय बोलने लगा—सिंहासन स्वीकार कर लिया, एक बार सम्राट बनकर बैठ गया तो मेरी मानवीय दुर्बलताएं नहीं जाग उठेंगी क्या ? सुविधापूर्ण विलासी जीवन में लिप्त हो बहानों की आड़ में स्वयं को प्रवंचित नहीं करूंगा ? मोह-त्याग बड़ा कठिन होता है। जब तक मोह का रोग न लगे, तभी तक ठीक। यदि मोह-त्याग में मैं सफल हो भी गया तो राज्य के विभिन्न उत्तरदायित्वों से मुक्त कर कौन मुझे उन गहन वनों में जाने देगा ! न्याय और समता को, मानवता और उच्च चिंतन को, ज्ञान और विद्या को एक रक्षक की प्रतीक्षा है और उस रक्षक का दायित्व संभालने का वचन राम ने विश्वामित्र को दिया था। सम्राट बन अयोध्या में बैठकर सेना की सहायता से यह कार्य नहीं हो सकता। वेतनभोगी सेनाओं की सहायता से मानव-जाति का भाग्य नहीं बदला जा सकता। वह तो जन उद्बोधन से ही संभव होगा। अभिषेक हो जाने से वन जाने का अवसर कभी नहीं आएगा।

यह कैसे संभव होगा ?

पिता की इच्छा और ऋषि को दिया गया राम का वचन
अयोध्या के सिंहासन का दायित्व और वन के रक्षक का कर्तव्य
दो कर्तव्य और दो दिशाएं
राम की दुविधा का कोई अंत नहीं।

राम को देखते ही सीता उठकर उनकी ओर आयीं।

"मिल आए?"

"हां प्रिये!"

"किसलिए बुलाया था?"

"यह आदेश देने के लिए कि कल अभिषेक करवा लूं।" राम का स्वर उत्साहशून्य था।

"आपने उनके सामने प्रश्न रखे?"

"वे कुछ भी सुनने की मनःस्थिति में नहीं थे।"

राम की दृष्टि सीता के चेहरे पर टिक गयी। सीता की वाणी और आकृति से शंकाओं का सारा कुहरा उड़ गया था। उनका चेहरा आवृत बाष्प को पोंछ दिए जाने के पश्चात अधिक निखर आने वाले दर्पण के समान चमक रहा था। इस उल्लास के सामने क्या कोई संदेह टिक सकता था! क्या राम उनके सामने अपने मन का द्वंद्व रख सकते थे! अपने दुःस्वप्नों में डूबे सम्राट प्रश्न सुनने की मनःस्थिति में नहीं थे तो क्या पति के युवराज्याभिषेक के उल्लास में मग्न सीता राम के द्वंद्व या विश्वामित्र के आह्वान को सुनने की मनःस्थिति में थीं? ऐसी बात सुनते ही उनका उल्लास बिखर नहीं जाएगा? राम इतने क्रूर कैसे हों!

सीता से ही नहीं कह सकते, तो राम अपने मन का द्वंद्व किससे कहें?

सीता का ध्यान न राम की भावशून्य आकृति की ओर था, न उनके मस्तिष्क में विपरीत दिशाओं में बहने वाले परस्पर टकराते हुए झंझावातों की ओर। वे अपने उल्लास की लहर में बहती हुई बोलीं, "मैंने मां को समाचार दिया। प्रसन्नता के मारे उनकी जो स्थिति हुई, उसके विषय में आपको क्या बताऊं। पहले तो खड़ी-खड़ी देखती रहीं। फिर

मुझे वक्ष से लगा लिया। भीच भीचकर प्यार करती रही और अत म मेरे कधे पर सिर रखकर रो पडी। बाली सारा जीवन मैंने इसी अवसर की प्रतीक्षा की है बहू ! जानती थी सम्राट की ज्यष्ठ पत्नी हाने के नात मैं साम्राज्ञी हू, मेरा पुत्र सम्राट का ज्येष्ठ पुत्र है। राम योग्य वीर कतव्य परायण तथा लोकप्रिय है। फिर भी आज तक स्वय मुझे कभी यह विश्वास नही हुआ कि किसी दिन मेरा राम सचमुच युवराज बनेगा। यदि मैं बताऊ कि इस राज प्रासाद म किस किस प्रकार मेरा अपमान और उपक्षा हुई है, ता काई मेरा विश्वास नही करेगा। किंतु आज मैं कितनी प्रसन्न हू। मेरा राम युवराज होगा। मेर सारे दु ख दूर हो जाएग। मेरी बहू इस कुल म वसी उपेक्षित नही रहेगी जैसी मैं रही। मेरे पाते वसे निराश्रित नही होग जसा अपने शैशव म मेरा राम हुआ । मैं कैसे बताऊ राम ! कि कितनी प्रसन्न थी मा। उन्होंने तुरत माता सुमित्रा और देवर लक्ष्मण को समाचार भिजवाया। व सब लोग अत्यत प्रसन्न थे। मा भगवान से निरतर प्राथना कर रही हैं कि वे उनके पुत्र का युवराज्याभिषेक निर्विघ्न करवा दें ताकि इस राज प्रासाद म युधाजित का आतक समाप्त हा। मा रात भर निराहार साधना करेंगी। उन्होन मुझसे भी प्रात तक उपवास करन का कहा है। उनके मन म अब भी अनेक आशकाए हैं।

सीता अपनी बात कह चुकी। राम तब भी कुछ नही बोल।

क्या बात है आप अतिरिक्त रूप से मौन हैं ?

मुझे लगता है सीत !" राम मद स्वर मे बोले इस कुटुब म अनेक सदेह शकाए आशकाए विरोध द्वन्द्व ईर्ष्याए स्वाथ द्वष और जाने क्या-क्या विपने जीव-जतुओ के समान मौन सो रहे थे। आज मेरे युवराज्याभिषेक की चर्चा स व मारे जीव-जतु जाग उठे हैं। वे परस्पर लडेंगे। इस राज प्रासाद म बहुत कुछ विषला हो जाएगा। इधर मा के मन मे आशकाए हैं उधर पिताजी के मन म। और मैं कसे कह दू सीते ! कि मेरे मन म काई आशका नही है।'

आप '

हा प्रिये ! आशकाए ही नही, द्वन्द्व भी

द्वार पर परिचारिका प्रकट हुई, "पूज्य सुमंत्र राजकुमार के दर्शनार्थ उपस्थित हैं।'

राम चौंके। सुमंत्र! सुमंत्र के आने का अर्थ है—सम्राट् का असाधारण बुलावा। पर राम अभी तो सम्राट् से मिलकर आए हैं।

सीता का चेहरा भी कांतिहीन हो उठा। सुमंत्र क्या आए? क्या कहलवाया है सम्राट् ने ?

तात सुमंत्र!'

'हां, राम!' सुमंत्र ने अभिवादन किया 'सम्राट् ने मुझे आदेश दिया है कि मैं आपको यथाशीघ्र उनके समीप ले चलूं। मैं रथ लेकर आया हूं।'

राम ने एक अर्थपूर्ण दृष्टि सीता पर डाली।

सीता स्तंभित खड़ी थीं।

सम्राट् ने राम को अपने महल में बुलाया था।

सुमंत्र द्वार पर ही रुक गए, और राम ने भीतर जाकर पिता को प्रणाम किया। इस बार दशरथ उन्हें उतने हारे हुए नहीं लगे। थोड़ी देर पूर्व सभा भवन में देखे गए, और अब उनके सम्मुख बैठे सम्राट् में पर्याप्त अंतर था, किंतु पूरी तरह स्वस्थ वे अब भी नहीं लग रहे थे।

दशरथ ने राम को अपने समीप रखे गए मंच पर बैठने का संकेत किया।

'तुम्हें आश्चर्य होगा, राम! कि मैंने तुम्हें इतनी जल्दी क्यों पुनः बुला लिया। आश्चर्य की बात तो है, किंतु इस समय मैं आपे में नहीं हूं। मैं कितना भी प्रयत्न करूं, अपने मन की उथल-पुथल तुम्हें नहीं छिपा सकता। अपने जीवन में दुर्बलताओं के हाथों बंधकर, मैंने अनेक अन्यायपूर्ण कार्य किए हैं। पर अब मैं नहीं चाहता कि किसी भी स्वार्थ से, तुम्हारे स्थान पर किसी और को युवराज पद दूं। कल तुम्हारा युवराज्याभिषेक होना आवश्यक है। मैंने थोड़ी देर पूर्व तुम्हें प्रश्न पूछने से मना किया था। प्रश्न अब भी मत पूछना, पुत्र! पर मेरी बात मानो। गुरु वसिष्ठ तथा अपनी माता के कहे अनुसार, आज रात धार्मिक

आचरण तो करो ही, किंतु राम ! साथ ही आज रात अपनी रक्षा के प्रति असावधान मत रहना। मैं चाहता हूं तुम्हारे सुहृद, तुम्हारे शुभाकांक्षी तुम्हारे प्रिय लोग, आज रात जागकर तुम्हारी रक्षा करें या तुम्हें घेर-कर सोए।'

राम ने विस्मय से पिता को देखा।

आप इतने कातर क्यों हैं पिताजी ! वे स्थिर वाणी में बोले यदि आप किसी निश्चित संकट के विषय में जानते हैं, तो स्पष्ट बताएं। काल्पनिक आशंकाओं से पीडित न हों। इस आत्मश्लाघा न मान आपका राम किसी भी भयंकर से भयंकर शत्रु के विरुद्ध अपनी रक्षा करने में समर्थ है।

तुम्हारी क्षमता में मुझे तनिक भी संदेह नहीं। किंतु, पिता का मन असावधान नहीं रहना चाहता राम ! तुम्हारी रक्षा का पूर्ण प्रबंध होना चाहिए। यदि तुम्हें आपत्ति न हो तो मैं अपने अंग रक्षकों की एक टुकडी भेज दूं। मेरी अपनी सुरक्षा के लिए तुम्हारा सुरक्षित रहना बहुत आवश्यक है। सारी अयोध्या में सिवाय तुम्हारे मुझे कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं पडता जो मेरी कुशल चाहता हो।

पिताजी, मुझे क्षमा करें। राम रुक नहीं सके आपकी ये आशंकाएं मेरी समझ में नहीं आ रही और यह त्वरा भी मेरे लिए कौतुक की वस्तु है। आपका ध्यान कदाचित इस ओर नहीं गया कि भरत और शत्रुघ्न भी नगर में नहीं हैं। क्या इस अवसर पर उनका अयोध्या में होना आवश्यक नहीं है ?'

नहीं।' दशरथ खीझकर बोले 'भरत के अयोध्या में आने से पूर्व ही तुम्हारा युवराज्याभिषेक हो जाना चाहिए।'

किंतु क्यों पिताजी ?'

'शुभ कामों में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाया करते हैं पुत्र ! उनका शीघ्र हो जाना अच्छा है। विलंब उनके लिए घातक होता है।"

राम के मन का संदेह बलवान हो उठा—निश्चय ही सम्राट को भरत अथवा कैकेयी की ओर से ही आशंका है किंतु वे खुलकर कुछ कहना नहीं चाहते। संभव है कि पिता की आशंकाओं का कोई ठोस आधार हो

अथवा यह भी समव है कि य वद्ध पिता के भीत मन की दुष्कल्पनाए मात्र हो।

पिता किस आवेग से यह बात कह रहे हैं ! निश्चय ही उन्होने कैकेयी मे इस विषय म विचार विमश नहीं किया होगा। सभव है कि चर्चा तक न की हो, और उन्ह पूण अधकार म ही रखा हो। रनिवास म किसी को भी यह समाचार ज्ञात नही था। स्वय माता कौसल्या का सीता न जाकर बताया था, और उन्होंने आगे माता सुमित्रा और लक्ष्मण को सूचना भिजवाई थी। जब यह समाचार उन लोगो तक स गुप्त रखा गया है तो कैकेयी को अवश्य ही इस सदभ म कोई खबर न होगी

दशरथ की उत्कट इच्छा को राम अपने अनुमान से समझने का प्रयत्न कर रहे थ। आरभिक जीवन म माता कौसल्या तथा स्वय राम के प्रति की गयी उपेक्षा तथा अनादर की शायद प्रतिक्रिया जागी थी सम्राट म। पहल जिस विकटता स व उनके विरुद्ध बह थे अब उसी विकटता म उनक अनुकूल हो रहे थे ऐसी मन स्थिति मे पिता से राम कुछ नही कह सकत थे।

किंतु क्या बात इतनी-सी ही थी ? क्या पिता स्वय अपन प्राणा के लिए भयभीत नहीं है ? क्या उन्होन यह नहीं कहा कि सिवाय राम क सारी अयोध्या मे कोई उनकी कुशल नही चाहता ? वे राम का सत्ता सौंपना चाहत है राम की सुरक्षा चाहत हैं—इसलिए कि राम उनकी रक्षा कर सकें। क्या पिता इस सीमा तक डरे हुए हैं कि व भरत तथा कैकयी की ओर से अपन प्राणो के लिए भी आशकित हैं क्या है यह ?—सम्राट की दुश्चिताए ? स्वाथ ? न्याय की भावना ? अथवा राम के प्रति स्नेह ?—

और भरत के नाना को दिया गया सम्राट का वचन ? क्या पिता उस वचन को भी भूल गए हैं या वे सायास उसकी उपेक्षा कर रह हैं।

रघुकुल म जन्म लेकर, दशरथ अपना वचन तोडना चाहत हैं ?

क्यो ?

राम को राज्य का अधिकार देन के लिए ?

तो राम कह दें कि व पिता स सहमत नहीं। जिस अभिषेक क लिए पिता इतन आतुर है कि न उन्ह धम सूझता है न न्याय—न औचित्य न मर्यादा। वह अभिषक राम को तनिक भी उत्सुक नहीं कर पाता। व

अभिषेक को अभी टालना चाहते हैं। वे थोड़े समय के लिए—किसी अन्य कर्तव्य की पूर्ति तक के लिए—इस कर्तव्य को टालना चाहते हैं

पिता स्वीकार नहीं करेंगे।

राम क्या करें ?

जाओ पुत्र ! अब विलंब मत करो। दशरथ ने आदेश दिया, मेरी बात मानने में तनिक भी प्रमाद मत करना। धार्मिक अनुष्ठानों के बीच भी अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना। इस विषय में मैं लक्ष्मण को भी सावधान करना चाहता था किंतु भय है कि कहीं वह अतिरिक्त रूप से उग्र तथा मुखर न हो उठे। उससे सारी गोपनीयता भंग हो जाएगी।

अपने द्वंद्वों में उलझे कर्तव्यविमूढ़-से राम अपने महल में लौट आए। वे स्वयं ही अपने-आपको पहचान नहीं रहे थे। यह राम का रूप नहीं था। राम के सम्मुख उनका मार्ग स्पष्ट हुआ करता है, लक्ष्य निश्चित होता है—दो टूक। पर आज राम के सम्मुख कुछ भी स्पष्ट नहीं था—कोई उनके मन की अवस्था नहीं समझ रहा था, कोई नहीं।

महल में उत्सव का-सा दृश्य था। सारी गोपनीयता के रहते हुए भी महल के प्रत्येक कर्मचारी को ज्ञात हो चुका था कि प्रातः राम का युवराज्याभिषेक होगा। सीता के उल्लास ने गोपनीयता की चिंता नहीं की थी। वैसे भी जब प्रबंध आरंभ होता है तो गोपनीयता कहां रह पाती है !

महल की सीमाओं के भीतर न केवल प्रत्येक व्यक्ति के वस्त्र बदल गए थे वरन् सब की आकृतियां भी समारोह के उल्लास से दमक उठी थीं। और उन सब के मध्य सीता मन-ही-मन अलौकिक आनंद की बूंद-बूंद पीती हुई तृप्ति से दीप्त आयोजन करती घूम रही थीं। पुरोहित लोग आकर बैठे हुए थे और राजगुरु की प्रतीक्षा थी।

अनमने-से राम अपने कक्ष में अकेले जा बैठे। क्या करें वे इन परिस्थितियों में ?—पिता ने बल देकर कहा था कि परिस्थितियां अत्यंत बलवान होती हैं। क्या राम भी स्वीकार कर लें कि मनुष्य परिस्थितियों के सम्मुख विवश हो जाता है ? किंतु तब राम और दशरथ में अंतर क्या होगा ? वृद्ध दशरथ का हारा हुआ मन और युवक राम का असाधारण

क्या करें राम ?

पिता की आकांक्षा इतनी स्पष्ट है जैसे उनके प्राण उसी में अटके हों। माँ का वह सुख हृत्नाद। उन्होंने अनेक वर्षों तक—वरन् आजीवन इसी अवसर की प्रतीक्षा की है। माता का आत्मगर्वित मर्यादित उल्लास। और माता सुमित्रा, लक्ष्मण, गुरु वसिष्ठ, आर्य सुमन्त्र—सब लोग कितने प्रसन्न हैं। मुदत विजरथ तथा निजट को भी कन्याचित अब राम नाम हो गया हो। नहीं हुआ तो कल हो जाएगा। कल प्रजा-जन का भी पता चलेगा—कैसा उत्सव मनाएँगे वे सब! सम्राट के शासन में अब लोगों की आस्था नहीं है। फिर राम कैसे अपने दायित्व को छोड़कर भाग जाएँ। पलायन, राम की प्रकृति नहीं है

किंतु विश्वामित्र ? उनको दिया गया वचन ? वन में उनकी प्रतीक्षा करते हुए ऋषिगण, वानर भल्लूक गरुड़ गिद्ध कोल भील शबर किरात नाग और निषाद। उनके प्रति भी तो दायित्व है राम का। उनका दायित्व केवल अयोध्या तक सीमित नहीं हो सकता। राजनीतिक सीमाएँ मानवीय भावों, संवेदनाओं, दायित्वों और अधिकारों को संकीर्ण घेरों में बंद नहीं कर सकतीं। राम अयोध्या के हैं—अयोध्या का उन पर भरपूर अधिकार है, किंतु अधिकार उनका भी है, जो अयोध्या में नहीं हैं।

अनिर्णय राम की प्रकृति नहीं है। किंतु आज ? राम की संकल्प शक्ति मात्र इतनी ही है क्या ?

नहीं ! राम को निर्णय लेना होगा। राम के जीवन में निर्णय परिस्थितियाँ नहीं लेतीं। राम लेते हैं। उन्हें कोई-न-कोई मार्ग निकालना ही होगा—

'सौमित्र आए थे।" सीता ने बताया।

'हूँ।'

'वे बहुत प्रसन्न थे। इतने प्रसन्न कि कदाचित् कोई अपने अभिषेक से भी न हो।" सीता ने कटाक्ष से राम को देखा, "कल प्रातः फिर आने को कह गए हैं।'

'लक्ष्मण अवश्य ही बहुत प्रसन्न होंगे।" राम ने जैसे अपने-आपसे

पड़ा।

बड़े तटस्थ भाव से राम ने धार्मिक अनुष्ठान पूरे किए, और काफी गए, रात सोने के लिए बिस्तर पर आए। प्रातः जल्दी उठना है—वे जानते थे—उन्हें जल्दी सो जाना चाहिए था, पर यह मानसिक तनाव

राम अपने पलंग पर लेटे छत की ओर देख रहे थे। साथ के पलंग पर लेटी हुई सीता, अभी थोड़ी देर पहले तक उनसे बातें कर रही थी, किंतु दिन भर की थकान के कारण बातों के बीच में ही अचानक सो गयी थी। कितनी प्रसन्न थी सीता—निश्चित भी। निश्चित होने के कारण ही वे सो पायी थीं। सोयी भी कैसे जैसे थका हुआ बच्चा भोजन करते-करते बीच में लुढ़क जाए—आधा कौर हाथ में और आधा मुख में। सीता भी ऐसे ही सो गयी—आधी बात मुख में और आधी मन में लिये लिये। पर राम को अब भी नींद नहीं आ रही थी। दिन भर के कामों से न केवल शरीर बुरी तरह थका हुआ था चिंताओं से मस्तिष्क भी फटा जा रहा था। आंखों के पपोटे भारी थे और थकान के मारे जल रहे थे—पर नींद नहीं आ रही थी।

क्या करें राम?

युवराज पद ठुकरा दें!

कर्तव्य की उपेक्षा कैसे करें?

वन न जाएं!

पर वह भी कर्तव्य है। उसकी उपेक्षा कैसे करें?

तो क्या करें?

क्या?

दोनों कर्तव्यों में से एक को चुनना होगा। दोनों में से अधिक महत्त्वपूर्ण क्या है? निश्चित रूप से वन जाना! तो उसे ही चुनना होगा। अयोध्या का शासन यदि सम्राट नहीं संभाल सकते तो राज-परिषद् की देख-रेख में भरत संभाल सकते हैं। भरत से सम्राट को खतरा हो तो लक्ष्मण संभाल सकते हैं वन केवल राम ही जा सकते हैं।

भरत! भरत से पिता आशंकित हैं और माता भी। क्या राम भी? नहीं! राम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते।

तो वन जाना ही तय रहा ?

हां ! राम की ओर से तय है। किंतु पिता माता सीता तथा अन्य लोगों की इच्छा ? उनकी प्रसन्नता ? राम के अभिषेक न कराने में उनका दुःख ? उनकी हताशा ?

राम के मन में बैठे विश्वामित्र जोर से ठहाका मारकर हंस पड़े, "इस-उस की इच्छा और प्रसन्नता की चिंता करते रहे तो निभा चुके तुम दायित्व ! प्रत्येक उदात्त कार्य में निकट के प्रियजन सगे संबंधी सदा ही हताश हुए हैं। तुम्हारा क्या विचार है, जब दधीचि ने अपनी अस्थियां दान की थीं तो उसके माता पिता पत्नी बच्चे प्रसन्न हुए होंगे ! बहाने मत ढूंढ़ो राम ! स्वयं को प्रवंचित मत करो !"

और सहसा जैसे राम जल उठे। एक ताप उन्हें तपाता रहा जैसे आग कच्चे घड़े को तपाती है। क्रमशः ताप क्षीण हुआ तो राम ने पाया कि वे तप चुके हैं पक्के हो चुके हैं वे निर्णय कर चुके हैं।

साथ ही एक स्वर मन में गूंज रहा था—'कोई नहीं मानेगा, राम ! न पिता न माता न सीता, न लक्ष्मण—कोई नहीं।'

किंतु इस स्वर की उपेक्षा तो करनी ही थी।

बड़ी कठिनाई से रात के अंतिम प्रहर में राम को नींद आयी। पर सोते हुए भी दायित्व के तनाव का बोझ मन पर रहा। वे अधिक देर सो नहीं पाए। प्रभात के चिह्न प्रकट होते ही उनकी नींद उचट गयी। नींद न भी उचटती तो उन्हें चारणों द्वारा जगा दिया जाता। आज युवराज्याभिषेक का दिन था, और प्रातः से ही समस्त कार्यक्रम निश्चित थे। उन्हें शीघ्र ही पिता के निकट उपस्थित होना था।

स्नान कर राम जाने के लिए प्रस्तुत हुए ही थे कि उन्हें सुमंत्र के आने का समाचार दिया गया। राम चकित हुए—क्या हो गया है पिताजी को ! क्यों बार-बार सुमंत्र को भेज देते हैं ! राम को अभी तनिक भी विलंब नहीं हुआ था। वे निश्चित समय से पूर्व ही पिता के पास जाने के लिए प्रस्तुत थे ताकि उनसे अपनी बात कह सकें। फिर भी सुमंत्र आ गए। कोई साधारण

परिचारक या सारथी आया होता तो बात और थी। पर सुमन्त्र—सम्राट के निजी सारथी अनेक विशेषाधिकारों से सम्पन्न। सारथी के साथ साथ उनके मंत्री सखा तथा निजी सेवक! समस्त राजनिलयों में कहीं भी बिना रोक टोक के आने जाने की सुविधा से सम्पन्न। उन्हीं सुमन्त्र को पिता ने फिर भेजा है कोई महत्त्वपूर्ण बात है या सामान्य बुलावा ही। सम्भव है नियत कार्यक्रम में कोई नई कड़ी जुड़ी हो पिता बिना उनकी बात सुने ही काम आगे बढ़ाते जा रहे हैं। प्रबंध जितना आगे बढ़ जाएगा, राम की कठिनाई भी उतनी ही बढ़ जाएगी किंतु सम्राट की व्यग्रता!

तात! मैं आ ही रहा था।

राम ने देखा आज के सुमन्त्र पिछली सन्ध्या आने वाले सुमन्त्र से बहुत भिन्न थे। उनकी आकृति पर उत्सव और समारोह का उल्लास नहीं था। उत्साहशून्य चेहरा अतिरिक्त रूप से गंभीर लग रहा था। उस पर चिंता की रेखाएं भी सहज स्पष्ट थीं। उनकी आंखों में आज ममता और प्रेम नहीं था उनमें सहज निर्मलता भी नहीं थी। वे आंखें शुष्क नीरस मरुभूमि के समान उजाड़ थीं जीवन-हीन—जैसे उनका जीवन स्रोत ही सूख गया हो। रात की सुख निद्रा के पश्चात उन्हें ऊर्जा और स्फूर्ति से भरे-पूरे लगना चाहिए था किंतु वे प्रात के निर्वाणोन्मुख दीपक के समान थके थके लग रहे थे।

समारोह के दायित्व से दबे आप रात भर सो नहीं सके? राम का स्वर कोमल तथा मधुर था।

सुमन्त्र ने कोई उत्तर नहीं दिया, अपनी अन्यमनस्कता में जैसे उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। वे अपनी फटी फटी आंखों से प्रत्येक वस्तु के आर-पार देखते रहे। उनकी आकृति भावशून्य यान्त्रिकता लिए हुए थी।

एक अटपटे मौन के पश्चात सुमन्त्र बोले राम! आपका कल्याण हो। शीघ्र सम्राट के पास चलिए। सम्राट कैकेयी के महल में उनके पास हैं।' उनका कंठ अवरुद्ध होने की सीमा तक भर्राया हुआ था।

राम का आश्चर्य बढ़ गया—इतनी सुबह सम्राट माता कैकेयी के महल में कैसे पहुंच गए! पिछली शाम तक सम्राट इस विषय में अत्यन्त गोपनीयता बरत रहे थे। सम्राट की आशंकाओं का इंगित कैकेयी की ओर

ही था। यह संभव नहीं कि सम्राट वहां मंत्रणा के लिए गए होंगे। यदि सम्राट ने गोपनीयता का व्यवहार न किया होता, तो बात और थी। तभी स्थिति में कैकेयी, इस अभिषेक में माता कौसल्या से भी अधिक सक्रिय होती।

पर सुमंत्र इतने पीड़ित क्यों हैं?

बात क्या है तात सुमंत्र?

कुमार स्वयं चलकर देख लें।" सुमंत्र ने अपने होंठ चाप लिए थे।

राम का मन सहसा एक अन्य दिशा में सोचने लगा।

सम्राट ने समाचार गुप्त रखा था, किंतु वह गुप्त नहीं रहा होगा। किसी प्रकार कैकेयी को सूचना मिल गयी होगी। कैकेयी सम्राट के व्यवहार से क्षुब्ध हो गयी होगी। सम्राट क्षमा मांगने रानी के पास पहुंचे होंगे, और अब कैकेयी के चरणों पर सिर रखे पड़े होंगे। यह नई बात नहीं थी। कैकेयी पर सम्राट मुग्ध चाहे कितने ही क्यों न रहे हों, किंतु उस पर विश्वास उन्होंने कभी नहीं किया। अविश्वास के कारण न कैकेयी के प्रति सहज हो सके, न कैकेयी के अप्रतिम तेज के सामने अपना अविश्वास प्रकट कर सके। क्रमशः उनके मन में कैकेयी का भय बढ़ गया था और उनके सम्मुख उनका आत्मविश्वास अत्यन्त क्षीण हो गया था। कैकेयी की अप्रसन्नता के भय से उससे पूछे बिना काम कर डालना और फिर कैकेयी के हाथों अपमानित होने के भय से उस काम को छिपाते फिरना सम्राट की प्रवृत्ति हो गयी थी। उसके पश्चात दीन कातर सम्राट और बिफरी हुई सिंहनी सी कैकेयी का नाटक लंबे समय तक चलता था। ऐसे नाटक राम ने इस घर में अनेक बार देखे थे। कहीं ऐसा तो नहीं कि कैकेयी ने इस युवराज्याभिषेक का विरोध किया हो, और अब सम्राट स्वयं को अक्षम पाकर सब-कुछ कैकेयी के मुख से ही कहलवाना चाहते हों? किंतु कैकेयी का राम के प्रति स्नेह... कैकेयी उनके युवराज्याभिषेक का विरोध कैसे करेगी?

कक्ष में प्रवेश करते ही राम ने जो कुछ देखा, वह अनेक संभावनाओं पर विचार कर उनका साक्षात्कार करने के लिए तैयार होकर आए हुए

राम के लिए भी सर्वथा अप्रत्याशित था। आज तक उन्होंने माता तथा पिता को राजसी वेश में अत्यन्त गरिमापूर्ण ढंग से राजसिंहासन, मंच अथवा पर्यंक पर बैठे हुए देखा था। पर आज वृद्ध सम्राट अत्यन्त अव्यवस्थित अवस्था में आस्तरणहीन फर्श पर पड़े थे। उनकी मुद्रा पीड़ित तथा करुण थी। सारे शरीर में कोई स्पन्दन नहीं था। श्वास चलने का भी कोई प्रमाण नहीं था नहीं वे सम्राट् यथा नहीं थे किंतु चेतन भी उन्हें नहीं कहा जा सकता। वे स्थिर शव के समान पड़े थे।

माता कैकेयी कुछ हटकर खड़ी थीं—सीधी दंडवत। चेहरे पर उग्रता कठोरता एवं हिंसा के भाव थे जिनके कारण वे संतुलित नहीं लग रही थीं। वेशभूषा भी सामान्य नहीं थी। प्रसाधन से सर्वथा शून्य। रात को सोने के लिए पहने गए कुचले हुए वस्त्रों में ही वे उपस्थित थीं। यह शोभा प्रिय कैकेयी की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं था। शरीर पर एक भी आभूषण नहीं था। सारे आभूषण फर्श पर जहां-तहां बिखरे पड़े थे जैसे भयंकर आवेश में उन्हें उतार उतारकर पटका गया हो। केश बुरी तरह बिखरे हुए थे जैसे किसी ने रात भर उन्हें नोचा खींचा हो।

दोनों की ही स्थिति राम को स्तंभित कर देने वाली थी।

राम ने स्वयं को संभाला। उन्होंने दोनों को प्रणाम किया, किंतु आशीर्वचन किसी के मुख से नहीं निकला।

क्या हुआ ?—राम सोच रहे थे—कोई भी बोलता नहीं। बस पिछले दिनों जो कुछ घटा था वह सारा कुछ इतना आकस्मिक और नाटकीय था, कि अब कोई भी घटना विचित्र नहीं लगती थी।

पिताजी ! मैं उपस्थित हूं। आदेश दें।

दशरथ ने क्षण भर के लिए आंखें खोलीं राम को भरपूर दृष्टि से देखा। फिर जैसे राम को देख नहीं पाए। आंखें चुरा लीं। करवट बदली और आंखें मूंद लीं।

क्षण भर खुली उन आंखों में राम ने अथाह वेदना को मूर्तिमान देखा था। उनमें क्रोध आवेग क्षोभ कुछ भी तो नहीं था। उनमें राम के लिए उपेक्षा प्रताड़ना या उपालंभ—कोई भाव नहीं था। उनमें तो पीड़ा का समुद्र हाहाकार कर रहा था—जैसे कोई भीतर-ही भीतर निरंतर कचोट

रहा हो। उसमें ग्लानि थी, हताशा थी। उग्रता तो थी ही नहीं।

राम ने कैकेयी की ओर देखा—कैकेयी अतिरिक्त रूप से सख्त नज़र आ रही थी। उसके चेहरे पर दशरथ की आँखों की पीड़ा का एक कण भी नहीं था। सायास उद्दंडता अवश्य थी। कृत्रिम और सायास लाया गया तनाव था।

माता !'

कैकेयी के लिए मौन बने रहना अधिक सरल था। बोलने के लिए उसे भी प्रयास करना पड़ा। शब्द अनाहूत नहीं आए। वह कठोर स्वर में बोली, "राम ! तुम्हारे पिता तुमसे बहुत प्रेम करने लगे हैं।"

"प्रेम तो मुझसे आप भी करती हैं।" राम बोले, "किंतु यह स्थिति"

कैकेयी का तनाव कुछ कम हुआ। बोली तो उसका स्वर पहले की अपेक्षा कुछ कोमल और सहज था, "सम्राट ने एक वचन मेरे पिता को दिया था, उसकी चर्चा मैं नहीं कर रही। किंतु मेरे उपकार के बदले, शंबर-युद्ध के पश्चात उन्होंने दो वर मुझे दिए थे। आज मैं वे वरदान माँग रही हूँ और ये सूर्यवंशी सहर्ष वरदान देने के स्थान पर राम भर इसी प्रकार भूमि पर पड़े दीर्घ निःश्वास छोड़ते रहे हैं। इन्होंने अपने इस रूप से मुझ पर दबाव डालने का प्रयत्न किया है और अब भी कर रहे हैं कि मैं अपने माँगे हुए वरदान फिरा लूँ।"

कैकेयी के शब्दों ने सम्राट के हृदय पर कशा का-सा आघात किया। वे तड़पे, "कैकेयी"

"क्या ?" कैकेयी के आकाश में ज्वार आ गया। उसे बोलने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ा। आवेश की अग्नि में बाँध जल गया और अवरुद्ध धारा बह निकली, "राम ! मैं जानती हूँ कि मैं बहुत कठोर हो रही हूँ। सब लोग मुझे बुरा कहेंगे, पर मेरे मन में तनिक भी पाप-बोध नहीं है। मेरे मन में तनिक भी मैल और दुराव नहीं है। अपने पिता की ओर देख तुम्हें लग रहा होगा कि मैं बड़ी दुष्टा हूँ, जो अपने पति को इतना कष्ट दे रहा। पर सच यह नहीं है पुत्र ! तुम्हें मैंने पीड़ा भी दी है और अपने

मन की ममता भी। बोलो तुम मेरा निष्पक्ष याय करोगे ?"

राम मुसकराए पुत्र यायकर्ता की स्थिति म न भी हो तो मा के मन की व्यथा तो सुन ही सकता है।

मैं आज वह सब कहूगी राम ! जो चाह कर भी आज तक कह नहा सकी।' कैकेयी बोली मैं देवी होने का ग्वाग नही कर रही। तुम्हार प्रति विशेष प्रेम और पक्षपात भी नही जता रही "

कहो मा !

मैं वह धरती हू राम ! जिसकी छाती करुणा से फटती है तो शीतल जल उमडता है, घणा से फटती है तो लावा उगलती है। दोनो मिल जाते है तो भूचाल आ जाता है ! आज मेरी स्थिति भूडोल की है, राम !" आवेश स कैकेयी का चेहरा लाल हो गया मैं इस घर म अपने अनुराग का अनुसरण करती हुई नही आयी थी। मैं पराजित राजा की ओर म विजयी सम्राट को सधि के लिए दी गयी एक भेंट थी। सम्राट और मेरे वय का भेद आज भी स्पष्ट है। मैं इस पुरुष का पति मान पत्नी की मर्यादा निभाती आयी हू पर मेरे हृदय स इनक लिए स्नेह का उत्स कभी नही फूटा। य मेरी माग का सिंदूर तो हुए अनुराग का सिंदूर कभी नहीं हो पाए। मैं इस घर मे प्रतिहिंसा की आग म जलती सम्राट स सबधित प्रत्येक वस्तु से घणा करती हुई आयी थी। तुम जैसे निर्दोष निष्कलुष और प्यारे बच्चे को अपने महल म घुस आने के अपराध म मैंने अपनी दासी से पिटवाया था '

मुझे याद है मा !'

वह मैंने तुम्हे नही पिटवाया था मरी प्रतिहिंसा ने सम्राट के पुत्र को पिटवा कर सम्राट को पीडित कर प्रतिशोध लेना चाहा था। तब मैं तुमसे घणा करती थी तुम्हारी मा से घणा करती थी बहन सुमित्रा से घणा करती थी। मैं रघुवशियो से मानव-वश की परपराओ स प्रत्येक वस्तु स घणा करती थी। जहा तक सभव हुआ मैंने बडा उद्दड उच्छ खल और अमर्यादित व्यवहार किया केवल इसलिए कि इन सब के माध्यम मे मैं सम्राट को पीडा पहुचा सकू। पर क्रमश मैंने पहचाना कि मैं तुम्ह या बहन कौसल्या को पीडा पहुचाकर सम्राट को पीडा नहा

पहुंचा रही हूं—उससे तो मैं सम्राट् को सुख दे रही हूं। तुम लोगों से उनका संबंध भावात्मक नहीं, अभावात्मक था। तुम लोग तो स्वयं मेरे समान पीड़ित थे अपमानित थे। और फिर तुम्हारे और बहन कौसल्या के गुण मेरे सामने प्रकट हुए। मुझे तुम लोगों से सहानुभूति हुई, जो क्रमशः प्रेम में बदल गयी। क्या मैं झूठ कह रही हूं राम ?'

'नहीं, मां!' राम ने स्वीकार किया, "तुमने मुझे भरत का-सा प्यार दिया है।"

मैंने क्रमशः मानव-वन्नी परंपराओं का विरोध भी छोड़ दिया। मैंने पहचाना कि अपनी प्रतिहिंसा में मैंने न्याय-अन्याय का विचार छोड़ दिया है। मैं स्वयं राक्षसी बन रही हूं। मैं किसी अन्य को नहीं स्वयं अपनी आत्मा को पीड़ा दे रही हूं। शनैः शनैः मैंने स्वयं को सहज किया। अपना विरोध छोड़ने के प्रयत्न में पिता द्वारा लिया गया वचन भुला दिया शंबर-युद्ध के पश्चात मिले अपने वरदानों का उपयोग नहीं किया, और अयोध्या की प्रजा के समान चाहा कि राम ही युवराज हो। तुम ही इस योग्य थे पुत्र! तुम ही इस योग्य हो। किंतु मुझे अपनी सद्भावना का पुरस्कार क्या मिला ?"

राम मौन रहे। वे भरी आंखों से कैकयी को देखते रहे।

'इस राज प्रासाद में मुझ पर कभी विश्वास नहीं किया गया। मुझे सदा चुड़ैल समझा गया। मेरे भाई को आतंक माना गया। मेरे मायके की परंपराओं को हीन और घृणित कहा गया। मैं सदा यहां अपरिचित होकर रही एक बाह्य वस्तु जिसका यहां के हवा-पानी से कोई मेल नहीं था। मैं बहन कौसल्या या सुमित्रा या अन्य किसी को उसके लिए दोष नहीं देती। उनसे मेरा संबंध ही ऐसा था वे मुझ पर विश्वास नहीं कर सकती थीं। मुझे और किसी से शिकायत नहीं। शिकायत है अपने उस पति से जो बलपूर्वक मुझसे विवाह कर मुझे यहां लाया। जिसने अयोग्य होते हुए भी मुझसे सद्भावना चाही और प्राप्त की, किंतु स्वयं मेरे प्रति घोर दुर्बलता का अनुभव करते हुए भी मुझ पर कभी विश्वास नहीं किया। मैं उसके लिए आवश्यक किंतु अन्य की वस्तु रही। उसने मुझे अपने सिंहासन पर तो स्थान दिया किंतु हृदय में नहीं। मैं

उस सारे समय के लिए क्या कहूं राम! जब जब सुना कि मेरे पति ने कोई कर्म किया है कोई निर्णय किया है, किंतु भयभीत होकर मुझसे छिपाया है। झूठ बोला है। उस झूठ को छिपाने के लिए फिर फिर झूठ बोला है। अपने ऐसे व्यवहार से उसने अपना आत्म विश्वास खोया है स्वयं अपने-आपको और मुझे बार-बार अपमानित किया है। राम! तुम पुत्र हो मेरे। तुम्हें कैसे बताऊं कि हमारी रातें प्यार-मनुहार में कटने के स्थान पर झगड़े और लानत-मलामत में बीत जाती थीं। बार-बार संकल्प करने के बाद भी झगड़े होते रहे। कलह क्लेश शांत ही नहीं हुए। पति-पत्नी के इन झगड़ों के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए उस एक शांत और स्नेहिल वातावरण देने के लिए मैं भरत को बार-बार उसके ननिहाल भेजती रही

कैकेयी का स्वर रुंध गया। उसकी आंखों में जल और अग्नि एक साथ प्रकट हुई और अंत में मैंने क्या पाया राम! कल रात ढले कुब्जा तुम्हारे युवराज्याभिषेक का समाचार लायी। मैंने बहुमूल्य मोतियों की माला कुब्जा को पुरस्कार में दे डाली। किंतु उस मूर्खा, कुटिला दासी ने वह मेरे मुंह पर दे मारी। किस आधार पर किया उसने यह दुस्साहस?

कैकेयी क्षण भर रुकी, और पुनः बह निकली तुम्हारे पिता के मेरे प्रति अविश्वास के आधार पर। उसने मुझे बताया कि यह गोपनीय निर्णय था। सम्राट को आशंका थी कि कुछ लोग अभिषेक में विघ्न डालेंगे राम को नष्ट करने के लिए रातो रात उस पर आक्रमण करेंगे। किससे था भय? मुझसे! मेरे पुत्र से!! मेरे भाई से!!! इसीलिए मुझे बताया नहीं। भरत को ननिहाल भेज दिया। भरत की अधीनस्थ टुकड़ियों को उत्तरी सीमांत की ओर स्थानांतरित कर दिया। पुष्कल का अपहरण करवा उसे बंदी कर लिया। केकय के राजदूत की निजी सेना का निःशस्त्रीकरण हुआ कैकेयी का स्वर और ऊंचा हो गया और आंखें आक्रोश से जल उठीं थूडी है मेरी सम्भावना पर! मेरे चरित्र के उदात्त स्वरूप पर! यहां कोई मुझे देवी के रूप में नहीं देखना चाहता। सब मुझे चुडैल समझते हैं मेरे क्रूर रूप को ही सत्य मानते हैं। तो वही हो राम! वही हो

कैकेयी जैसे अपने से ही अवश होकर फफक फफककर रो पड़ी।

राम ने आगे बढ़कर कैकेयी के कंधे पर हाथ रखा "मत रोओ, मां! मुझे तुम्हारी एक एक बात का विश्वास है। मैं तुम्हारे दोनों रूपों को जानता हूं। कोई और तुम्हें जितना भी गलत समझे, मैं गलत नहीं समझूंगा। किसलिए बुलाया था—मुझे निःसंकोच आदेश दो।"

सम्राट ने एक बार आंखें खोलकर राम को देखा। कितनी आशंकाएं थीं उन आंखों में जैसे राम को चेतावनी दे रही हों "सावधान, राम! इस मायाविनी के जाल में मत फंस जाना।" पर आंखें खुली नहीं रह सकीं, तुरंत मुंद गयीं।

"मंथरा साधारण संकुचित अनुदार, मूर्ख तथा नीच चरित्र की दासी है।" कैकेयी पुनः बोली "उसकी बात किसी विवेकशील व्यक्ति को नहीं माननी चाहिए। किंतु फिर भी मैं उसकी बात मानूंगी। उसकी सलाह पर चलूंगी। उसे अपनी हिताकांक्षिणी मानूंगी। जब सम्राट के मन में है तो मैं क्यों न मंथरा की यह बात स्वीकार कर लूं कि राम को भरत से भय है, और शासन प्राप्त कर वह अपने भय के कारण को समाप्त करना चाहेगा। मैं क्यों न यह मान लूं कि अपनी आरंभिक प्रतिहिंसा में मैंने जो बार-बार बहन कौसल्या का अपमान किया है पुत्र के अधिकार प्राप्त कर लेने पर वे अवश्य ही प्रतिशोध लेना चाहेंगी। नहीं तो उनका उद्‌गार 'आज मैं कैकेयी के भय से मुक्त हुई' न होता। यदि वे सचमुच मुझे सुनाना न चाहती तो उनकी दासियां यह वाक्य मंथरा तक न पहुंचातीं। सम्राट के अविश्वास ने मेरे चरित्र के दुष्ट तत्त्वों को उकसा दिया है मेरी प्रतिहिंसा और घृणा को जगा दिया है। मैं सम्राट को इसका दंड दूंगी—ऐसी आग लगाऊंगी कि आग बुझ भी जाए तो उसकी लहर समाप्त न हो। सम्राट को जलाऊंगी—चाहे उस अग्नि में स्वयं जल जाना पड़े। चाहे तुम अपने शरीर और मन पर टीसते हुए फफोले वहन करो। पर मेरी प्रतिहिंसा शांत नहीं होगी। मैं उसे शांत होने नहीं दूंगी।

कैकेयी मौन हो गयी।

राम को लगा, वह अपनी आत्मा से लड़ते-लड़ते टूट-टूट गयी है।

पर उसका सघष जारी है। वह सम्राट के विरुद्ध ही नही, अपने विरुद्ध भी लड रही है

पर यह सब क्या है ?

क्या चाहती है ककेयी ?

कसी आग लगाना चाहती है ?

बात पूरी तरह स्पष्ट नही थी किंतु ककेयी के वचना के पीछे निहित प्रक्रिया का कुछ-कुछ आभास राम को मिल रहा था। पति-पत्नी के इन विग्रहपूण क्षणो म राम का क्यो बुलाया गया था ? पिता राम से आखें क्या चुरा रह थे ? ककयी राम को ही क्यो उपालभ दे रही थी ? क्या उन वरदाना का सबध राम से है ?

मुझ क्या आदेश है ? ' राम ने पूछा।

पिता के वरदान पूरे करो।' ककेयी का स्वर फिर कठोर हो गया था।

मेरी क्षमता म हुआ तो अवश्य पूरा करूगा।'

ककेयी का स्वर फिर स कोमल और करुण हो उठा मैं जानती थी कि तुम विरोध नही करोग। इसे मेरी कुटिलता मत समझना पुत्र ! किंतु मुझे कहने दो मैंन किसी को पहचाना हो या न पहचाना हो तुम्हे पहचानन म मैंने तनिक भी भूल नही की है।

राम के अधरो पर मुसकान ही उभरी।

'राम ! मैंने दो वर मागे हैं। क्षण भर ककेयी अपने भीतर की पीडा से जूझती रही और फिर कठोरता का कवच ओढकर बोली पहला तुम्हारे युवराज्याभिषेक के लिए प्रस्तुत की गयी सामग्री स ही भरत का युवराज्याभिषेक हो और दूसरा तपस्वी वेश म तुम आज ही चौदह वर्षों के लिए वनवास के लिए प्रस्थान करो।"

राम को अपने भीतर एक झटका सा लगा। क्या यह दुख था ? नही ! शायद यह पूरी तरह दुख नही था—था भी नहीं भी। यह आकस्मिकता का धक्का था। पर यह आकस्मिकता कितनी अनुकूल थी

राम को समझत देर नही लगी कि पिता वरदानो का तिरस्कार भी नही कर सकते और उ ह स्वीकार भी नही कर सकते। यह उनका सत्य प्रेम

था, पुत्र प्रेम था या मात्र कैकेयी का भय ? सत्य प्रेम तथा पुत्र प्रेम म द्वन्द्व था या मात्र अपनी सुरक्षा का अंतिम हताश प्रयत्न ? वे दुविधा मे अस्त व्यस्त, असंतुलित, विमूढ़-सी अवस्था म पडे हुए कष्ट भोग रह थे, और कैकयी अपने स्थान पर पर्वत-सरीखी दृढ़ खडी थी।

सम्राट न अपनी आत्मा क सपूर्ण बल को संचित कर, अपनी आखें खोली। कुछ बोलने के प्रयत्न म वे थोडी देर बुदबुदाते रहे, और फिर कातर वाणी म बोल "मुझे मृत्यु के मुख म मत धकेल कैकेयी ! राम चला गया तो मैं जीवित नही बचूगा। मैं हित करन की उत्कट इच्छा म, असतुलित होकर अनहित कर बैठा। तू भी अपना सतुलन खो बठी है। भरत का इष्ट करते-करते तू उसका अनिष्ट करगी "

सम्राट की वाणी म न तो आत्मबल था, न सत्य का तेज। वे कैकेयी स याचना कर रह थे उसे अपराधिनी ठहरान का साहस उनम नही था। वे कैकयी स आखें नही मिला रह थ, कैकेयी क कृत्य को 'अत्याचार' नही कह पा रह थे। उनकी अपनी अपराध भावना कैकेयी के क्रूर सत्य से पराजित हो चुकी थी। कैकयी द्वारा लगाए गए आक्षेपो को व मौन मान्यता दे रहे थे उन्होंने अपने प्रमाद म कैकेयी क वय, उसके महत्त्वाकांक्षी ऊर्जस्वल जिजीविषापूर्ण जीवन के साथ अन्याय किया था अपन कर्म का कलुष उनक तेज को पूर्णत मलिन कर गया था

राम के सामने स्थिति पूर्णत साफ थी। सोचने विचारने का न अधिक अवसर था, न आवश्यकता।

प्रत्यक्ष जगत विलीन हो गया था। उनके आस-पास कुछ भी नही रह गया था—शून्य केवल शून्य और सामने बहुत दूर एक प्रकाश था कदाचित कोई अग्नि जल रही थी। उस अग्नि म प्रकाश था आच थी, जलन थी, पीडा थी उसके अनेक मुख थे। व मुख निरंतर बदल रहे थे—एक मुख विश्वामित्र का था एक अगस्त्य का था, अत्रि का था, वाल्मीकि का था, भरद्वाज का था शरभग का था सुतीक्ष्ण का था और सारे मुखो स निरंतर एक ही ध्वनि प्रस्फुटित हो रही थी—'आओ ! आओ ! राम, आओ !'

राम उन चेहरों की आखों म जसे बंध गये उनकी

गये उस वाणी से सम्मोहित हो गए। राम का हृदय प्रत्येक आह्वान का उत्तर दे रहा था— मैं आ रहा हू आ रहा हू ।'

राम प्रत्यक्ष जगत म लौटे। उनके भीतर अनेक प्रश्न उठ खडे हुए थे। यह वरदान है या शाप ? अब तक राम की चिंता थी कि अभिषेक को टालकर वन कसे जाए ? कैकेयी ने उनके लिए अवसर उपस्थित कर दिया था।

पर यह सभव कसे हुआ ? कैकेयी राक्षसी है या देवी ?—क्या समझें राम ? क्या सचमुच कैकेयी की वर्षों से सचित पीडा आज घृणा और प्रतिहिंसा बनकर फूट पडी है ? वह अपनी प्रतिहिंसा के हाथो अवश पिशाची हो गयी है ? या यह केवल नाटक है—केवल एक आड। और सच यह है कि *कैकेयी का बबर ककय रक्त अपने अवांछित अनाकांक्षित* पति, अपनी सपत्नी अपने सौतेल पुत्र—सब के प्रति शत्रुता का निर्वाह कर रहा है ? क्या ककेयी मात्र भरत को राज्य दिलवाने के लिए रघुकुल की परपराओ का खडित कर उसकी मर्यादाओ को नष्ट कर अपन पति को असहनीय यातना अकल्पनीय पीडा दे रही है ? क्या सम्राट की आशकाए सत्य हुइ ?

क्या यह ककेयी की योजना है कि राम वन चले जाए तथा उनकी अनुपस्थिति म असुरक्षित-असहाय दशरथ निराशा और हताशा म प्राण त्याग दें ? क्या ककेयी तयार है कि स्वार्थ अथवा प्रतिहिंसा के हाथो अपने सौभाग्य को अग्निसात हो जाने दे ? या वह मात्र विवेकहीन विक्षिप्त कम कर रही है—भविष्य की बात सोचने के लिए उसके पास बुद्धि ही शेष नहा है ?

राम निणय नही कर पाए—ककेयी का कौन-सा रूप वास्तविक है! पर इस समय तो ककेयी वही चाह रही है जो राम के मन का अभीष्ट है। उनका मन अनात ही उसके प्रति आभार से आप्लावित हो उठा। उनकी दुश्चिता मिट गयी। वे तयार थे कि मुक्त मन से पिता स आग्रह करें कि पिता अपने वचन का पालन करें। राम चौदह वर्षों तक तपस्वी वेश म वनवास करेंगे

पर चौदह वर्षों का वनवास क्यो ? वष दो वर्षों का क्यों नही ? क्या

कयी समझती है कि चौदह वर्षों का समय इतना लंबा है कि इस बीच सम्राट् का देहावसान हो जाएगा और भरत अयोध्या म अच्छी तरह अपने पर जमा लेगा तथा अयोध्या के लोग राम को भूल जाएंगे हां, इतना समय पर्याप्त था

कैकेयी की मुद्रा कुछ और कोमल हुई, पुत्र ! तुम्हारे प्रेम के कारण सम्राट कभी अपने मुख से तुम्हें वन जाने के लिए नहीं कहेंगे। दूसरी ओर अपने सत्य के मुखौटे के कारण वे वरदानों का तिरस्कार भी नहीं करेंगे। अब निर्णय तुम्हारे ऊपर है।'

राम क्या कहते ! महत्त्वपूर्ण यह नहीं था कि वे पिता के वचन की पूर्ति के लिए वन जा रहे हैं या कैकेयी की इच्छापूर्ति के लिए। बात केवल इतनी थी कि उनके पास यही एक अवसर था यदि वे चूक गए तो फिर यह अवसर कभी नहीं आयेगा। पिता म यदि रंचमात्र भी आत्मबल जाग उठा और उन्होंने कह दिया कि वे कैकेयी को वरदान नहीं देंगे राम वन नहीं जाए— तो फिर राम की चिंता पुनर्जीवित होकर पिशाची-सी उनके मार्ग मे आ खडी होगी।

राम निष्कंप स्वर मे बोले मां ! *मैं आज ही वन की ओर प्रस्थान करूंगा।'*

कैकेयी के चेहरे पर हर्ष और आंखों म पीड़ा उभरी "दंडक वन !

राम पुन चौंके। विश्वामित्र भी यही चाहते थे। वहीं से राम अपना अभियान आरंभ कर सकते हैं। कैकयी अपने स्वार्थ के लिए उन्हें वन भेज रही है या ऋषि कार्य के लिए ? दंडकारण्य भयंकर राक्षसों सेनाओं हिंस्र पशुओं तथा अनेक अत्याचारियों से भरा पड़ा है। वहीं ऋषि आश्रमों को सर्वाधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। क्या कैकेयी इसलिए उन्हें वहां भेज रही है कि वे जाकर ऋषियों की रक्षा करें, या इसलिए भेज रही है कि राम राक्षसों तथा हिंस्र पशुओं द्वारा मारे जाएं, वे कभी लौटकर न आएं और अयोध्या म भरत का राज्य चिरस्थायी हो ?

दंडक क्षेत्र म ही शंबर से युद्ध करते हुए दशरथ की रक्षा कैकेयी ने की थी। वह राम को क्यों भेज रही है—शंबर के वंशजों के हाथों राम की हत्या करवाने अथवा राम के हाथों शंबर के वंशजों का नाश करवाने ?

किंतु इन प्रश्नों का उत्तर कैकेयी ही दे सकती थी, और कैकेयी से ये बातें पूछी नहीं जा सकती थीं। राम को उत्तर पाए बिना ही जाना होगा।

अंततः राम बोले, "माता! वल्कलों का प्रबंध कर दें। मैं बंधु-बांधवों से विदा लेकर आता हूं।"

राम चले गए।

कैकेयी के मुख पर विजयिनी मुसकान उभरी, किंतु उसकी आंखों में गहरी व्यथा के चिह्न थे।

"सर्वनाश!"

दशरथ मन्न शून्य हो गए।

३

कैकेयी के महल से निकलते हुए राम के मन मे एक सहज उल्लास था।

उन्हें रथ पर चढ़ते हुए सुमंत्र ने देखा। राम तनिक भी दुखी नहीं लग रहे थे। सुमंत्र अवाक रह गए।

"इतनी-सी बात से आप इतने चिंतित थे, सुमंत्र काका।"

"तुम इसे इतनी-सी बात कहते हो राम!" सुमंत्र आगे कुछ कह न सके। चुपचाप घोड़ों को हांक दिया।

और राम को लगा, वे भी उल्लसित नहीं रह गए हैं। उल्लास के साथ ही मन में कुछ आशंकाएं घर करती जा रही हैं, कुछ चिंताएं जन्म ले रही हैं और अनेक प्रश्न वर्षा के पश्चात् धरती फोड़कर उग आये कुकुरमुत्तों के समान सिर उठाए खड़े हैं।

पिता ने उनके अभिषेक का निश्चय किया था तो साथ-साथ उनके मन में आशंकाओं ने भी जन्म लिया था—कहीं राम के अभिषेक का अवसर हाथ से न निकल जाए। आज वही स्थिति राम के मन की थी—कैकेयी ने उन्हें वन का अवसर दिया है, किंतु कहीं यह हाथ से निकल न जाए। सब को उनके वन-गमन की सूचना मिलेगी। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रतिक्रिया होगी—सब अपने अपने ढंग से काम करेंगे। क्या सीता उन्हें वन जाने देंगी? शायद उन्हें न रोकें, किंतु साथ जाने का हठ अवश्य करेंगी। लक्ष्मण राम के निर्वासन की बात सुनकर क्या करने को

नहीं हो जाएग। और फिर राम क बिना तो अयोध्या म वे भी नहीं रहग। मा सिर पटक पटककर प्राण देने को तैयार हो जाएगी। पिता कदाचित पलग से ही नहीं हिलेंग। माता सुमित्रा तक करेंगी और बिना सहमत हुए या सहमत किए उ ह नहीं छोडेंगी। सुयन चित्ररथ त्रिजट अ य मित्र बधु-बाधव

उन सबका स्नेह राम क लिए भय का रूप धारण करता जा रहा था। राम क्षणभर के लिए भी ढील पडे तो व बलात् अयोध्या के सिंहासन से बाध दिए जाएग। फिर वन जाने का अवसर शायद कभी न आए। इस धक्के म ही राम अयोध्या से निकल जाए तो निकल जाए कोई नहीं मानेगा कि पिता की सत्य प्रतिज्ञता की रक्षा क लिए कैकेयी क आदेश पर उनका वन जाना उचित है। राम अपनी बात किसी का समझा नहीं पाएगे, किसी का मना नहीं पाएग।

तो ?

बहुत होगा तो सीता साथ जाना चाहगी। यदि वे बहुत रूढ हुइ तो ल जाने म राम को आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए। आखिर इतने दिनो से अनेक ताने उपालभ बालिया-ठोलिया—वे किस दिन के लिए सुन रही हैं। यदि साथ न गयीं तो वन का अवसर उन्ह फिर कब मिलगा ? यदि जाना ही चाह तो चलें किंतु राम अपनी ओर स प्रोत्साहित नहीं करेंग।

लक्ष्मण भी साथ जाना चाहग या शायद वन-गमन के समर्थक होते हुए भी इस प्रकार निर्वासित होकर जाना उन्हें अच्छा न लगे। शायद वे कैकेयी का विरोध करना चाह आवश्यकता होने पर सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करना चाह। न उनम व्यक्तिगत शौर्य की कमी है न सनिक-असनिक सगठनो की सहायता की आवश्यकता होने पर उन्ह साम्राज्य की सेना का भी समर्थन मिल जाएगा किंतु लक्ष्मण को समझाना होगा इस प्रकार के किसी भी कृत्य म वन जाने का अवसर छिन जाएगा।

माता सुमित्रा तक करना चाहगी—राज्य के अधिकार के विषय म क्षत्रिय के वन य के विषय म वरदानो की वास्तविकता के विषय म कैकेयी के अधिकार के विषय म वन गमन के औचित्य के विषय म उन्ह कैसे समझाया जाएगा कि इस समय राज्य प्राप्ति के लिए सघर्ष से बडा धर्म

अयोध्या-त्याग है।

और माता कौसल्या ! उन्हें तो किसी भी प्रकार नहीं समझाया जा सकता। वात्सल्य भी कभी यह मानेगा कि संतान त्याग धर्म है—प्रतीक्षा क्या कभी सहमत होगी कि लक्ष्य पास आ जाए तो आखें मूंद दूसरी ओर मुड़ जाना चाहिए ? उनकी पीडा राम देख नहीं पाएंगे

राम किसी को इतना समय नहीं देंगे कि कोई अपने ढंग से सोच कर कर्म करे और उन्हें रोक ले। अयोध्या की स्तब्धावस्था में राम निकल गए तो निकल गए, विलंब हुआ तो नगर द्वार बंद हो जाएंगे

कौसल्या के महल के सम्मुख राम ने सुमंत्र को रोक दिया। रथ से उतरकर बोले, 'आप लौट जाएं आगे मैं स्वयं चला जाऊंगा।'

'मैं प्रतीक्षा करूंगा राम !'

'नहीं काका !' राम मुसकराए 'मेरी चिंता न करें। सम्राट को आपकी आवश्यकता मुझसे कहीं अधिक होगी।'

राम ने कक्ष में प्रवेश किया।

माता कौसल्या के सम्मुख वेदी में अग्नि प्रज्वलित थी। उनके आसपास अनेक आवश्यक वस्तुएं बिखरी पड़ी थीं—दही अक्षत घी मोदक, हविष्य, धान का लावा सफेद पुष्पों की माला खीर खिचड़ी समिधा तथा जल से भरे हुए कलश। उन्होंने श्वेत रेशमी साड़ी पहनी हुई थी। व्रत के अनुष्ठान में दत्तचित्त इष्टदेव का तर्पण कर रही थीं।

राम के मन में कसक उठी—कितने उत्साह से मां उनके अभिषेक की तैयारियां कर रही थी। राम उन्हें कैसे सूचना देंगे ? कह दें—मां ! तुम्हारा यह संपूर्ण उल्लास अकारण है। तुम्हारे पुत्र का न केवल अभिषेक ही नहीं होगा, अब वह चौदह वर्षों तक तुम्हारे निकट भी नहीं रह पायेगा। क्या अवस्था होगी मां के मन की ? वे यह धक्का झेल पाएंगी ? राम का मन उदास हो गया।

तत्काल उन्होंने स्वयं को संभाला। यदि इतनी-सी बात से विचलित

हो गए तो वे कभी भी अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर पाएंगे। कोमल मन अथवा कोमल हाथ कर्तव्य-पूर्ति में कभी सहायक नहीं होते। उन्हें दृढ़ रहना होगा। तनिक-सी दुर्बलता से अवसर हाथ से निकल जाएगा। अभी तो सीता को भी सूचना देनी है। लक्ष्मण भी जानेंगे। सारे बंधु-बांधव मित्र गण नगर निवासी सुनेंगे राम को समझाएंगे रोकेंगे बाधा देंगे साथ जाने का हठ करेंगे, पर राम को उन सब के निपीड़ा उदास चेहरों तथा अश्रुओं के सागर में से तैरकर पार जाना होगा। मोह तथा कर्तव्य का निर्वाह साथ-साथ नहीं हो सकता। मोह को तोड़ना होगा—कठोर हुए बिना कभी कोई कर्तव्य पर पूरा नहीं उतरा।

कौसल्या अपने इष्टदेव से सम्बोधित थी। उन्होंने राम का आना लक्ष्य नहीं किया। सहायता के लिए पास बैठी सुमित्रा ने चेताया बहन! राम आए हैं।

प्रकट ललक के साथ कौसल्या राम की ओर उन्मुख हुई। उनकी आकृति पर उल्लास की असाधारण दीप्ति थी, आंखों में कामनापूर्ति की तृप्ति थी। किंतु राम के मुख पर उल्लास का कोई चिह्न नहीं था। वे अत्यन्त गंभीर स्थिर तथा आत्मनियंत्रित लग रहे थे।

क्या बात है राम?'

राम स्थिर दृष्टि से शून्य में देखते रहे मां! पिता प्रदत्त दो पूर्वतन वरदानों के आधार पर माता कैकेयी ने भरत को अयोध्या का राज्य और मुझे चौदह वर्षों के लिए दंडकारण्य का वास दिया है।

कौसल्या ने अचकचा पलकें झपक झपककर राम को देखा। नहीं यह परिहास नहीं हो सकता। राम ऐसा परिहास नहीं कर सकता। वह सत्य कह रहा है

कौसल्या स्तंभित खड़ी रह गयी। उनकी सांस जहां की तहां थम गयी। प्राण शक्ति जैसे किसी ने खींच ली। वर्ण सफेद हो गया और माथे पर स्वेद कण उभर आये। अपनी जीभ से होंठों को गीला करने में भी उन्हें एक युग लग गया।

राम!

मैं जा रहा हूं मां! विदा दो।

राम ने झुककर कौसल्या के चरण छुए।

'तुम वन जाने का निश्चय त्याग नहीं सकते पुत्र?' कौसल्या कातर हो उठी।

'असम्भव!' राम का स्वर दृढ़ था।

कौसल्या ने चौंचक दृष्टि से राम को देखा। उनके चेहरे की दृढ़ता में, कौसल्या के मन की आशा का आधार जैसे अर्राकर गिर पड़ा, और साथ ही उनका शरीर भी झटके से भूमि पर चला आया।

सुमित्रा और राम ने लपककर कौसल्या को सँभाला और पलंग पर लिटा दिया।

कौसल्या ने धीरे से आँखें खोलकर राम को देखा और फिर अपनी दृष्टि सुमित्रा पर टिका दी, "इसे रोक सुमित्रा! कैकेयी तो बहाना है। यह स्वयं ही वन जाने को तुला बैठा है।"

कौसल्या की शक्ति जैसे समाप्त हो गयी, वे निढाल हो चुप हो गयीं।

सुमित्रा चुप न रह पायीं। बोलीं, "इस प्रकार के आदेशों को स्वीकार करना क्या धर्म है? राम! तुम अपना अधिकार ही नहीं छोड़ रहे, कैकेयी के अत्याचार का समर्थन भी कर रहे हो। अपने बल को पहचानो पुत्र! तुम्हारे एक संकेत पर कोसल की प्रजा कामुक सम्राट को मार्ग से हटा तुम्हारा अभिषेक कर देगी। और प्रजा को भी रहने दो। अकेला लक्ष्मण इन दुष्टों को दंड देने में पूरी तरह समर्थ है।'

राम मुसकराए, 'माँ! धर्म क्या है, कहना बड़ा कठिन है। वह कब ग्रहण में है और कब त्याग में—इसकी परख आवश्यक है। पूर्ण सत्य हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष नहीं होता। उस अनाउ सत्य, उन अनदेखी परिस्थितियों के प्रति हमारा क्या दायित्व है—यह भी हम नहीं जानते। भाई-बान्धवों की हत्याएँ कर, रक्त के सरोवर में तैर, एक पिशाच के समान राजसिंहासन तक पहुँचना, मेरे जीवन का लक्ष्य नहीं है। इस समय वन जाना ही मेरा कर्तव्य है। माँ! मैं न सम्राट के बल से भयभीत हूँ, न भरत के। अपने और लक्ष्मण के बल से भी अनभिज्ञ नहीं हूँ। किंतु अभी वन प्रस्थान का समय नहीं आया। माँ! अभी मुझे जाने दो।

'ठहरो राम!' सुमित्रा का स्वर कुछ रहस्यमय था, "इतनी उतावली न

गए थे। उन्होंने कहा था कि पिता से मिलकर वे शीघ्र लौट आएंगे। अब तक आए नहीं राम। सुमंत्र काफी चिंतित लग रहे थे। जाने चिंता किस बात की थी। संभव है सुमंत्र की अपनी कोई निजी चिंता हो। संभव है, वस्तुत अधिक काम म व परेशान हो उठे हों। संभव है राम के विषय म ही चिंतित हों।

राम के विषय म चिंता ? रघुकुल के शक्तिशाली सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र के विषय म चिंता ? प्रजा उनसे प्रेम करती है, मंत्री उनके शील पर मुग्ध हैं राज-परिषद् न एकमत से उनके अभिषेक का निर्णय किया है। उस राम के विषय म किसी को चिंता हो सकती है ? और राम के व्यक्तिगत शौर्य स सीता भली प्रकार परिचित हैं

सीता मन-ही मन पुलकित हो उठीं। राम के विषय म क्या चिंता ?

पर वे अभी तक लौटे क्यों नहीं ? वे कहीं और तो नहीं चले गए ?

संभव है किसी काम से या वैसे ही मिलने के लिए माता कौसल्या के पास गये हों। कौसल्या जैसी पति प्रताड़िता स्त्री को राम जैसा पुत्र ही जिला ले गया। एक पक्ष यदि पूर्णत स्नेह शून्य था तो दूसरे पक्ष न उसकी भरपूर क्षतिपूर्ति की। पुत्र और माता का यह प्रेम, सीता के मन को सदा ही तरल कर देता था।

राम आए। उनकी मुद्रा गंभीर थी। सीता चकित हुई—क्या इतने गंभीर हैं ? कदाचित् राज्य काय संबंधी कोई चिंता हो। सहसा सीता के मन में आनंद की धारा फूट निकली। उन्होंने बंद होठों से मुस्कराते हुए नयनों की कोरों से राम को देखा—कहीं परिहास के लिए अभिनय तो नहीं कर रहे ? स्वभाव से अत्यंत गंभीर होते हुए भी, कभी कभी हल्के क्षणों म राम अपने ढंग ही कौतुक कर अभिनय स सीता को परेशान कर देते हैं, और जब सीता बहुत चिंतित हो उठती हैं तो खिलखिलाकर हंस पड़ते हैं।

आज फिर वैसी ही मुद्रा बनाए हैं।

"यह किस नाटक की भूमिका है आर्यपुत्र! नटी का क्या रूप होगा ?'

पहली बार राम की गंभीरता उदासी म परिवर्तित हुई। प्राय चिंता

'देवि! यह वंश केवल पत्नी के महल में घिरने की परंपरा वाला ही नहीं, एकाधिक विवाह कर ज्येष्ठ पत्नी का तिरस्कार करने वाला भी है। मैंने उस परंपरा का भी पालन नहीं किया है।' राम मुसकराकर मुड़े, 'लक्ष्मण! तुम अपने आवेश में आज वाले भूल रहे हो। मैंने ऋषि विश्वामित्र को एक वचन दिया था। तुम चाहते हो कि आज जब मुझे अपना वचन पूरा करने का अवसर मिल रहा है, मैं अन्य सामान्य राजकुमारों के समान सिंहासन के लिए झगड़ा करूँ, अपने बंधु-बांधवों परिजनों की हत्या करूँ। लक्ष्मण! यह वनवास नहीं, मेरे जीवन का अभ्युदय है, संकीर्ण राजनीति से ऊपर व्यापक मानवीय कर्तव्य निभाने का अद्वितीय अवसर है।'

लक्ष्मण का क्षोभ विलीन हो गया था। संकुचित-सा होकर बोले, 'मैं भूल गया था भैया! हमें वन जाना चाहिए।'

राम का ध्यान लक्ष्मण की बात से हटकर उनकी भंगिमा पर आकर टिक गया। वे 'आपको वन जाना चाहिए' न कहकर 'हमें वन जाना चाहिए' कह रहे थे।

'हो गए न तुम भी तैयार।' सीता कौतुकपूर्वक बोलीं, 'यह भी छूत की बीमारी है।'

'ठहरो भाभी!' लक्ष्मण पुनर्विचार करते हुए बोले, 'भैया! यह भी तो हो सकता है कि आप अयोध्या का शासन अपने हाथ में लें—कम-से-कम दुष्टा कैकेयी के हाथ में तो उसे न ही छोड़ें। फिर अपनी सेना सहित दंडक के राक्षसों और उनके संरक्षक रावण से जा टकराएँ।'

'एक मार्ग यह भी है।' राम ने स्वीकार किया, 'किंतु यदि यह मार्ग व्यावहारिक होता तो कदाचित् दंडकवन को इतनी लंबी प्रतीक्षा न करनी पड़ती। कोई भी सम्राट् यह कार्य कर चुका होता। लक्ष्मण! सैनिक अभियानों से जन-सामान्य की असुविधाएँ दूर नहीं होतीं। सेना विजय दिला सकती है, क्रांति नहीं ला सकती। प्रत्येक समस्या का समाधान सेना नहीं है। जन-क्रांति जन-जागृति से होती है, और उसकी आकांक्षा जनता के भीतर से उत्पन्न होती है। ऊपर से थोपी हुई सैनिक क्रांतियाँ सदा निष्फल होती हैं। ऋषि विश्वामित्र ने बताया था, सेनाओं के जाने की

सुविधाएं भी उन वनों में नहीं हैं। हम उन वनों से परिचित भी नहीं हैं। सेना को ले जाने के लिए जो प्रबंध वहां होना चाहिए, वह भी कदाचित् हमारे लिए व्यावहारिक नहीं है। इतनी बड़ी सेना, उसके वाहनों और शस्त्रास्त्रों को ले जाना, भोजन पानी का प्रबंध करना, उनके ठहराए जाने की व्यवस्था करना—इनमें तो वन के वन उजड़ जाएंगे, और जिनकी रक्षा के लिए सेना जाएगी, वे ही लोग सेना के विरुद्ध हो जाएंगे। वैसे भी अपने राज्य में इतनी दूर इतने बड़े सैनिक अभियान में विजय प्राप्त करना असंभव-सा है। गुरु विश्वामित्र ने कहा था, मुझे अकेले जाना होगा। राजसी वेश में जाऊंगा, तो जन साधारण दूर से प्रणाम कर लौट जाएंगे। जन-साधारण अपनी असुविधाओं को वाणी नहीं देता—विशेषकर शासक वर्ग के सामने। वह डरता है कि उसके असुविधा वर्णन को शासन अपनी निन्दा, विरोध अथवा त्रुटि-दर्शन न मान ले। यह कार्य केवल निःस्वार्थ, साहसी बुद्धिजीवी कर सकते हैं, वे द्रष्टा, ऋषि मुनि, जो राज्याश्रय को तुच्छ मान, वनों में अपने आश्रम बनाकर वास कर रहे हैं। वे लोग राज्याश्रय को महत्त्व नहीं देते, अतः वे राज्य से अपनी रक्षा की याचना करने भी नहीं आएंगे। गुरु ने स्पष्ट कहा था, मुझे तापस वेश में उन ऋषियों के निकट जाकर, उनसे समान धरातल पर मिलना होगा। और उनकी याचना के बिना ही उनकी रक्षा करनी होगी। यदि किसी समय मेरा व्यक्तिगत बल तथा दिव्यास्त्रों का ज्ञान उनकी रक्षा में असमर्थ हुआ, तो सेना की आवश्यकता पड़ेगी। किंतु लक्ष्मण! वह सेना अयोध्या की वेतन भोगी सेना नहीं होगी।'

"कौन-सी सेना होगी?" लक्ष्मण हैरान थे।

"कोई बाहरी सेना आकर किसी के लिए कोई युद्ध जीत दे, तो निश्चित रूप से वह कार्य नहीं हो सकता, जो जन-सामान्य में जागृति लाकर, उन्हीं को प्रबुद्ध बनाकर, उसी पीड़ित जाग्रत जनता के बीच में से तैयार की गयी सेना से हो सकता है। लक्ष्मण! मैं नहीं जानता कि मुझे सेना की आवश्यकता कहां पड़ेगी, कब पड़ेगी, कौन-सी सेना मेरी सहायता के लिए प्रस्तुत होगी। किंतु जिस कार्य के लिए राम दंडक जा रहा है, वह यही है कि प्रत्येक जन साधारण अपनी रक्षा के लिए प्रबुद्ध हो, सचेत हो

स्वाश्रित हो। उसमें प्राण फूंकना मेरा काम है—उन्हें मार्ग दिखाना उनका नेतृत्व करना। जब जनता जाग उठती है तो बड़े से-बड़ा अत्याचारी भी उसके सम्मुख टिक नहीं सकता। इसलिए मैं तापस वेश में एकाकी ही वन जाऊंगा।

यह सब ठीक है भैया ! लक्ष्मण के मन में अब भी अड़चन थी फिर भी अयोध्या का राज्य कैकेयी के हाथों में छोड़ इस प्रकार निष्कासित होकर जाना तो शोभा नहीं देता। सत्ता पर अधिकार कर उसे किसी उचित व्यक्ति को सौंपकर भी तो वन जाया जा सकता है।'

राज्य जन-कल्याण के लिए होना चाहिए, राम बोले प्रजा के दमन और हत्या के लिए नहीं। अतः राज सिंहासन से अनावश्यक चिपकना मेरे लिए आसक्ति से अधिक कुछ नहीं है, और आसक्ति सदा अन्याय की जननी होती है। और लक्ष्मण ! ' राम मुसकराए एक बार स्पष्ट हो गया कि बाध्य होकर नहीं मैं स्वेच्छा से वन जा रहा हूं तो मेरे प्रियजन मुझे कभी वन जाने नहीं देंगे। माता कौसल्या सिर पटककर प्राण दे देंगी किंतु मुझे जाने नहीं देंगी। भ्रम बना रहने दो

लक्ष्मण के विरोध और प्रश्न मिट गए, विघ्न और जिज्ञासाएं पिघल गयीं। मन में एक उत्साह और उल्लास छा गया। आंखों में चमक आ गयी कितना आनन्द रहेगा भैया ! सिद्धाश्रम-यात्रा की स्मृति आज तक मेरे मन में कभी-कभी टीस उठती है।

लक्ष्मण अपने भीतर स्मृतियों में खो गए।

राम लक्ष्मण के मन की बात समझते रहे और मुसकराते रहे। फिर बाधा देते हुए बोले किंतु लक्ष्मण ! वनवास का आदेश केवल मुझे हुआ है।"

ठीक है। लक्ष्मण ने कौतुक भरी आंखों से भाई को देखा युवराज्याभिषेक करवाते हुए केवल मुझे वालो भाषा बोलते तो कोई बात भी थी। वनवास के लिए केवल मैं कुछ शोभा नहीं देता। गुरु विश्वामित्र ने भी केवल आपको ही मांगा था सम्राट ने भी केवल आपको ही भेजा था—किंतु यह अकिंचन फिर भी साथ गया था।"

राम हंस पड़े 'तो तुम साथ आओगे ही ?'

"कोई विकल्प नहीं।" लक्ष्मण भी हस पडे, "मेरी मा कहती हैं, भैया राम का साथ कभी मत छोडो।"

राम गभीर हो गए, "तुम्हे साथ ले जाने म मुझे कोई आपत्ति नही है, सौमित्र! साथ रहोगे तो सुविधा भी रहेगी और सगति भी। किंतु "

"क्या, भया?"

"जिन परिस्थितियो म मैं अयोध्या छोड रहा हू, वे असाधारण हैं। यहा द्वेष और प्रतिहिंसा का विष फला हुआ है। यदि तुम भी मेरे साथ चले जाओगे तो पीछे माता कौसल्या और माता सुमित्रा के भरण-पोषण और उनकी सुरक्षा का दायित्व किस पर होगा? यदि पीछे अयोध्या मे रहकर, तुम उनकी देखभाल करो, तो मैं निश्चित होकर दडक जा सकूगा।"

नही, भया!" लक्ष्मण ने निषेध की मुद्रा म सिर हिला दिया, "इसकी आवश्यकता नहीं पडेगी। एक तो सम्राट् अभी विद्यमान हैं, फिर मा पीछे भरत हैं, तो शत्रुघ्न भी हैं। माताओं का अनिष्ट नहीं हो पाएगा। अपने भरण-पोषण के लिए उनके पास पर्याप्त धन है। आप चाह तो जाने से पहले कुछ और व्यवस्था भी की जा सकती है। रक्षा के लिए उनके पास विश्वसनीय सनिक और सेवक हैं। और फिर चाहे माता कौसल्या न हो पर माता सुमित्रा दोनों की रक्षा म पूणत समथ हैं। मेरी मा कहती हैं, वह क्षत्राणी ही क्या, जो अपनी रक्षा न कर सके।"

राम अपनी गभीरता छोड नहीं पाए, "दूसरा चितनीय विषय यह है, लक्ष्मण! कि चौदह वर्षो पश्चात जब तुम वन से लौटोगे तब तक तुम्हारा विवाह-योग्य वय व्यतीत हो चुका होगा "

लक्ष्मण ठहाका मारकर हस पडे, "जिस वय मे पूज्य पिता जी ने कक्यी से विवाह किया था, क्या मेरा वय उससे भी अधिक हो जाएगा?"

राम भी स्वय को रोक नहीं पाए। खिलखिलाकर हस पडे।

"सो फिर सेना की चिंता क्यों करते हो देवर!" सीता न हसी म सम्मिलित होते हुए कहा "तुम और तुम्हारी पत्निया की सेना क्या नहीं कर पाएगी?

लक्ष्मण विदा लेने चले गए और सीता विभिन्न व्यवस्थाओं म लग गयीं।

राम पुन अनमने हो गए। एक प्रश्न तज आरी के समान उनके मस्तिष्क के ततुओं को आहत कर रहा था।

आखिर राज्य प्राप्ति का प्रयत्न कोइ क्यो करता है? शासनाधिकार किसलिए होता है? राजनीतिक शक्ति की आवश्यकता ही क्यों पडती है? राम को राज्य का मोह नही है। उन्ह धन धान्य सपत्ति विलास ऐश्वय—किसी वस्तु का मोह नही है। वे तो स्वय ही अवसर की प्रतीक्षा म थे कि किसी प्रकार इस जजाल से निकल कर वनो म जा सकें जहा मानवता का वास्तविक सघष चल रहा है। यदि उ ह राजसी जीवन क किसी एक पक्ष से भी मोह होता, तो वनो म जाकर वे ऋषियो की रक्षा का सकल्प क्या करते?

पर कैकेयी ने भरत के लिए राज्य क्या चाहा है?

ककेयी ने शायद यह सोचा है कि राज्य राम को मिल गया तो भरत के पास धन नही रहेगा। उस भोग विलास की सामग्री उपल ध नही हो पाएगी सेवक सेविकाए नही रहेंगी सुख के साधन नही रहेंगे। पर राम को यह सब नहीं चाहिए इसलिए भरत के राजा बनने पर राम का कुछ नही छिनेगा। राम तो स्वेच्छा से धन की माया को छोड रहे हैं

किंतु शासनाधिकार धन प्राप्ति क लिए होता है। धनाजन की एक व्यवस्था बना दी जाती है और शासन उस व्यवस्था की रक्षा करता है। तो शासनाधिकार मूलत किसी विशिष्ट आर्थिक ढाचे की सुरक्षा के लिए होता है। एक विशेष प्रकार की आर्थिक व्यवस्था एक विशिष्ट शासन तन्त्र की अपेक्षा करती है। राजनीतिक व्यवस्था के बदलत ही आर्थिक व्यवस्था और उस आर्थिक व्यवस्था पर आधृत सामाजिक व्यवस्था भी बदल जाती है

ककेयी ने राज्याधिकार कदाचित भरत के भोग के लिए चाहा है। यदि यही यथाथ है तो भरत भोगी राजा होकर रहेगा। कत यपरायण शासक वह कदापि नही बनेगा। और यदि वह अपना दायित्व नही समझेगा तो वह जनता का रक्षक न होकर उसका शोषक होगा।

राम वन क्यों जा रहे है? विश्वामित्र तथा अ य ऋषि पूजी तथा हिंसा पर आश्रित राज शक्तियों का नाश क्यों चाहते है?—राम के मन

म बहुत सारे प्रश्न उभर रहे थे—बहुत सारे विचार—ऊहापोह

विश्वामित्र क्या चाहते थे ? यही तो कि व अपने आश्रम को ज्ञान क आदान प्रदान का केन्द्र बना सकें। सिद्धाश्रम के अडोस पडोस म बसने वाले लोगों—आर्य नाग शबर किरात, भील—यहा तक की सभव हो तो राक्षसों को भी सुसस्कृत कर सकें। सबको मानव-ममता के आधार पर सम्मानपूवक आजीविका अर्जित करने और अपने व्यक्तित्व क पूर्ण विकास का अवसर दे सकें। पर वे सफल क्यों नहीं हो सके ? कौन रोक रहा था उन्हे। यदि बहुलाश्व के स्थान पर वहा कोई न्यायी शासन प्रतिनिधि होता, तो विश्वामित्र क्या इतने अशक्त होते ? क्या गहन की वैसी अमानुषिक हत्या होती ? क्या गगन क परिवार की स्त्रियों के साथ ऐसा अत्याचार हो पाता ? यह सब-कुछ केवल इसलिए हुआ क्योंकि विश्वामित्र के पास राजनीतिक शक्ति नहीं थी।

अगस्त्य, सुतीक्ष्ण शरभग, भरद्वाज वाल्मीकि—सभी ऋषि अपनी सपूर्ण तपस्या बुद्धि ज्ञान शक्ति एव आस्था के साथ मानवता के विकास म दत्तचित्त हैं—किंतु जन-जातियों के जागरण से, उनके सक्षम और स्वावलबी हो जाने से राक्षसों द्वारा उनके शोषण की सभावना समाप्त हो जाएगी। ऐसी स्थिति म राक्षसों की राजनीतिक शक्ति, ऋषि-कार्यों का समर्थन कसे कर सकती है ? राक्षस अपने सपूर्ण शासन-तत्र को इन ऋषियों के विरोध म लगाए हुए हैं।

सहस्रार्जुन आर्य सम्राट था—महान भार्गव ऋषियों का शिष्य। किंतु अपनी शक्ति के मद म वह राक्षस हो गया था—रावण का मित्र। स्वय भार्गव परशुराम महिष्मती म उपस्थित होते हुए भी तब तक कुछ नहीं कर सके, जब तक राजनीतिक शक्ति हैहयराज के हाथ म थी। अतत उन्हें उस अन्यायी राजनीतिक शक्ति को ही मिटाना पडा। एक कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ही क्या उन्होंने अनेक क्षत्रिय राजपरिवारों का समूल नाश किया। जब राज्य अन्याय तथा अत्याचार का प्रतीक बन जाए, तो उसका मिटना अवश्यभावी हो जाता है।

कोई सदेह नहीं कि बडे यत्न म विकसित की गयी प्रगतिशील न्यायपूर्ण, मानवीय सस्कृति तथा सामाजिक व्यवस्था को भी प्रतिकूल

प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी राजशक्ति अत्यत थोड स ही समय म समाप्त कर सकती है। अत मानव समता क सिद्धात पर आश्रित न्यायपूण समाज क विकास के लिए पहली शत है राजनीतिक शक्ति का हस्तगत करना

और राम क्या कर रह है ? हाथ म आयी कोमल की राजशक्ति, भरत के हाथ म देकर उसके माग से हटकर चौदह वर्षों के लिए बहुत दूर चले जा रहे हैं। व रावण की राक्षसी सत्ता क नाश क लिए वन जा रहे हैं—और यदि उनकी अनुपस्थिति म ककेयी तथा भरत ने मिलकर कोसल म ही राक्षसी राज्य स्थापित कर लिया तो ? कौन कह सकता है कि प्रति हिंसा म उदभ्रात ककेयी के हाथ म आकर नामन याय की परपरा से हट नही जाएगा ? राम भरत को जानते हैं। भरत पर उन्ह पूरा विश्वास है— वह अन्यायी नही होगा। किंतु जानते तो वे कैकेयी को भी थे। आज से पूव कौन कह सकता था कि ककेयी इतनी क्रूर हो सकेगी। किसी अन्य घटना के कारण भरत म भी अपनी मा के समान प्रतिहिंसा और घृणा का विस्फोट नही होगा—कौन कह सकता है ? बिना उचित परीक्षण के भरत के विषय म कुछ कहना सभव नही है। यदि ककयी ने भरत के विलास और भोग के लिए राज्य चाहा है और भरत ने उसका सचमुच वसा ही उपयोग किया, तो अयोध्या और लका मे कोई भेद रह पाएगा क्या ? लका तो फिर आर्यावत्त से बाहर दूर समुद्र के पास बसी हुई है—अयोध्या आर्यावत्त के मध्य मे है। अयोध्या मे कैकेयी अथवा भरत द्वारा स्थापित राक्षसी राज्य अधिक घातक हो सकता है।

सहसा राम चौंक उठे—कैकेयी की बात और है। उसम तीव्र स्नेह और घृणा का विरल सम्मिश्रण है। उदात्त भावनाओ के जागने पर वह अत्यन्त उदार और क्रूर क्षणो म हिंस्र तथा अधम हो सकती है। पर क्या उन्हे भरत पर भी विश्वास नहीं है ? क्या उनकी व्यक्ति की परख इतनी कच्ची है ?

कुछ भी हो भरत की पहचान आवश्यक थी। भरत पर उन्होने कभी सदेह नही किया था। उनके चरित्र उनकी निस्वार्थता उनकी कत्तव्य परायणता उनकी मानवीयता—किसी भी सदभ म राम को तनिक भी सदेह नही था। पर फिर भी ककयी के व्यवहार ने राम को चेता दिया था।

अब उन्हें प्रत्येक पग पर सावधान रहना होगा। किसी को भी उसके बाहरी व्यापार व्यवहार तथा वार्तालाप के आधार पर स्वीकार नहीं करना होगा। सबका परीक्षण और सावधानी यदि भरत परीक्षण में खरे उतरे तो उनके राज्य में कोसल की जनता का अहित नहीं होगा। ऐसी अवस्था में राम निःशंक दंडक जा सकेंगे पर उस परीक्षण से पहले उन्हें अयोध्या में अपनी अनुपस्थिति के समय तक के लिए अनेक प्रबंध करने होंगे माता कौसल्या तथा सुमित्रा की रक्षा का प्रबंध। अपने सेवकों मित्रों समपर्वी शुभकांक्षियों की रक्षा तथा भरण-पोषण का प्रबंध। और राजनीति को सुमार्ग पर चलाए रखने का प्रबंध सूचनाएं प्राप्त करने का प्रबंध यह सारी व्यवस्था किए बिना राम अयोध्या नहीं छोड़ सकते

थोड़ी देर में लक्ष्मण लौट आएंगे। तब वन प्रस्थान की तयारी आरंभ हो जाएगी। राम को उससे पूर्व ही व्यवस्था कर लेनी चाहिए व्यवस्था किस प्रकार की व्यवस्था? पिता वृद्ध हैं—अशक्त। गुरु वसिष्ठ वृद्ध भी हैं अशक्त भी और मर्यादावादी राजभक्त भी। लक्ष्मण उनके साथ ही वन जा रहे हैं। भरत के विषय में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। शत्रुघ्न भरत के प्रभाव में है। तो फिर कौन? माता सुमित्रा? वे अकेली सक्षम नहीं होंगी। उनकी सहायता के लिए कौन? राम की आंखों के सम्मुख अनेक संज्ञाएं अनेक आकृतियां उभरने लगीं गुरुपुत्र सुयज्ञ माता कौसल्या के शुभाकांक्षी यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के आचार्य सूत और सचिव चित्ररथ कठशाखा और कलाप शाखा के दंडधारी ब्रह्मचारी माता कौसल्या के प्रिय मेखलाधारी ब्रह्मचारी गर्ग गोत्रीय ब्राह्मण त्रिजट लक्ष्मण के विभिन्न युवा-संगठन—समस्त श्रमचारी किसी एक का नहीं, इन सबको सामूहिक रूप से दायित्व सौंपकर कदाचित राम निश्चित होकर जा सकें

'सीते।"

'जी।'

'किसी को माता सुमित्रा के महल में भेजो और लक्ष्मण को कहलवाओ कि लौटते हुए गुरु वसिष्ठ के आश्रम में रखे हुए महात्मा जनक द्वारा हम

दिए गए दिव्य धनुष, दिव्य कवच, तूणीर, सुवर्ण भूषित खड्ग, ऋषि विश्वामित्र द्वारा प्रदत्त दिव्यास्त्र तथा अन्य शस्त्रास्त्र अपने साथ लेते आए। साथ ही सुयज्ञ, चित्ररथ तथा त्रिजट को संदेश भिजवा दें कि मैं उनसे शीघ्रातिशीघ्र मिलना चाहता हूं।" राम रुके, "और तुम भी माताओं से मिल आओ। मैं पुनः उनके सामने पड़ना नहीं चाहता।"

"जी अच्छा!"

लक्ष्मण लौटकर आए तो न केवल वे स्वयं साधारण अस्त्र-शस्त्रों तथा दिव्यास्त्रों से लदे हुए थे, वरन् उनके साथ आने वाले सुयज्ञ और समिधा, चित्ररथ तथा अन्य मित्र भी बहुत सारे अस्त्र-शस्त्र संभाले हुए थे। लगता था, लक्ष्मण अपने साथ एक संपूर्ण शस्त्रागार ही उठा लाए हैं।

राम ने सहसा अपने मित्रों का स्वागत किया और उन्हें आसन दिए।

शस्त्रास्त्र एक ओर रखकर वे बैठ गए। आगंतुकों में से किसी के भी चेहरे पर न हास था, न उल्लास। सबके मन भारी थे।

"आपने सुना भैया!" लक्ष्मण बोले।

"क्या?"

"अभी-अभी कुछ राजाज्ञाओं की घोषणा की गयी है।" लक्ष्मण ने बताया, "उनके अनुसार सम्राट के अंगरक्षक दल का अधिकार-क्षेत्र सम्राट के राजप्रासाद तक ही सीमित रहेगा, नगर का दायित्व पुनः साम्राज्य की तीसरी स्थायी सेना का होगा। उन्हें वापस बुलाने के लिए चर दौड़ा दिए गए हैं। तब तक नगर-रक्षा का दायित्व कैकयी के अंगरक्षक करेंगे। निजी सेनाओं पर से नियंत्रण हटा लिए गए हैं तथा न्याय-समिति-सचिव पुष्कल को मुक्त कर पुनः अपने पद पर आसीन किया गया है।"

"अर्थात् सम्राट के सभी आदेश उलट दिए गये हैं।" राम मुसकराए, "इसमें आश्चर्य की क्या बात है सौमित्र! यह तो देर-सबेर सुनना ही था।"

"किंतु हम क्या सुन रहे हैं राम!" सुयज्ञ बोले।

"तुमने ठीक सुना है मित्र!" राम मुसकराए।

'पर, राम!"

'सुनो बधु!' राम ने सुयज्ञ की बात काट दी, 'मेरी अशिष्टता क्षमा करना, किंतु समय ही ऐसा है। यह निश्चित हो चुका है कि हम लोग वन जा रहे हैं। इस सदर्भ मे मुझे समझाना, बाधा देना या साथ चलने का आग्रह व्यर्थ है। तुम लोग अयोध्या की ओर से निश्चित होकर जाने में मेरी सहायता करो। मैं जा रहा हू, किंतु माता कौसल्या, माता सुमित्रा, अयोध्या की प्रजा तथा अयोध्या का राज्य पीछे छोड़े जा रहा हू। इन सब का दायित्व तुम लोगों पर है। ऐसा न हो कि लौटू तो पाऊं कि अयोध्या नगरी भी दडकारण्य वन चुकी है।'

"स्पष्ट कहो राम!" सुयज्ञ बोले, 'हमसे क्या अपेक्षित है?"

'तुम्हें देखना है मित्र! कोई अपना सम्राट दोनों माताओं तथा अयोध्या की प्रजा के साथ दुर्व्यवहार न करे। सबका भरण-पोषण न्यायोचित ढग से हो। अयोध्या में मानवीय समता के आधार पर न्यायपूर्ण राज्य हो। यहा स्वर्ण, हिंसा तथा मदिरा का प्रभुत्व न हो। वर्ग भेद, साम्प्रदायिकता तथा अन्य मानवीय विभाजनों को प्रोत्साहन न मिले जिसमें मानव द्वारा मानव का शोषण करे। प्रजा तथा राज्य की उचित रक्षा हो। विलास का ताडव यहा न हो। ऐसा करने के लिए, मित्र सुयज्ञ! अपने सहायक सहयोगी बुद्धिजीवी वर्ग के प्रभाव का सदुपयोग करोगे। मित्र चित्ररथ! तुम मत्रियों, अमात्यों, राज-परिषद् के सदस्यों तथा राजपुरुषों पर दृष्टि रखोगे। आवश्यक होने पर उन्हें सतर्क करोगे और उन्हें उचित मार्ग का इगित करोगे। और मित्रो!" वे अन्य आगतुकों की ओर मुड़े, 'सामान्य प्रजा का सुख दुःख देखने, उनसे सपर्क बनाए रखने, उसकी रक्षा करने और उसकी बात मुझ तक पहुचाने का कार्य मैं आप युवा सगठनों के अध्यक्षों, यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के आचार्य, कठशाखा तथा कलाप शाखा के दडधारी ब्रह्मचारियों तथा माता कौसल्या के प्रिय मेखलाधारी ब्रह्मचारियों पर छोड़ रहा हू। आप लोग जन-सामान्य से मिलते जुलते हैं सपर्क बनाए रखते हैं—आपके लिए यह कार्य कठिन नहीं होगा।'

'राघव! हम सहर्ष इस दायित्व को स्वीकार करते हैं।' चित्ररथ बोले, 'यह आपका ही नहीं, हमारा अपना काम है। आप चिंता न करें।

आपकी सावधानी सवथा उचित है। पर यदि कोई अनिष्टकारी स्थिति आ जाए और हमारे समाचार न मिले तो उसकी सूचना आपको कैसे दी जाए ?'

राम मुसकराए आप सावधान रहेंगे तो ऐसी स्थिति नहीं आएगी। आ गयी तो लक्ष्मण को अयोध्या लौटना होगा। वैसे सरयू पार करते ही अयोध्या से बाहर त्रिजट का आश्रम है। उसे भी मैंने बुलाया है। वह किसी भी क्षण आ सकता है। आप उन तक सूचना पहुचा दें। वह उस सूचना को अगले पड़ाव तक पहुचा देगा। इस प्रकार एक एक पड़ाव चलती हुई वह सूचना मुझ तक पहुच जाएगी।

सुयज्ञ और चित्ररथ ने सिर हिला दिए। उनका मन कुछ हल्का हो गया था। राम उनसे दूर अवश्य जा रहे थे किन्तु उनसे असपक्त हो जाने की आशका नहीं थी।

राम पुन बोले सुयज्ञ! व्यवस्था का थोड़ा काय शेष है। अपने कमचारियों के व्यय के लिए मैंने पर्याप्त धन सौंप दिया है। फिर भी चाहता हू कि मेरी अनुपस्थिति म मेरे कमचारियों मित्रों, सबधियों अयोध्या के आश्रमो तथा जन-कल्याण म लगी सस्थाओं को आर्थिक सकट न झेलना पड़े इसलिए शेष धन तुम मेरी ओर से ग्रहण करो, उसकी रक्षा करो और अवसर देखकर उचित व्यय करो। और मित्र! जानकी अपनी सखी आर्या समिधा को उपहारस्वरूप कुछ हार सुवण सूत्र, करधनी, अगद तथा केयूर देना चाहती हैं। आर्या समिधा उन्हें स्वीकार करें। अपना हाथी शत्रुजय मैं तुम्हें अपनी स्मृति-स्वरूप दिए जाता हू।"

राम ने थमकर एक दृष्टि सार मित्रों पर डाली, और कुछ भारी स्वर म बोले अच्छा मित्रो! विदा। यहा की व्यवस्था कर, अपने-अपने घर चले जाना। केवल चित्ररथ तथा सुयज्ञ हमारे शस्त्रास्त्रों के साथ त्रिजट के आश्रम पर पहुच जाएं। त्रिजट अब तक आ नहीं सका। उससे अब उसके आश्रम मे ही मिलूगा।"

उन्होंने मुड़कर सीता और लक्ष्मण की ओर देखा 'चलो! पिता से विदा लें।'

सम्राट से विदा लेने के लिए जाते हुए राम, सीता तथा लक्ष्मण राज-मार्गों से पदल निकले। उनके मित्रों, सुहृदों तथा कमचारियों का झुंड उनके पीछे था।

समाचार फैल चुका था। मार्गों पर अपार भीड़ एकत्रित थी। प्रत्येक भवन के द्वार तथा गवाक्ष खुले थे। गरजते समुद्र के समान विराट जन-समुदाय एकत्रित था। प्रत्येक गली से निकल निकलकर भीड़ उस जन-समुदाय में मिलती जा रही थी। कुछ लोग मौन थे कुछ धीरे धीरे बातें कर रहे थे, कुछ चीख चिल्ला रहे थे। सब ओर एक प्रकार का क्षोभ, एक आवेग एक क्रोध और विरोध विद्यमान था। किंतु कोई नहीं जानता था कि उसे क्या करना चाहिए वह क्या करना चाहता है

राम ने सतर्क दृष्टि से लक्ष्मण को देखा, "सौमित्र! इस जन-समुदाय को देख रहे हो! यह आवेश में है, स्वयं को अक्षम पाकर असंतुष्ट और पीड़ित भी है। यह जन-समुदाय अति प्रज्वलनशील और विस्फोटक है। देखना, कहीं अपने व्यवहार अथवा वाणी से इसे उकसा मत देना नहीं तो विप्लव हो जाएगा। सारी व्यवस्था समाप्त हो जाएगी। माता कैकेयी अपनी प्रतिहिंसा में भूल गयी कि शासक को बनाने और पदच्युत करने में, प्रजा की इच्छा बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्रजा के इच्छा के विरुद्ध वे भरत को तो क्या मुझे भी अयोध्या का सम्राट नहीं बना सकतीं। यह घरेलू झगड़ा भी राजनीतिक आयाम मिलते ही विप्लव में बदल जाएगा।"

"इच्छा तो होती है कि धनुष लेकर इस समुदाय के आगे-आगे चलूं और कैकयी के महल पर पहुंच कर बस एक बार ललकार दूं।" लक्ष्मण बोले "किंतु वन जाने के लिए शांत रहना ही उचित है।"

वे लोग बढ़ते रहे। उनके साथ-साथ भीड़ भी बढ़ती गयी। कैकेयी के महल तक पहुंचते-पहुंचते असंख्य लोग राम के पीछे चल रहे थे।

महल में प्रवेश करने से पूर्व राम भीड़ की ओर मुड़े, और ऊंची आवाज़ में बोले "मित्रो! मैं आपके प्रेम और स्नेह का अभिनंदन करता हूं। आप अशांत न हों। माता कैकेयी ने मुझे वन भेजना चाहा है, और पिता ऐसी आज्ञा देना नहीं चाहते। समाधान यही है कि वन जाने का

दायित्व मैं अपने ऊपर ले लू। मैं वही कर रहा हू। सीता और लक्ष्मण मेरे साथ जा रहे है। अयोध्या का दायित्व मैं आप पर छोड रहा हू। राजा कोई भी हो किंतु अयोध्या आपकी है। राज्य शासक का नहीं जनता का होता है। आप सजग रह सचेत रह। अपनी अयोध्या की रक्षा करें और देखें कि अयोध्या का कोई भी शासक अनीति के माग पर चल दभ अथवा विलास में पड, जन विरोधी शासन न कर।

राम ने हाथ जोड मस्तक झुका प्रजा का अभिवादन किया, और महल म प्रवेश द्वार की ओर मुड गए। अपनी पीठ के पीछे प्रजा के सहस्रा कठो स व अपनी जय जयकार सुन रहे थे।

सुमत्र क माध्यम स सूचना भिजवा जिस समय राम सीता और लक्ष्मण क साथ भीतर प्रविष्ट हुए कैकेयी के कक्ष म प्रात काल जैसा एकात नहीं था। वहा माता कौसल्या, माता सुमित्रा तथा सम्राट की अन्य रानिया उपस्थित थी। वसिष्ठ भी विराजमान थ। राजपरिषद के मुख्य सदस्य मत्री, अमात्य तथा सेनापति भी वतमान थे। सम्राट पहले के समान पृथ्वी पर नहीं पडे थ उन्ह पलग पर लेटा दिया गया था। ऐसा लगता था जसे राजपरिवार और राजदरबार के सभी मुख्य व्यक्ति सम्राट को घेरकर किसी महत्वपूण घटना की प्रतीक्षा कर रहे थे।

राम सीता तथा लक्ष्मण ने आखें मूदे नि स्पद पडे दशरथ को प्रणाम किया।

राम ने मद स्वर म कहा पिताजी !

दशरथ कुछ कहने का साहस बटोरें उससे पूव ही अनेक नारी-कठो से सस्वर रुदन और चीत्कार फूट पडा।

राम ने देखा—व सब सम्राट की सुदरी युवती पत्निया थी जिनके साथ सम्राट ने कभी आकर्षित होकर अपनी इच्छा से कभी किसी के प्रस्ताव पर अथवा किसी की भट स्वीकार करने के लिए विवाह किए थे। राम ने सम्राट के एस अनेक विवाह अपने शशव स देखे थे—जिनम एक स्त्री के साथ विवाह कर, उस दो तीन दिन अपने महल मे रख राजसी अत पुर म धकेल दिया जाता था। अत पुर म जाकर न वे किसी की

पुत्रिया थी न बहनें न पत्निया—वे अत पुर की स्त्रिया होती थी। उनके भरण-पोषण का भार राजकोष पर होता था। और किसी का उनके प्रति कोई दायित्व नहीं था।

राम ने जैसे-जैसे होश सभाला था उनकी करुणा अपनी इन तथा-कथित माताओं के प्रति बढती चली गयी थी। उन स्त्रियों की स्थिति अत्यत विचित्र थी—न वे बदिनी थी न स्वतत्र। वे सौभाग्यवती विवाहिताए थी, किंतु पति विहीना। वे रानिया थी, किंतु राजपरिवार की सदस्या के रूप म उनम से किसी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। अत पुर मे कोई काम नहीं था अत पुर स निकल भागना उनके वश का नहीं था। लगडी बिल्ली के समान व घर के भीतर ही शिकार करती रहती थीं। परस्पर एक दूसरी की सहायक होने के स्थान पर एक-दूसरे के विरुद्ध षडयत्र रचकर, परिवेश को विषाक्त करती रहती थीं

ताडका वन म स अनेक अपहृता बदिनी युवतियो को मुक्त करा कर, राम इन रानियो क प्रति विशेष रूप म सदय हो गए थ। उन्होंने इनके विषय म कई बार सोचा था—एक पुरुष के लिए इतनी स्त्रियो को पत्नी का मान-सम्मान, प्यार और अधिकार देना सवथा असभव तथा अप्राकृतिक था। जिस प्रकार अन्यायपूवक अपनी आवश्यकता से अधिक धन एकत्रित कर मार धन, उस पर बठकर अपना या दूसरो का केवल अहित किया जा सकता है वैसे ही इतनी पत्निया को एकत्रित कर न केवल सम्राट न मानवीय अन्याय किया था वरन् अपना और उनका अहित भी किया था। यदि कहीं से स्त्रिया अपहृत कर बलात् लायी गयी होती उन्ह बलपूवक अवरोध म रखा गया होता तो राम उन्ह कब स मुक्त करा चुके होते। किंतु कठिनाई यह थी कि वे सम्राट की विवाहिताए थीं। वे मुक्त होना नही चाहती थी पत्नी का अधिकार पाना चाहती थी—जो असभव था। उनका बधन न तो अत पुर की दीवारों का था, न सम्राट के पतित्व का। उन्ह उनके अपने सस्कारो न बदी कर रखा था। शशव से उनके मन मे बठा दिया गया था कि नारी का सबसे बडा सौभाग्य उसका सुहाग है। पति उसका परमेश्वर है, चाहे पति के नाम पर उन्हें अयोग्य स अयोग्य अमानव क साथ बाध दिया जाए। आज यदि सम्राट इन स्त्रियो को मुक्त

भी कर दें उन्हें अपनी पत्नियां मानने से इनकार भी कर दें—तो ये स्त्रियां उसे अपना सौभाग्य नहीं मानेंगी वे प्रसन्न नहीं होंगी। वे परित्यक्ता की पीड़ा झेलेंगी और परित्यक्ता की पीड़ा कभी-कभी विधवा की पीड़ा से भी अधिक घातक होती है। राम इन स्त्रियों के संस्कार नहीं बदल सके, किंतु अगली पीढ़ी को वे इन गलत संस्कारों का विरोध करना अवश्य सिखाएंगे उनके भीतर विद्रोह जगाएंगे।

राम ने सम्राट की पत्नियों को करुणा भरी दृष्टि से देखा और बोले, 'देवियो! मुझे जाना ही होगा। अपना ध्यान रखना और न्याय के प्रति सजग रहना।'

सम्राट् ने हल्के से अपनी आंखें खोलीं और डबडबा आयी उन आंखों से राम को देखा 'पुत्र राम! मुझमें शक्ति थी तो विवेक नहीं था। अब समझ आयी है तो कम शक्ति नहीं है। जिनसे प्रेम करना चाहिए था उन्हें सदा दुत्कारता रहा, और जो दुत्कारने योग्य थे उन्हें गले में लगाता रहा।' सहसा दशरथ ने फिर आंखें बंद कर ली जैसे राम की ओर देखना उनके लिए पीड़ादायक हो 'मंत्री सिद्धार्थ से कहो कि वे मेरा समस्त धन कोष अन्न भंडार अयोध्या के कुशल वास्तुकार तथा मेरी चतुरंगिणी सेना लेकर राम के साथ जाएं। राम को समस्त मनोवांछित भोगों से सम्पन्न कर अयोध्या से भेजा जाए'

'नहीं!' कैकेयी के चीत्कार ने सम्राट की वाणी को मूक कर दिया 'परंपरागत उत्तराधिकार में मिले हुए राज्य को इस प्रकार लुटाने का अधिकार किसी को नहीं है—स्वयं सम्राट को भी नहीं। वे अपना राज्य केवल अपने युवराज को ही दे सकते हैं। मैं स्वयं को इस प्रकार प्रवंचित होने नहीं दूंगी।'

'धिक्कार!' सब कुछ चुपचाप सुनने वाले सुमंत्र सहसा अपना नियंत्रण खो बैठे। उनके मुख का वर्ण क्रोध से विकृत हो उठा। आंखों से जैसे चिनगारियां फूट रही थीं।

'सूत!' कैकेयी का स्वर स्पष्ट तथा दृढ़ था 'जितना चाहो धिक्कारो। किंतु मनचाहा वर मांगने का अधिकार मुझे है। सम्राट या तो मुझे वर दें या न दें। वर देकर अनदिया करने का अधिकार उन्हें मैं

नही दूगी। यदि वे मुझे वर देते हैं तो राम अभी यही वल्कल धारण कर वन जाएगे।'

कैकेयी ने अपने भडारी को सकेत किया, और वह अगले ही क्षण अनेक वल्कल वस्त्र लेकर उपस्थित हो गया।

राम ने किसी की ओर ध्यान नही दिया। वे स्थिर पगो से आगे बढे और उन्होने भडारी के हाथों से वल्कल ले अपने नाप के वस्त्र छाट, धारण कर लिये।

लक्ष्मण ने साथ-साथ वल्कल छाटते हुए कहा, 'मुझे नही मालूम था कि इस महल म वल्कलो का लघु उद्योग चल रहा है। इतने वल्कलो मे तो सारी अयोध्या वन भेजी जा सकती है।'

कैकेयी उन्हे देखती भर रही कुछ बोली नही।

लक्ष्मण के हटते ही सीता आगे बढी। उन्होने पहला ही वस्त्र उठाया था कि अब तक के मौन साक्षी गुरु वसिष्ठ पहली बार बोले 'ठहरो, बेटी! वनवास राम को मिला है। रघुकुल की पुत्रवधू को वल्कल धारण कर वन-वन भटकने की अनुमति मैं नही दूगा।' गुरु, सम्राट से सबोधित हुए, 'सम्राट्! राम वन जाए। उनकी उत्तराधिकारिणी स्वरूप, उनकी अनुपस्थिति म सीता अयोध्या का शासन सभाले।"

सीता ने सभलकर अपना चेहरा ऊपर उठाया और जैसे अटपटाकर बोलीं, गुरुजनो के विरोध के लिए मुझे क्षमा किया जाए। उत्तराधिकार के नियमों का ज्ञान मुझे नहीं है। जहा राम रहेगे, मैं भी वही रहूगी। पत्नीत्व का अधिकार मुझे मिले, यही मेरी प्रार्थना है।"

सीता ने गुरु की ओर मुड, दोनों हाथ जोड उन पर अपना मस्तक टिका दिया।

राम ने अपनी दाहिनी हथेली ऊची कर मौन का सकेत किया और ऊचे स्वर म बोले, 'विवाद और प्रस्तावो का अवकाश नहीं है। यह निश्चित है कि मैं वन जा रहा हू। मेरे साथ सीता और लक्ष्मण भी जा रहे हैं। आप सब हम अनुमति आशीर्वाद और विदा दें।'

राम ने पुन दशरथ को प्रणाम किया, पिताजी! मेरी मा आपकी आश्रिता हैं।"

सबको विदा की मुद्रा म हाथ जोड़ राम द्वार की ओर चल पड़। सीता तथा लक्ष्मण उनके साथ थ। उनके मित्र तथा कमचारी उनके शस्त्रास्त्र लिये उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

कौसल्या अपने स्थान पर निष्प्राण-सी बैठी राम को जाते देखती रही। उनकी आखें क्रमश आसुओ से धुधला गयी थी।

सहसा सुमित्रा तेज-सज चलती हुई आयी और राम के सम्मुख द्वार की चौखट मे खडी हो गयी क्षण भर रुको राम। पुत्र तुम निश्चित होकर दडक जाओ और सकुशल लौटो। एक आश्वासन मुझसे लेते जाओ वत्स! सुमित्रा के रहते बहन कौसल्या का बाल भी बाका न होगा—यह इस क्षत्राणी का वचन है।

राम सीता और लक्ष्मण सुमित्रा के सम्मुख झुक गए।

सुमित्रा के मुख पर तज, उत्साह तथा चुनौती के भाव थे।

४

कैकेयी के महल से निकलकर राम सीता और लक्ष्मण राज मार्गों से होते हुए नगरद्वार की ओर बढ़े। उनके पीछे उनके मित्र बंधु-बांधव कर्मचारी, विभिन्न वर्गों के युवा नागरिक अनेक संप्रदायों के युवा संन्यासी और ब्रह्मचारी चल रहे थे। जो भीड़ मार्गों पर छोड़ के महल के भीतर गये थे—वह अब भी वहीं विद्यमान थी। भवनों के गवाक्ष अब भी खुले थे और कुल-वधुएं उनमें से झुकी पड़ रही थीं। उनके पहुंचने से पहले, लोग स्तब्ध रहते थे, उनके निकट पहुंचने पर, उनकी आंखों में करुणा उभर आती थी, और उनके आगे बढ़ जाने पर उनकी जय ध्वनि होने लगती थी।

राम कहीं मुसकराकर एकत्रित भीड़ को देख लेते, कहीं हाथ उठाकर उनकी शांति की कामना करते—कहीं वृद्ध जनों के दीख पड़ने पर, हाथ जोड़कर, अभिवादन कर देते।

'भैया! मुझे सिद्धाश्रम से विदाई याद आ रहा है।' लक्ष्मण ने मुसकराने के प्रयत्न के बीच भारी गले से कहा।

'हां। कुछ वैसा ही है।' राम बोले, 'किंतु सौमित्र! वहां लोगों के मन में हमारे प्रति करुणा नहीं थी।'

'मुझे भी जनकपुर से अपनी विदाई याद आने लगी तो दोनों भाइयों को बुरा लगेगा।' सीता ने वंकिम दृष्टि से बारी-बारी दोनों को देखा।

राम आश्वस्त हुए—वनवास के कारण सीता हताश नहीं थी।

'पता होता कि भाभी इतनी ईर्ष्यालु हैं, तो भया को पहले जनकपुर जाने के लिए तैयार कर लेता। ये उपालभ तो न सुनने पड़ते। सिद्धाश्रम का काम तो लौटते हुए भी हो सकता था। स्वय भी साथ होती, तो सिद्धाश्रम की स्मृति बुरी न लगती।' लक्ष्मण मुसकराए।

इसी बुद्धि के कारण तो तुम्हें अभी तक पत्नी नहीं मिली, देवर!" सीता ने चिढाया तुम्हारे भया पहले सिद्धाश्रम गये, ताड़का और सुबाहु को मारा, मारीच को भगाया, बहुलाश्व और उसके पुत्र को दड दिया, वनजा का उद्धार किया अहल्या को प्रतिष्ठा दी और तब जनकपुर पधारे। उनके आने से पहले उनका यश पहुचा। सबने उन्हें सम्मान दिया। सीधे चले आये होते, तो कोई पहचानता भी नहीं। अजगव के दर्शन भी न होते, वहीं पड़े रहते अमराई मे मुनियो के साथ।

वह अवसर तो मैं चूक गया भाभी। बच्चा था न। अब बताओ पत्नी प्राप्त करने के लिए क्या करू?

बच्चे तो तुम अब भी हो देवर!' सीता मुसकराइ पर हा वनवास की अवधि म ही तुम युवक हो जाओगे। इससे पूर्व ही वीरता के दो चार काम कर अपनी प्रतिष्ठा बना लेना। कोई-न-कोई वानरी या राक्षसी मिल ही जाएगी। सुना है उनम से कुछ असाधारण सुदरिया होती हैं।'

'मैं अकेला उत्तर की ओर चला जाऊ भाभी! कम-से कम मानवी तो मिलेगी—सुदर न भी हुई तो क्या।'

न देवर! अकेले कहीं मत जाना। उत्तर की ओर तो एकदम नहीं। उस ओर माता ककैयी के सजातीय बसते हैं।

भया! आप सुन रहे हैं। लक्ष्मण ने न्याय की माग की भाभी ने मेरे लिए कोई विकल्प ही नहीं छोड़ा।'

राम ने अपनी चिंता झटक, एक क्षण के लिए मुसकराकर, उन दोनो को देखा मैं नहीं सुन रहा। तुम दोनो मेरी बात सुनो। सामने सरयू के तट पर त्रिजट का आश्रम है। चित्ररथ तथा सुयज्ञ अपने रथों तथा कर्मचारियो के साथ वहा पहुच चुके होंगे। वहीं हमे आगे की योजना बनानी है। तब सौमित्र यह निर्णय ले सकेंगे कि उन्हे किस दिशा म

जाना है।"

'भया सब-कुछ सुन रहे थे।' लक्ष्मण की आखें तिरछी हो गयी उनमे शिकायत भी थी और प्यार भी।

सीता हस पडी।

उनके स्वागत के लिए त्रिजट अपने आश्रम के द्वार पर सुयज्ञ तथा चित्ररथ के साथ खडा था।

"स्वागत, राम!"

राम ने आश्रम मे प्रवेश किया। कधे से उतारकर अपना धनुष आसन के साथ, भूमि पर रखा और बैठ गये। यह सबके लिए बैठ जाने का सकेत था।

'सुनो त्रिजट!" राम ने बात आरभ की हमारे पास अधिक समय नही है। आज सध्या तक हम तमसा तट तक पहुचना है। अत जल्दी चलना होगा। साथ आए इन सब बधुओ के भोजन का प्रबध शीघ्र कर दो ताकि विलब न हो।'

त्रिजट ने व्यवस्था कर रखी थी। सकेत पाते ही उसके शिष्य ब्रह्मचारियो ने भोजन परोसना आरभ कर दिया।

उधर भोजन चलता रहा और इधर सुयज्ञ चित्ररथ तथा त्रिजट आकर राम सीता तथा लक्ष्मण के निकट बैठ गये।

हम समस्त शस्त्रास्त्र, अपने रथों मे रखकर अपने साथ ले आये हैं। सुयज्ञ ने कहा 'मेरा विचार है कि यहा से हम सब चलें। रात को तमसा के तट पर ठहरें। प्रात सब मित्रो और ब्रह्मचारियों का विदा कर हम आपके साथ चलें और आपको शृगवेरपुर म निषादराज गुह तक पहुचा कर ही लौटें अन्यथा शस्त्रास्त्रों के साथ कठिनाई होगी।"

'आगे के लिए क्या प्रबध होगा राम! त्रिजट ने पूछा।

वहा से गुह के व्यक्ति हम भरद्वाज आश्रम तक पहुचा आएगे।' राम ने कुछ सोचते हुए कहा आगे कठिनाई नहीं होगी। मेरा विचार है सुयज्ञ की योजना उत्तम है।

युवा-सगठनों के लिए क्या आदेश है?' चित्ररथ ने भोजन करते हुए

युवको की ओर सकेत किया।

'क्या लक्ष्मण !' राम बोले, "तुम्हारी युवा सेना अयोध्या मे ऊधम तो नही मचाएगी ?'

'यह तो भरत के व्यवहार पर निर्भर है।' लक्ष्मण ने उत्तर दिया "न्याय-सगत शासन को ये सहयोग देगे, और यदि भरत ने कैकेयी की प्रतिहिंसात्मक नीति अपनाई तो य अयोध्या को जलाकर क्षार कर देगे।

तो ठीक है मत्रीप्रवर ! राम ने कहा लौटकर अधिकाश ब्रह्मचारी त्रिजट के आश्रम पर ही रहेंगे। ये लोग अपनी विद्या साधना तथा ज्ञान का अभ्यास करेंगे, पर त्रिजट ! लौकिक शस्त्रास्त्रो का अभ्यास भी इन्हे अवश्य कराना। लक्ष्मण के सारे युवा सगठनो के नागरिक सदस्य अयोध्या म निवास करेंगे। वे प्रतीक्षा करेंगे। यदि सब कुछ सुख शाति स न्यायपूर्वक चलता रहा—यदि राजनीतिक शक्ति का उपयोग जनता के विरुद्ध नही किया गया तो य आवश्यकतानुसार या तो तटस्थ रहग अथवा भरत का समथन करेंगे। किंतु यदि भरत की राजनीति ने स्वय को जन-विरोधी सिद्ध किया अथवा प्रतिहिंसा की नीति अपनाई तो अयोध्या क भीतर उसक विरोध का दायित्व इन्ही सगठनो पर होगा। यदि भरत न सैनिक अभियान किया तो त्रिजट आश्रम के ब्रह्मचारियो को अप्रत्यक्ष छिपा युद्ध करना होगा ताकि अत्याचारी सेना की गति रोकी जा सके। किंतु सम्मुख युद्ध वे लोग नहीं करेंगे। सम्मुख युद्ध की आवश्यकता पडी तो वह शृगवेरपुर की निषाद सेना करेगी। मैं सारी गतिविधि का निरीक्षण चित्रकूट से करूगा और स्थिति पूरी तरह स्पष्ट हो जान पर ही आगे बढ़ूगा।"

एक बात कहने की अनुमति मैं भी चाहूगी। सीता बोली।

बोलो प्रिय !

आशकाओ ने अयोध्या म पर्याप्त अनर्थ कर डाला है—आशकाए चाहे सम्राट की रही हो अथवा माता कैकयी की। कही ऐसा न हो कि भरत बेचारा भी भरत विरोधी आशकाओ के कारण ही पीडित हो। राम समथक सभी व्यक्तियो और सगठनो को भरत की ओर स प्रतिहिंसा की आशका है। ऐसा न हो कि अपनी इन आशकाओ के कारण भरत को

गलत समझकर उसका विरोध आरंभ कर दिया जाए। एक बात और भी है। आपके समर्थक संगठित और सशस्त्र हैं। कहीं अपनी शस्त्र शक्ति के प्रमाद में ये लोग भरत के शासन की उपेक्षा करें, उसमें प्रतिहिंसा न जगा दें।"

"नहीं भाभी!" लक्ष्मण बोले, "हमारे समस्त संगठन सहिष्णु और सहनशील हैं।"

"जैसे तुम हो, देवर!" सीता मुसकराईं।

"उग्रता में भैया जैसे और सहिष्णुता में मुझ जैसे।"

लक्ष्मण की बात भागकर आते हुए एक ब्रह्मचारी ने काट दी। वह काफी तेजी से भागता हुआ आया था और हांफ रहा था।

"आर्य कुलपति!" उसने त्रिजट को संबोधित किया, "अयोध्या की दिशा से एक राजसी रथ बड़ी तेजी से इस ओर बढ़ता हुआ देखा गया है। वह अत्यल्प समय में यहां आ पहुंचेगा।"

लक्ष्मण ने अपना धनुष पकड़ा और उठकर खड़े हो गए।

"ठहरो, धैर्यशील देवर!" सीता ने हाथ से संकेत किया।

"थम जाओ, लक्ष्मण!" राम हंसे, "मुझे अनिष्ट की तनिक भी आशंका नहीं है। अभी अयोध्या का शासन सम्राट के हाथ में है। और फिर एकाकी रथी हमारा क्या कर सकता है। संभव है कोई महत्त्वपूर्ण समाचार हो।"

उसी क्षण दो अन्य ब्रह्मचारी, समाचार देने के लिए उपस्थित हुए "आर्य कुलपति! अयोध्या से आर्य सुमंत्र सम्राट के संदेश के साथ आए हैं।"

"उन्हें सादर लिवा लाओ।" त्रिजट ने कहा।

शेष लोग मौन रहे। क्या है सम्राट का संदेश? ऐसी कौन-सी बात है, जो सम्राट अयोध्या में नहीं कह सके, और उसके लिए पीछे से सुमंत्र को भेजा गया है। क्या सम्राट की ओर से कोई गुप्त संदेश है?

सुमंत्र आए। राम ने उन्हें प्रणाम किया। चारों ओर स्तब्ध मौन देखकर वे समझ गए कि सब उनकी ही प्रतीक्षा में थे। वे उच्च स्वर में

वाले आये ! आपके चले आने के पश्चात राजमहल में वाद विवाद तो अनेक हुए हैं किंतु स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। सम्राट के आदेश से मैं एक श्रेष्ठ रथ लेकर आपकी सेवा में आया हूं। उनकी इच्छा है कि रथ में आप लोगों को घुमा फिराकर वन्य जीवन का परिचय करा दूं। आप लोग यह देख लें कि जानकी किसी भी प्रकार वन्य जीवन की कठिनाइयां नहीं सह पाएगी। अतः आप अयोध्या लौट चलें।

तात सुमंत्र ! राम के अधरों पर मोहक मुसकान थी रथ की हमें बड़ी आवश्यकता है। हमें रात से पूर्व तमसा तट और कल अवश्य ही शृंगवेरपुर तक पहुंचना है। शृंगवेरपुर तक आप हमें पहुंचा दें। वन्य जीवन दिखाकर लौटाने की बात आप न सोचें। लौटना असंभव है।

लौटना असंभव है। सुमंत्र का स्वर हतप्रभ था।

'पूर्णतः !

'जानकी भी नहीं लौटेंगी ?

नहीं ! सीता, राम से भी अधिक दृढ़ थी।

सुमंत्र स्तंभित-से उनको देखते रहे जैसे समझ न पा रहे हों कि क्या कहें। फिर कुछ संभलकर बोले सम्राट की आशंका पूर्ण हुई। वे जानते थे कि तुम नहीं लौटोगे। पर पिता का मन । उनकी मुद्रा बदली जैसे युद्ध में कोई योद्धा पैंतरा बदलता हो राम ! सम्राट ने अपनी पुत्र वधू के लिए कुछ वस्त्राभूषण भिजवाए हैं। ये राजकोष से नहीं सम्राट के निजी कोष से भिजवाए गए हैं। इन पर कैकेयी का कोई अधिकार नहीं है। सम्राट के साथ-साथ राजगुरु ने भी इन्हें ग्रहण करने का अनुरोध किया है।

सीता ने आंखों में संकोच भरे क्षण भर राम को देखा जैसे सोच रही हो कि उत्तर राम देंगे या वे स्वयं दें। किंतु जब राम कुछ नहीं बोले तो वे स्वयं सुमंत्र से संबोधित हुईं तात सुमंत्र ! यह सम्राट का अनुग्रह है। किंतु मैं अपने वस्त्राभूषण अयोध्या में त्याग आयी हूं। अब और आभूषण लेकर क्या करूंगी ? तापसी द्वारा वस्त्राभूषण ग्रहण किए जाने में क्या औचित्य है ?'

सुमंत्र का मुखमंडल मुरझाकर एकदम दीन हो गया जैसे हरी फसल

पर ओने पड गय हा। उनकी आखें डबडबा आयो। वाणी रुध गयी। कापते कठ से बोले, "वैदेही! वृद्ध ससुर की भावनाओ पर निष्ठुर आघात मत करो। पुत्रि! अपनी सतान म एक अदभुत मोह होता है किंतु यह वृद्ध तुम्हे बताना चाहता है कि पुत्र-वधू के प्रति श्वसुर की भावना पिता की भावना से भी सूक्ष्म और कोमल होती है। जो कुछ वह अपनी पत्नी और सतान के लिए नही कर सकता समय होने पर अपनी पुत्र-वधू तथा पौत्र पौत्रियों के लिए करना चाहता है। सम्राट की भावना का अनादर न करो सीते!

सुमत्र की अवस्था देख सीता स्तब्ध रह गयी जैसे वह सुमत्र न हो, स्वय दशरथ हा।

अपने विवाह के पश्चात सीता न सुमत्र को बहुधा राजमहलो म देखा था किंतु यह कभी नही सोचा था कि वे इस परिवार स भावात्मक धरातल पर भी इस सीमा तक जुडे हुए हैं—विशेषकर सम्राट से। तभी तो सम्राट ने उन्ह अपन निजी सारथी से मत्री तक के दायित्व सौंप रखे थ। सीता ने सम्राट के इस रूप को कभी नहीं देखा था। सुमत्र इतन पीडित थे तो स्वय सम्राट कितने पीडित हाग

आर्य!" सीता न मधुर स्वर म कहा आप स्वय को मेरी स्थिति म रखकर सोचें। अपना धन धान्य दान कर यदि श्वसुर की भेंट स्वीकार करूगी तो क्या यह त्याग का नाटक मात्र न होगा?"

तात!" राम बोल मेरी ओर स भी सोचिए। अयोध्या स स्वय खाली हाथ निकल आऊ और सीता क माध्यम स धन सपत्ति साथ ले चलू क्या यह तपस्वी जीवन जीना होगा?'

'मैं तक नही कर सकता।" सुमत्र कातर स्वर म बोले "मेरा तक तो मात्र भावना का है।'

'राम!" सुयज्ञ बोले, विवाद अनावश्यक है। देवी इस भेंट को अगीकार करें। सम्राट ने कुछ सोच समझकर ही, ये वस्त्राभूषण भेजे हैं। आप शस्त्रास्त्र ल जा रहे हैं, सीता को वस्त्राभूषण ले जाने दें। य भी एक प्रकार के शस्त्रास्त्र ही हैं। समय आने पर आप सब की रक्षा करेंगे। धन भी रूपन आप मे एक बल है—उसकी क्षमता ...

ग्रहण कर देवी वदेही ! " मत्री चित्ररथ ने कहा।

'ग्रहण करें भाभी ! ' लक्ष्मण ने भी उसी स्वर म कहा, और फिर स्वर दबाकर धीर स बोल, अपनी देवरानी को आप आभूषण तो पहनाएगी ही रक्षसी हुई तो क्या वानरी हुई तो क्या और मानवा हुइ ता क्या ?

सीता मुसकराकर चुप रह गयी।

सुमन्त्र के सकेत पर ब्रह्मचारियो ने वस्त्राभूपणो का पिटारा सीता क सम्मुख रख दिया। सीता न उसम मे दो एक आभूपण धारण कर लिये यह ग्रहण की स्वीकृति थी।

सुमन्त्र प्रसन्न हा उठे मैं धन्य हुआ दवी जानकी ! '

भोजन समाप्त हात ही चलने की व्यवस्था की गयी। राम सीता, लक्ष्मण तथा कुछ ब्रह्मचारी सुमन्त्र के रथ म आरूढ हुए। सुयन अपने अनेक ब्रह्मचारी शिष्यो क साथ अपने रथ म थे। चित्ररथ कुछ युवाओ क साथ अपने रथ म बठ। शेप लोग निजट आश्रम के छकडो पर सवार हुए। साथ चल पडा।

सुमन के घोडे शक्तिशाली और वेगवान थ। चित्ररथ तथा सुयन के रथो के घोड भी अच्छे थ। किंतु आश्रम क छकडा के घोड उस गति स नही चल सकत थे। अत सब लोगो को धीमी गति से चलना पड रहा था।

रथ और छकडे बढत चले गए। सूय ढलने लगा था। धूप म भी वह प्रखरता नही रही थी। सब लोग सहसा ही चुप हो गए थे—कुछ अतीत की स्मृतियो म खोए थे कुछ को भविष्य की चिंता थी वतमान म तो केवल चलना ही था।

क्या सोच रह हा सौमित्र ? राम ने पूछा।

सोच रहे हैं कुछ जल्दी चल पञ्च वन के लिए। उत्तर सीता ने दिया कम स कम विवाह करके चलत तो सम्राट छोटी पुत्र वधू के लिए भी एक पोटली आभूषण तो भेजते ही। '

सुना लक्ष्मण ! राम मुसकराए 'यदि कटाक्षो की गति यही रही तो चौदह वर्षों म तुम परेशान हा जाओग।

'भाभी अपनी उदासी छिपाने के लिए चुहल कर रही हैं। यह वाकचातुय तो केवल आवरण है। उन्ासी दूर हा जाएगी तो मुझे परेशान करना भी छोड देंगी।' लक्ष्मण न असाधारण सहिष्णुता का परिचय दिया।

चलो। उन्ास तुम हागे, देवर! जिसे अपने निपट बचपन म ही मा से दूर जाना पड रहा है। मैं तो अपने पति के साथ वन विहार के लिए जा रही हू।'

सीता मुसकरायी, पर अपनी गभीरता छिपा नही पायी। पता नही लक्ष्मण ने परिहास किया था या सचमुच वे सीता के व्यवहार का विश्लेषण इसी प्रकार कर रहे थ। पर सीता सचमुच उदास हो गयी थी। किस बात की उदासी थी? राज्य स, राजमहलो मे सुख-ऐश्वय से—उन्हे मोह नही था। राम साथ ही थे। तो क्या केवल माता कौसल्या के लिए? कितनी निभर थी माता उन पर। वसी कातर स्त्री सीता ने और कोई नही देखी। ममता वात्सल्य, प्यार। कौसल्या वास्तविक मा हैं—व स्त्री नही हैं मात्र भावना हैं। उनकी याद जब-जब आएगी सीता उदास हा जाएगी और माता सुमित्रा! सुमित्रा की याद भी सीता को आएगी। व उनको याद करके भी उदास हो जाया करेंगी, पर उनके लिए नही, अपने लिए। माता सुमित्रा क पास जाते ही कोई भी यक्ति आत्म विश्वास से भर जाता है। वे कवच के समान किसी को भी घेर लती है—निभय कर देती है। आते आत भी उन्होने कहा था "एक आश्वासन मुझमे भा लेत जाओ वत्स। सुमित्रा के रहत बहन कौसल्या का बाल भी बाका न होगा—यह इस क्षत्राणी का वचन है।" याद तो सीता को अपनी माता सुनयना की भी आती रही है। पर ममता यक्ति के कत य म तो बाधक नहीं होनी चाहिए। कत य और प्रगति के लिए यक्ति और समाज को कई बार निर्मोही होना पडता है।

सुमन्त्र ने रथ रोक दिया।

व लोग तमसा के तट पर पहुच गए थ।

पीछे आने वाले दोनो रथ भी रुक गए। धीरे धीरे शेष छकडे भी

आ पहुचे।

राम सीता तथा लक्ष्मण रथ से उतर आए।

'तात सुमन्त्र!' राम ने घोडो को थपकी देते हुए कहा इन्हे खोलकर दाना-पानी दे दें और आप भी विश्राम करें।'

सुयन चित्ररथ और त्रिजट भी वाहनो से उतर उनके पास आ गए।

मित्रो!' राम बोले सब के ठहरने की उचित व्यवस्था कर दो। वन म फल काफी सख्या और मात्रा म उपलब्ध है। उन्ही का भोजन होगा। और एक बात सब को कार्यक्रम स्पष्ट समझा दो। कल प्रात हम बहुत जल्दी चल पड़ेंगे। हमारे साथ केवल आर्य सुमन्त्र सुयन तथा चित्ररथ जाएगे। शेष लोग आगे जाने का हठ न करें अन्यथा व्यवस्था भग होगी।

अनेक लोग विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओ मे लग गए किंतु सीता और राम का सारा काय स्वय लक्ष्मण ने किया। उन्होने एक ऊची सी जगह देख कर पत्ते बिछा राम और सीता के लिए दो शयाए तयार कर दी। तमसा से पानी लाकर उन शयाओ के निकट रख दिया।

फलाहार के पश्चात जब राम और सीता अपने लिए बनायी गयी शयाओ पर आ गए, तो अपने धनुष की टेक लगा लक्ष्मण उनसे कुछ हटकर पहरे पर खडे हो गए।

राम ने सब कुछ चुपचाप देखा। अयोध्या से बाहर आज वह उनकी पहली रात थी। वनवास की सारी अवधि क रहन सहन का प्राय यही रूप होगा। बहुत होगा तो लक्ष्मण कोई कुटिया बना देंगे। वे लोग उस कुटिया म इसी प्रकार पत्र शयाओ पर सोएगे। वक्षो से तोडकर लाए गए फल वन द्वारा दिए गए कद मूल नदी का जल और अहेर द्वारा प्राप्त आहार—इन्ही पर चौदह वष कटेंगे। वस लक्ष्मण द्वारा बनायी गयी कुटिया काफी अच्छी और सुखद होती है। अयोध्या के बाहर क वनो म अहेर के लिए जाने पर अनेक बार लक्ष्मण द्वारा बनायी गयी कुटियाओ मे राम रहे हैं। सनिक अभियानो म भी इसी प्रकार की अस्थायी व्यवस्था लक्ष्मण न की है। वे लक्ष्मण की इस कला के प्रशसक रहे हैं।

सिद्धाश्रम की यात्रा म भी, गुरु न कई वार उन्हें पडों के नीचे ठहराया था किंतु भेद केवल इतना है कि इस वार वे अयोध्या के निर्वासित राजकुमार हैं, और निवासन की अवधि वडी लवी है।

लक्ष्मण पहरे पर खड हैं। य ऐसे ही सन्नद्ध रहग। कदाचित् लक्ष्मण को यह वनवास कष्टप्रद न लग। लग भी ता वे ऐसा दिखाएग नही। जीवन के कष्ट लक्ष्मण का दीन नही कर पात—वे उन्ह चुनौती-से लगत हैं, और चुनौतिया लक्ष्मण की जिजीविषा म वद्धि ही कर सकती हैं—उसका क्षय नहीं। किंतु सीता! सीता ने कहा था कि व साधारण कया हैं और सम्राट सीरध्वज ने उन्ह साधारण जीवन के लिए भी प्रशिक्षित किया है। पर क्या इतना लवा वनवास सीता झेल पाएगी? अभी तो वे यात्रा म हैं इसलिए नवीनता के आकषण म कदाचित व य कष्टों का अनुभव न करें। किंतु जब वे एक स्थान पर ठहर जाएगे जीवन नियमित और उबाऊ हो जाएगा—सब सुविधाओ का अभाव अधिक खलेगा। तब कोई व्यवस्था करनी होगी

क्रमश कोलाहल शात हो गया। प्रत्येक व्यक्ति कहीं-न-कहीं स्थिर हो गया था। कुछ ही समय म प्राय लोग सो गए थे।

लक्ष्मण को सोना नही था, न ही वे उनीदे थ। विभिन्न प्रकार के विचार उनके मस्तिष्क म उथल-पुथल मचा रहे थ। मन सिद्धाश्रम की यात्रा से इस यात्रा की तुलना कर रहा था। उस यात्रा का उद्देश्य क्या था, और इस यात्रा का उद्देश्य क्या है? यह वनवास सुखद है अथवा दुखद? इसके लिए कौन उत्तरदायी है—दशरथ? कैकेयी?? या स्वय राम??? इसके लिए किसी को दोष दिया जाए या न दिया जाए? यदि दिया जाए तो किसको कितना दोष दिया जाए? अयोध्या म पीछे क्या होगा? भरत की प्रवत्ति क्या होगी? कैकेयी का प्रभाव किसकी कितनी क्षति करेगा?

सुमत्र आकर लक्ष्मण के पास बैठ गए मुझे नीद नही आ रही सौमित्र!

'आइए तात!" लक्ष्मण बोले 'जब तक नींद न आए मेरे पास

चढ़िए।"

तुम सोओगे नहीं लक्ष्मण ?

"मैं पहरे पर हूं आर्य।"

किंतु वनवास तो चौदह वर्षों का है। सुमंत्र ने कहा।

लक्ष्मण हंस पड़े, शृंगवेरपुर अथवा ऋषि आश्रमों में पहरे की आवश्यकता नहीं होगी। फिर वन में जहां कहीं भैया राम अपना आश्रम बनाएंगे वहां सुरक्षा की समुचित व्यवस्था होगी। चौदह वर्षों तक कोई व्यक्ति दिन रात नहीं जाग सकता आर्य। और आखिर तो लक्ष्मण भी एक व्यक्ति मात्र ही है।'

यही तो मैं भी सोच रहा था राजकुमार। सुमंत्र बोले ऐसी सेवा संभव नहीं है। पर अयोध्यावासी तो अब शायद सुख की नींद कभी नहीं सोएंगे।

सुमंत्र सहसा उदास हो गए।

क्यों आर्य ?'

लक्ष्मण! व्यक्ति को अशुभ नहीं बोलना चाहिए। राजा के विषय में और भी नहीं। उस व्यक्ति के विषय में तो एकदम नहीं जो तुम्हारा कुटुंबी हो। पर फिर भी मैं अपनी चिंता तुम्हारे सामने प्रकट कर रहा हूं।

क्या बात है, आर्य सुमंत्र ? लक्ष्मण के स्वर में हल्की सी चिंता थी।

तुम्हारे आने के पश्चात अयोध्या में स्थिति अधिक नहीं बदली। सम्राट उसी प्रकार आखें बंद किए आधे सोए आधे जागे-से पड़े हैं। हां इतना परिवर्तन अवश्य हुआ है कि वे कैकेयी के महल से हटकर साम्राज्ञी कौसल्या के महल में चले गए हैं। सम्राट पश्चात्ताप और आत्मग्लानि से अत्यधिक पीड़ित हैं। वे भयभीत भी हैं। सोए सोए चीत्कार करने लगते हैं। ऐसा लगता है मानो अपने शत्रुओं को देख रहे हैं। और फिर अपनी रक्षा के लिए राम को पुकारने लगते हैं मुझे लगता है, यह स्थिति उनके प्राण ले लेगी

लक्ष्मण ने उपेक्षा से अपना मुंह दूसरी ओर फिरा लिया।

तुम उनसे बहुत रुष्ट हो।" सुमत्र बोले "किंतु मैं सम्राट का बाल-सखा हू पुत्र ! मेरी ममता लबे साहचर्य से जन्मी है। मैंने सम्राट का वह रूप देखा है, जब उनकी दप दीप्त आखें आकाश से नीचे नही देखती थी। चेहरे पर तेज दिपता था। उनकी ठोकर से पहाड हिल जाते थे"

"आपने उनका वह रूप नही देखा आय सुमत्र !" लक्ष्मण की वाणी वक्र हो उठी "जब सुन्दरी युवती देखते ही उनके मुह म पानी भर आता था। विभिन्न सामान्य जन की कन्याओ, सामतो की पुत्रियो और राजाओ की राजकुमारियो को वे अपने सैनिक बल की धमकी अथवा वास्तविक बल से प्राप्त करते थे। अपनी साम्राज्ञी को उन्होने जूते की नोक पर रखा और राम जसे पुत्र की विकट उपेक्षा की। आपने उनका वह रूप नही देखा, जब वे क्रमश वृद्ध हो रहे थे काया और बुद्धि क्षीण हो रही थी, आखो की ज्योति मद हो रही थी पेशिया गलकर चर्बी बन रही थी और तब भी सम्राट वर यात्राए कर रहे थे। दप से दमकती कवयी के पीछे अनाथ वृद्ध के समान डोलते फिरना क्या तनिक भी सम्मानजनक था "

"मैंने यह सब भी देखा है सौमित्र ! किंतु भेद मात्र इतना है कि मैं सम्राट को प्रेमी की दृष्टि से देखता हू। उनकी दुबलताओं को पहचानकर, उनके दोषो के प्रति करुणायुक्त हो उठता हू, और तुम उनके पुत्र होकर भी उन्हे एक छिद्रान्वेषी आलोचक की दृष्टि से देखते हो राजकुमार ! जो सारे गुणो को एक अवगुण पर वार देता है। सम्राट अपने दोष नही जानते ऐसी बात नहीं है। अब जिस पश्चात्ताप से वे पीडित हैं, उसकी ओर तुम्हारा ध्यान नहीं गया। अनेक बार उन्होने मुझसे कहा है कि समय रहते उन्होंने क्या नही समझा कि उनकी पत्निया म से केवल साम्राज्ञी कौसल्या उनसे प्रेम करती हैं। अन्य पत्निया उनसे घृणा करती हैं भय खाती हैं, अथवा उनसे कुछ प्राप्त करना चाहती हैं। रानी सुमित्रा का कल दिन भर म उन्होंने कितना सराहा है। उन्होंने कहा रानी सुमित्रा के मन म अथाह प्यार है, ममता है, पर वह ममता केवल पीडिता के लिए है। पीडक लोगो के लिए उनके पास केवल घृणा है। और यह उनका ही प्यार और बल था, जो साम्राज्ञी को जिला ले गया—अन्यथा अयोध्या म ऐसा

कौन था, जो युवती कौसल्या और बालक राम की रक्षा करता। सम्राट ने स्वीकार किया है कि साम्राज्ञी के प्रति अपने पिता अज के मुखर स्नेह के कारण व साम्राज्ञी से उदासीन हो गए थे। साम्राज्ञी के विरोधहीन आत्म समर्पण ने उनके त्याग और बलिदान ने सम्राट की दृष्टि में उनका महत्त्व समाप्त कर दिया था। सम्राट का व्यक्तित्व उस समय मुखर वाक् चतुर, लीलामयी युवती की आकांक्षा करता था। वसी युवती अंत में उन्हें कैकेयी के रूप में मिली जिसने उन्हें इस स्थिति तक पहुंचा दिया।

लक्ष्मण के मन की वितृष्णा उनके चेहरे पर प्रकट हो गयी आप जो भी कहें आर्य सुमन्त्र ! मैं वैसा व्यक्ति नहीं हूं जो तनिक से पश्चात्ताप के कारण किसी के सारे पूर्व अपराध क्षमा कर दे। मुझे आपके सम्राट से कोई सहानुभूति नहीं है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि यदि भैया राम अनुमति दें देते तो सम्राट को या तो बंदी कर लेता या उनका वध कर देता। कैकेयी से मैं रुष्ट हूं, इसलिए नहीं कि उसने सम्राट को पीड़ित किया है उसके लिए तो मैं कैकेयी के सम्मुख नतमस्तक हूं। कैकेयी के प्रति मेरा क्रोध भैया राम के निर्वासन के कारण है लक्ष्मण रुक गए 'आप जाकर सोने का प्रयत्न करें आर्य। कल प्रात हमें जल्दी चलना है। मैं नहीं चाहता कि आप सम्राट का पक्ष प्रस्तुत करें और उनके प्रति मेरे मन में छिपी घृणा प्रकट हो।'

सुमन्त्र उठकर खड़े हो गए। उन्होंने कुछ कहा नहीं।

तीनों रथ बड़ी क्षिप्र गति से निरंतर बढ़ते जा रहे थे।

दोपहर ढल गयी थी। संध्या होने को थी। रात से पहले उन्हें शृगवेरपुर के साथ लगकर बहती गंगा तट पर पहुंचना था।

पिछली रात सुमन्त्र काफी देर से सोए थे और लक्ष्मण सोए ही नहीं थे। पर फिर भी प्रात सारी व्यवस्था समय से हो गयी थी। पीछे छूटने वाले लोगों से विदा लेना सरल नहीं था। युवा संगठनों के सदस्यों और ब्रह्मचारियों का हठ बड़ा ही प्रबल था किंतु व सब अनुशासन में बंधे हुए थे। जितनी जल्दी संभव हुआ सब से विदा लेकर राम, सीता और लक्ष्मण सुयज्ञ चित्ररथ और सुमन्त्र के साथ चल पड़े थे। तमसा तट पर छूटे हुए

लोगों के निकट-आश्रम अथवा अयोध्या तक लौटने की व्यवस्था निजट के अधीन थी, अत वे भी साथ नहीं आए थे।

दोपहर के भोजन के समय थोड़ा-सा रुकने के समय को छोड़कर वे लोग निरन्तर चलते रहे थे। अयोध्या राज्य की सीमा पार कर अयोध्या के सामंतों की भूमि को भी वे पीछे छोड़ आए थे। मार्ग में वेद-श्रुति गोमती तथा स्यन्दिका नदियां पड़ी थीं किंतु सेतुओं की उचित व्यवस्था होने के कारण उन्हें पार करने में असुविधा नहीं हुई थी।

दोपहर के भोजन के उपरांत चलने के समय से ही धूप कुछ कम हो गयी थी। हवा ठंडी थी और रथ वेग से चल रहा था। लक्ष्मण रात भर के जगे थे इस समय रथ में बैठे-बैठे ही ऊंघ गए।

मार्ग भर सीता दूर तक फैले खेतों उनमें काम करते कृषक स्त्री-पुरुषों को देखती आयी थीं। कभी-कभी वे किसी जनपद के बीच से, किसी ग्राम के पड़ोस से भी निकले थे। नगरों के निकट का मार्ग उन्होंने जान-बूझकर नहीं लिया था। सीता मार्ग में आए वन प्रांतरों को भी देखती रही थीं। सोचती रही थीं—अब तक उन्होंने महलों का सुव्यवस्थित जीवन ही देखा था, जहां सब-कुछ उपलब्ध था और कोई असुविधा नहीं थी। वहां किसी को कोई भौतिक परेशानी नहीं थी। वहां भी दुख थे किंतु उनका स्वरूप और ही था अब वे जहां से गुजर रही थीं, यह संसार कोई और ही था।

वे जनकपुर के राजमहल में पली हैं रानी सुनयना और सम्राट् सीरध्वज उनके माता पिता हैं किंतु कौन कह सकता है, उनके जनक जननी कौन हैं। उनके जनक जीवित हों तो किस वय के होंगे जननी कैसी होगी। वृद्ध हो चुके होंगे बेचारे। निर्धन भी अवश्य ही होंगे—नहीं तो अपनी पुत्री को इस प्रकार खुले खेत में क्यों फेंक जाते। कैसे अर्जित करते होंगे वे अपनी आजीविका? इस वृद्धावस्था में कहीं किसी खेत में कुदाल चला रहे होंगे। पसीना बह रहा होगा। हांफ रहे होंगे। कभी-कभी हाथ कांप भी जाता होगा माथा घूम जाता होगा कहीं किसी राजा-सामंत के मूदास हुए तो माथा घूमने पर सैनिक कोड़े से मारते होंगे

सीता आगे सोच नहीं पायीं। उनके शरीर में झुरझुरी-सी आ गयी। क्यों खोजती हैं वे अपनी जननी को, जनक को। धरती पर अपना पसीना

गिराने वाले भट्टियो म अपने शरीरो को तपाने वाले—सभी तो उनके जननी-जनक जसे हैं। वे उन्ही से प्यार करें। उनके लिए कुछ करें। क्या नही राज्य की ओर से सब के उचित भरण-पोषण सम्मानपूर्ण आजीविका का प्रबंध होता ? क्यो राज्य केवल राजा का है ? क्या वह सारी प्रजा की सपत्ति नही है ? इस विषय म मानव से प्यार करने वाले सभी लोगो को कुछ सोचना होगा ये भेद मिटाने होंगे—धनी निर्धन के शोषक और शोषित के आर्य तथा आर्येतर के शृगवेरपुर का राजा गुह भी तो आर्य नही है। वह निषाद है। राम उसे अपना परम मित्र मानते हैं। कितना विश्वास है उन्ह उस पर। राम ने सीता को बताया था—बहुत पहले कभी राम किसी राज्य-कार्य म इधर आए थे तो निषादराज गुह से उनका परिचय हुआ था। गुह उन्ह एक ईमानदार तथा सच्चा आदमी लगा था। इसीलिए जब आर्य सामतो ने अपने राज्य विस्तार के उपक्रम म शृगवेरपुर को भस्मीभूत करना चाहा तो राम ने उनका दृढ विरोध किया था। राम के कारण ही इन सारे आर्य सामतो के जनपदो के बीच यह निषाद राज्य बचा हुआ था। राम की इच्छा के अनुसार ही गुह ने अपनी सैनिक शक्ति कुछ बढा ली थी। किंतु राम ने बड़े खेद से सीता से कहा था कि अच्छे योद्धा होने पर भी अच्छे शस्त्रों के अभाव म निषाद किसी व्यवस्थित आर्य सेना से लड नही पाएगे। फिर राम सिद्धाश्रम गए थ। वहा उन्होंने निषादो पर अत्याचार करने और उसका समर्थन करने वाले पिता-पुत्र को दडित किया था। तभी से गुह राम का अभिन्न मित्र हो गया था। वह उनके लिए प्राण भी दे सकता था

क्रमश रथो की गति धीमी होने लगी थी। सामने गगा का गभीर प्रवाह अपना वेग दिखा रहा था। आस-पास ही कहीं शृगवेरपुर होगा सीता ने सोचा—आज रात उन्ह यही विश्राम करना है।

तीनो रथ रुक गए। सब लोग रथो से उतर आए। राम ने क्षण भर इधर उधर दृष्टि दौडाई और अपने निरीक्षण का निर्णय सुना दिया हम इस इगुदी वृक्ष के आस-पास विश्राम करेंगे। तात सुमत्र ! रथो और घोडो की व्यवस्था आप सभाल लें।

राम ने अपना धनुष और तूणीर वक्ष के तने से टिका दिए। वे खाली हाथ लौटकर रथ के पास आए, 'वधुओ ! हम अपना शस्त्रागार उतार लें। रथ आगे नहीं जाएंगे।'

'राजकुमार !' सुमंत्र कुछ कहने को हुए।

'आर्य !' राम का स्वर दृढ़ था, 'इसमें विवाद असहमति अथवा पुनर्विचार का कोई अवकाश नहीं है। यह निश्चित है कि अब न रथ आगे जाएगा, न आप सुयज्ञ अथवा चित्ररथ में से कोई आगे जाएगा। यहां से अगले पड़ाव तक सहायता का दायित्व गुह का होगा।"

सुमंत्र उदास हो गए। कितने हठी हैं राम ! अपने कर्तव्य के सामने किसी की कोमल भावनाएं उनके लिए कोई मूल्य नहीं रखतीं। और कर्तव्य भी कैसा ? पिता ने अपने मुख से एक बार भी वनवास का आदेश नहीं दिया किंतु सुमंत्र का मन कहीं आश्वस्त भी था—राम दृढ़निश्चयी हैं राम आत्मविश्वासी हैं।

सुमंत्र घोड़ों को खोलकर उनकी देखभाल में लग गए। राम, सीता लक्ष्मण, सुयज्ञ और चित्ररथ विभिन्न धनुष, विविध प्रकार के बाणों से भरे तूणीर खड्ग तथा अनेक दिव्यास्त्र रथों में से उठा-उठाकर इंगुदी वृक्ष के तने के साथ टिकाने लगे।

सीता को कार्य करते देख, एक-आध बार, सुयज्ञ तथा चित्ररथ ने कहा भी, 'आप ऐसा कठिन कार्य न करें आर्या ! हम लोग अभी किए देते हैं।'

किंतु राम ने उन्हें तत्काल टोक दिया, 'सीता को भी अपने ही समान स्वतंत्र तथा समर्थ व्यक्ति समझकर कार्य करने दो और वन भी वनवास की अवधि में सहायता करने के लिए तुम लोग साथ नहीं रहोगे।'

इधर रथों से शस्त्रागार उतारा गया और उधर अपने कुछ सैनिकों के साथ आते हुए गुह दिखाई दिए।

राम अपना सहज गांभीर्य त्याग चंचलतापूर्वक भागे। दौड़कर उन्होंने गुह को गले से लगा लिया, 'कितने दिनों के पश्चात मिले हो, मित्र !'

गुह की आखा म आसू आ गए यही तो मैं भी कहता राम ! इतने दिना के पश्चात मिल हो और वह भी इस प्रकार। महल म न आकर इगुदी वक्ष के नीच टिक गए।

उन्होने वडी करुण दप्टि से राम सीता और लक्ष्मण को देखा।

किंतु उनके आसू और करुणा अधिक देर नही टिकी। अगल ही क्षण आसू सूख गए। चेहरा तमतमा उठा। वाणी म ओज भर आया राम ! मेरे गुप्तचरो ने तुम लोगा के यहा पहुचन और तुम्हारे वनवास की सूचनाए प्राय साथ-ही साथ दी है। यह उनकी शिथिलता का प्रमाण अवश्य है, पर उसस क्या ! आत आत मैं अपनी सेना को युद्ध के लिए प्रस्तुत होने का आदेश देकर आया हू। मेरी सेना अयोध्या की सना के बराबर नही है—न सख्या म न युद्ध-कौशल म न शस्त्रास्त्रो म। पर उसस क्या ? मेरे वीर साम्राज्य की उस वेतनभोगी सेना को पल भर म नप्ट कर देने का हौसला रखत हैं। तुम हमारे साथ हो राम ! तो हम किसी से भी टकरा जाएगे आज रात विश्राम करो। कल प्रात ही अभियान होगा ।

गुह भया ! लक्ष्मण हसे पहल मुझसे गले मिलोगे या पहल अयोध्या पर सैनिक अभियान करोगे ?'

गुह कुछ सकुचित हुए सौमित्र ! तुम्ह फिर कटाक्ष करने का अवसर मिल गया। अपने आवेश म मैं कभी कभी अपना सतुलन खो बठता हू।'

गुह और लक्ष्मण गल मिले। राम शात भाव स उन्ह देखते रहे। उनके अलग होत ही बोले पहल मेरे साथ एक ही लक्ष्मण थे अब तो तुम दोनो हो। सनिक सीता का प्रणाम भी स्वीकार कर लो तो सैनिक अभियान की योजना बनात है।

सीता ने हाथ जोड दिए 'जेठ के सम्मुख तो अनुज वधू वस ही सकुचित हो जाती है और फिर जब जठ सनिक अभियान करते हुए आए तो प्रणाम करने म विलब हो जाना स्वाभाविक ही है। आशा है जेठ जी क्षमा करेंगे।'

आशीवचन की मुद्रा मे हाथ उठा गुह क्षण भर भौचक्के से खडे रह गए, और फिर जार स खिलखिलाकर हस पडे अच्छा तमाशा बनाया तुम लोगा न मेरे आवेश का। इतने शात जनों के बीच तो एक आविष्ट

व्यक्ति मूर्खता से आविष्ट लगने लगता है।"

गुह देर तक हंसते रहे। फिर सहज होकर अपने सैनिकों की ओर मुड़े "शस्त्र शिथिल कर शांत होकर बैठ जाओ, वीरो ! ये लोग युद्ध की मुद्रा में नहीं हैं।" वे घूमे, "पर राम ! निर्वासन से तुम रुष्ट नहीं हो क्या ? अयोध्या के राज्य पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार है, वरन् पिछले कई वर्षों से अयोध्या का शासन तुम्हीं चला रहे हो।"

"आओ, पहले इन लोगों से तुम्हारी पहचान कराऊं।" राम बोले, "ये सुयज्ञ हैं—गुरु वसिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र और मेरे मित्र। ये हैं सम्राट के मंत्री चित्ररथ, मेरे सुहृद। ये लोग हमें पहुंचाने आए हैं। मेरी अनुपस्थिति में तुम्हें अयोध्या में इन्हीं से संपर्क बनाए रखना है।"

परस्पर अभिवादन के पश्चात्, गुह फिर पहले विषय पर लौट आए, "तुम रुष्ट क्यों नहीं हो, राम ? देख रहा हूं ऐसी भयंकर घटना के पश्चात् भी लक्ष्मण तक शांत हैं।"

राम का तेज, उल्का के समान प्रकट हुआ "यह न समझो गुह ! कि मैं इतना असमर्थ हूं या अयोध्या में मुझे इतना भी जन-समर्थन प्राप्त नहीं है कि कोई मुझसे मेरा अधिकार छीनकर, मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे निर्वासित कर देता। मैं अपनी इच्छा से न चला आया होता, तो कोई इसे संभव नहीं कर पाता। और अपनी इच्छा से अधिकार त्यागने में आक्रोश कैसा ? आरंभ में लक्ष्मण भी तुम्हारे ही समान क्रुद्ध हुए थे किंतु बात समझकर शांत हो गए और साथ चले आए।" राम हंस पड़े, "इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम भी बात समझकर मेरे साथ चल पड़ो।"

गुह हतप्रभ रह गए। राम का वह तेज और यह हंसी। कितने आश्वस्त हैं राम ! चिंतन की मुद्रा में गुह बोले, "मैं तुम्हारे साथ चलने की बात नहीं सोच रहा। मैं तुम्हारा राजतिलक शृंगवेरपुर में करूंगा। तुम चौदह वर्षों तक यहीं राज्य करो राम !"

"राज्य ही करना होता तो अयोध्या क्या बुरी थी।" राम पुनः मुसकराए, "शृंगवेरपुर में तुम ही राज्य करोगे, किंतु एक काम मेरा भी करना होगा।"

क्या ?' गुह तन्मय हो गये।

'संभावना बहुत कम है।" राम मुसकराए, "दुहरा रहा हूँ, संभावना बहुत कम है, किंतु यदि हमारा अनिष्ट करने के लिए भरत ने इस ओर सैनिक अभियान किया, तो तुम बाधा दोगे और चित्रकूट में हमें इसकी सूचना भिजवाओगे।"

'अवश्य।'

राम का विश्वास और उनकी ओर से सौंपा गया उत्तरदायित्व पाकर गुह महत्त्वपूर्ण हो उठे।

वार्तालाप में तनिक शिथिलता पाते ही सीता बोलीं, 'यदि अनुचित न हो, तो पूछूँ, जेठानीजी के दर्शन नहीं होंगे क्या ?'

गुह एक बार फिर से संकुचित हो उठे, "क्षमा करना, वैदेही! मैं सैनिकों को साथ लेकर चला आया था; पत्नी को भूल ही गया। अब सब लोग मेरे साथ चलो। मेरे महल पर पधारो..." और राम को मुसकराते देख कुछ आहत हुए बोले, "कदाचित् वनवास की अवधि में राम किसी भी नगर में नहीं जाएँगे, चाहे वह शृंगवेरपुर ही क्यों न हो; किंतु तुम और लक्ष्मण..."

'नहीं, जेठजी!" सीता मुसकराईं, "पति को वन में छोड़ पत्नी का राजमहल में जाना उचित नहीं होगा। जेठानी जी आशीर्वाद देने यहाँ तक आ सकतीं तो हमारा सौभाग्य होता।'

राम बोले, 'गुह! औपचारिकता छोड़ो। हम तुम्हारे महल में नहीं जा सकते। हम स्वादिष्ट भोजन भी नहीं चाहिए। वैसे तुम्हारे राज्य में आये हैं, वन्य भोजन जैसा सत्कार कर सकते हो, यहीं कर दो। और यदि प्रात: विदा के समय भाभी के दर्शन हो सकें, तो यथेष्ट होगा।

जैसी तुम्हारी इच्छा।"

गुह उठ गए। अपने सैनिकों के साथ वे प्रबंध के लिए चले गए। शेष लोग राम के निकट आ बैठे। अब तक सुमंत्र भी घोड़ों की व्यवस्था से मुक्त हो चुके थे।

इंगुदी वृक्ष के निकट लक्ष्मण द्वारा बनाई गयी पत्र-शैयाओं पर राम

और सीता चले गये तो सुमन्त्र और चित्ररथ भी अपनी अपनी शैयाओं पर लेट गए। किंतु पिछली रात प्रायः जागते रहने पर भी लक्ष्मण सोने के लिए तैयार नहीं थे। वे अपना धनुष और तूणीर लेकर कुछ दूर सन्नद्ध प्रहरी के समान बैठ गये। सुमन्त्र भी उन्हीं के पास जा बैठे।

"लक्ष्मण! तुम सो जाओ भाई।" गुह बोले "मैं अपने सैनिकों के साथ स्वयं जागकर पहरा दूंगा। तनिक भी चिंता मत करो।"

लक्ष्मण हंस पड़े "भैया गुह! मेरे सो जाने पर तुम भी सो गये तो? तुम भैया और भाभी के प्रहरी बन बैठे रहो मैं तुम्हारा प्रहरी बन जाऊंगा।"

"तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं।" गुह को आश्चर्य हुआ।

"तुम्हें मुझ पर हो तो तुम सो रहो। लक्ष्मण हंसे विश्वास की बात छोड़ो। तुमसे कुछ बातें करने के मोह में रात भर जागूंगा। आओ बैठो।"

तुम अपनी दुष्टता नहीं छोड़ोगे।' गुह के मन में ममता उमड़ आयी, "तुम धन्य हो लक्ष्मण। यदि तुम किसी प्रकार राम को इस बात के लिए तैयार कर लो कि वे मुझे अपने साथ ले चलें तो मैं अपना राज्य तुम्हें दे दूंगा।"

"भैया के साहचर्य के लिए तो कोई भी अपना राज्य मुझे दे देगा। यह भावना सम्राट दशरथ की भी थी, किंतु लक्ष्मण अपना राज्य किसी को नहीं देना चाहता।"

"कौन-सा राज्य?" गुह ने पूछा।

"भैया राम का साहचर्य।"

"सौमित्र!" सुमन्त्र बोले "तुम अभी तक सम्राट से रुष्ट हो। तुम उन्हें पिता न कहकर, सम्राट कहते हो।"

"तात सुमन्त्र! यह विषय न ही छेड़ें तो अच्छा है।' लक्ष्मण की आंखों में क्षण भर में ही ज्वाला धधक आयी "सम्राट के विषय में मैंने आपको अपना निश्चित मत कल ही बता दिया था।"

रात के अंतिम प्रहर में आकर निषादराज गुह प्रातः अपनी रानी के साथ लौटे। रानी ने राम और लक्ष्मण के अभिवादन का उत्तर देकर,

सीता को आलिंगन में कस लिया।

सीता की निषाद रानी से यह पहली भेंट थी, किंतु स्नेह का आधार पहले से ही स्थापित हो चुका था। निषाद रानी ऊंचे कद तथा इकहरे बदन की ऊर्जा से भरी हुई सुन्दर युवती थी। रंग सांवला था। गौर-वर्णी आर्य कन्याओं के सौंदर्य की अभ्यस्त आंखों को वह रंग क्षण भर के लिए खटकता था किंतु वर्ण के पूर्वाग्रह को भेदने और नष्ट करने में उसका सौंदर्य अधिक समय नहीं लेता था। आर्य सौम्य संस्कारों में पला सीता का मन दो क्षणों में ही निषाद रानी के आकर्षक सौंदर्य की प्रतिष्ठा को मान गया। और फिर उस मुख मंडल पर झलकता हुआ स्नेह उसे ममतापूर्ण बना रहा था। यौवन तथा वात्सल्य के अद्भुत आकर्षण ने उसके रूप को अलौकिक आयाम दिया था।

"तुमने विकट जोखिम का काम किया है, सीते!" निषाद रानी ने अपना बाहुपाश ढीला कर, बांहों की दूरी पर रख, सीता को प्रेम से निहारते हुए कहा।

सीता मुसकराई, "राम जैसे वीर पति की पत्नी ही यदि ऐसा जोखिम न उठाएगी तो दूसरा कौन उठाएगा।"

"ठीक कहती हो सखी!" निषाद रानी बोली, "युवराज के असाधारण शौर्य में किसी को भी संदेह नहीं। पर..." वह तनिक सम्भ्रम से बोली, "यह मत समझना सीते! कि मैं अपना ज्ञान बघार रही हूं। बात केवल इतनी-सी है कि हम इस प्रदेश में रहते हैं और हमारी नौकाएं और जल-पोत दूर-दूर तक यात्राएं करते हैं इसलिए इधर के वनों की जानकारी हमें है। ये वन ऐसे नहीं हैं बहिन! जहां कोई पुरुष भी सुरक्षित हो, फिर नारी की तो बात ही क्या।"

सीता ने मुग्ध दृष्टि से उस सांवले सौंदर्य पुंज के स्नेह को देखा और बोली, "ठीक कहती हो दीदी! पर जब राम उन जोखिमों के बीच जा रहे हैं तो मैं अपने प्राणों का क्या मोह करूं। उन्हें रोक लो, न मैं जाऊंगी, न लक्ष्मण जाएंगे।"

निषाद रानी हंस पड़ी "चतुर हो, बहिन। जानती हो युवराज को रोकने की शक्ति किसी में नहीं है। पर मैं एक असमंजस में हूं। तुमसे

कया कहूं—कि वे पुरुष हैं। जोखिम का सामना कर सकते हैं। उन्हें जाने दो। साथ जाकर उनका जोखिम न बढ़ाओ। या कहूं—कि पुरुष तथा नारी की समता सिद्ध करने के लिए इस पितृ-सत्तात्मक समाज की नारी विरोधिनी नीति का विरोध करने के लिए अवश्य साथ जाओ।'

सीता भी गंभीर हो गयी 'इस समय तो केवल यही कहो कि नारी पुरुष की स्पर्धा भूलकर मैं अपने प्रिय के प्रेम म बंधी उनक संग जाऊं।'

रानी की आखें डबडबा आयीं तुम धन्य हो वैदेही! इतना प्रेम यदि सभी कहीं होता। सुखी और प्रेम करने वाले दंपति को देखकर मुझे कितना सुख होता है तुम्हें क्या बताऊं। तुम्हारे जेठ प्राणपण से प्रयत्न कर रहे हैं कि निषाद दंपत्ति सम धरातल पर, समानता की भावना स प्रेम के आधार पर जिए'

वदेही! राम न पुकारा जाने का समय हो गया प्रिये!'

व लोग घाट पर आये। जल-पोत सरीखी एक बडी-सी नौका चलन के लिए तयार खडी थी। उनके साथ आए सारे शस्त्रास्त्र सुव्यवस्थित ढंग स नाव मे लगा दिए गए थे। अनेक नाविक तथा सशस्त्र दंडधर, नौका से सन्नद्ध बठे थे, और घाट पर निषाद सैनिकों की टुकडियां उन्हें विदा देने क लिए प्रस्तुत थीं।

अच्छा! अब विदा दो मित्र!'

राम ने आलिंगन के लिए गुह की ओर हाथ बढा दिए।

'हम साथ चल रहे हैं भाई।' गुह बोले, आओ प्रिय।

निषाद रानी नाव म बठने के लिए आगे बढीं।

"भाभी! क्या कर रही हैं आप!' राम बोले, और वे गुह की ओर घूमे 'अपनी सत्ता का प्रयोग मुझ पर मत करो। तुम और भाभी हमारे साथ नहीं जाओगे। तुम्हारे नाविक भी हमें भरद्वाज आश्रम तक ही पहुंचाएंगे, और इन सशस्त्र दंडधरों को नाव से उतर आने का आदेश दो।

राम! यह सब मैं अपने प्रेम के कारण "

गुह की बात राम ने बीच म ही काट दी तुम्हारी भावना मैं

समझता हूं। नहीं तो क्या तुम समझते हो कि हमारी रक्षा कुछ दंडधर करेंगे। दंडधरों को नौका से उतरने का आदेश दो।'

राम !

जो कह रहा हूं वही करो भाई भरत।' राम स्नेह भरी वाणी में बोले, तुम्हें जो काम सौंपा है उसे स्मरण रखो। अपनी सीमाओं दुर्ग और सेना का ध्यान रखो। प्रजा को शस्त्र शिक्षा देकर मनिट कम के लिए सन्नद्ध रखो।

जैसी तुम्हारी इच्छा राम।'

गुह ने दंडधर-नायक को नौका खाली करने की आज्ञा दे दी।

सौमित्र ! राम बोले सब से विदा लो और सीता को नाव में बैठा कर तुम भी नाव में बैठो।

'अच्छा भया।

राम देख रहे थे—लक्ष्मण गुह निषाद रानी सुमंत्र सुयज्ञ तथा चित्ररथ से विदा ले रहे थे। उनका कहा दूरी के कारण राम सुन नहीं पा रहे थे किंतु उनके चेहरे के भावों से स्पष्ट था कि वे परिहास की मुद्रा में थे और सब पर ही कोई-न-कोई कटाक्ष कर रहे थे।

निषाद रानी से विदा लेती हुई सीता भावुक हो उठी थी। उनका सहज विनोदी मन इस समय करुणा से भरा हुआ था। निषाद रानी का आलिंगन प्रगाढ़ तथा ममतापूर्ण था। उनकी आंखों में अश्रु झलमला आये थे। सुमंत्र को सीता ने अपने श्वसुर के से सम्मान के साथ प्रणाम किया था। सुमंत्र की आंखों से धाराप्रवाह अश्रु बह रहे थे। राम को लग रहा था—सुमंत्र अभी वृद्ध सम्राट के ही समान सत्ता शून्य होकर गिर पड़ेंगे। सीता ने बहुत अच्छा किया कि वे आगे बढ़ गयीं। सुमंत्र को संभलने का अवसर मिल गया। सुयज्ञ तथा चित्ररथ को सीता ने तटस्थ सम्मान के साथ प्रणाम किया। और गुह को प्रणाम करते हुए वे फिर विनोदमयी हो गयी थीं। उन्होंने गुह पर फिर कोई कटाक्ष किया था और भोले जेठ गुह अनुज वधू के परिहास और जेठ की मर्यादा में बंधे कसमसाए से मुसकरा कर रह गए।

लक्ष्मण के हाथ का अवलंब लेकर सीता नाव में बैठ गयीं।

'अच्छा मित्र ! विदा।" राम ने हाथ जोड दिए। निषाद रानी के पास आकर व रुके, "भाभी ! अपना ध्यान रखना और निषादराज पर अकुश। गुह बहुत जल्दी आवेश म आ जाते हैं।'

निषाद रानी के मुख-मडल पर वक्र मुसकान उठी, "वे स्त्री का अकुश मानेंगे क्या ? देवर ! तुम्हारे ही वडे भाइ है।'

'न व स्त्री का अकुश मानें न आप पुरुष का वधन मानें, किंतु बुद्धि, विवेक, सतुलन और प्रेम की मर्यादा तो सब ही मानेंगे। अपने इन्हीं गुणो का उपयोग करना। आपकी प्रजा भाग्यवान है कि उन्ह आप जसी रानी मिली।

निषाद रानी हस पडी दखती हू लक्ष्मण ने तुमस केवल सीता ही नहीं तुम्ह कुछ सिखाया भी है। तुम भी चापलूसी करना सीख गए देवर।'

राम हसत हुए आग बढ गय। सुमन्त्र के सम्मुख आकर वे गभीर हो गए 'सुमन्त्र काका ! मरी मा का ध्यान रखना।'

वे रुके नहीं। उन्ह भय था, सुमन्त्र कहीं फिर स भावुक न हो उठें। सुयश तथा चित्ररथ को बारी-बारी गले लगाकर बोले, "सजग और सावधान रहना।'

नौकारूढ होकर, हाथ के सकेत से राम ने नाविको को चलने का आदेश दिया। बिना एक भी शब्द उच्चरित किए नाविक चल पड़े। हाथ के सकेत से ही विदा दी और स्वीकार की गयी।

क्रमश नाव किनारे से दूर गहर पानी की ओर बढ रही थी। तट पर खडे हुए सुमन्त्र सुयश चित्ररथ गुह, निषाद रानी और निषाद सनिक शनै शनै दूर होते जा रह थे। उनकी मुद्राओं से स्पष्ट था कि वे तब तक वहीं खडे रहेंगे जब तक उनको नाव दिखाई दती रहेगी।

राम सीता और लक्ष्मण की आखें भी किनारे पर ही लगी रहीं। केवल नाविकों ने ही अपना ध्यान तत्काल किनारे से हटाकर जल धारा पर केंद्रित कर लिया था।

किनारा आंखा से ओझल हो जान पर, राम न अपनी दृष्टि सीता और

लक्ष्मण की ओर फेरी। वे दोनो ही इस समय अन्तर्मुखी हुए कुछ सोच रहे थे। अब वे लोग न केवल अपने राज प्रासादों अयोध्या नगर तथा अपने राज्य की सीमा से बाहर निकल आये थे वरन अपने परिचित राज्यों से भी परे हो गए थे। निषादराज गुह के राज्य की सीमा वह अंतिम प्रदेश था, जिसमें वे स्वयं को सहज सुरक्षित समझ सकते थे। उस सीमा को भी वे तेजी से पीछे छोड़ते जा रहे थे। आज रात का पड़ाव गंगा तट पर किसी अपरिचित प्रदेश में होगा। किसी भी आवश्यक वस्तु की समुचित व्यवस्था नहीं होगी। आज ही नहीं आज से भविष्य के चौदह वर्षों तक यही स्थिति रहेगी। वे लोग न केवल असुरक्षित होंगे वरन सब प्रकार से असुविधा जोखिम आशंकाओं तथा तनाव भरा जीवन जिएंगे। राम सोचते जा रहे थे क्या उनके लिए उचित था कि वे अपने प्रेम में बंधे लक्ष्मण और सीता को ऐसा कठिन जीवन जीने के लिए अपने साथ ले आते? प्रेम अव्यावहारिक होता है व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर से उसकी आँखें बंद होती है। सीता और लक्ष्मण ने तो नहीं सोचा पर राम को तो सोचना चाहिए था। राम उनसे बड़े हैं अधिक अनुभवी हैं और उनका प्रेम भावुक न होकर विवेक से संतुलित होने के कारण कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय भी कर सकता है। सीता उनकी पत्नी है लक्ष्मण छोटे भाई है। उनके प्रति भी तो राम का कुछ कर्तव्य है। क्या वह कर्तव्य यही था कि वे उन्हें असुविधा और जोखिम के सर्वग्रासी मुख में धकेल दें? पर कर्तव्य इन दोनों के ही प्रति नहीं है कर्तव्य तो माता कौसल्या सुमित्रा और पिता के प्रति भी है जिन्हें वे अयोध्या में छोड़ आए हैं

राम! सीता कह रही थी, ये नाविक हमें कहां तक पहुंचाएगा?

राम अपने चिंतन से उबरे। वे दूसरों के विषय में सोचते सोचते स्वयं को भूल गए थे। शृंगवेरपुर के घाट पर विदा देने के लिए वे नाव में जिस स्थान पर खड़े हुए थे वहीं खड़े रह गए थे।

वे आकर सीता के पास बैठ गए गंगा-यमुना के संगम पर स्थित भरद्वाज-आश्रम तक।

कितना समय लगेगा?

यदि गुह का अनुमान ठीक हुआ, तो कल दोपहर तक हम भरद्वाज मुनि के दर्शन कर पाएंगे।'

सीता मौन ही रही।

भाभी को निषादराज का अनुमान जचा नहीं।' लक्ष्मण वक्र मुसकान के साथ बोले, वे अभी गणना कर आपको बताएंगी भैया! कि इतना समय नहीं लगना चाहिए। या कदाचित वे कोई छोटा मार्ग ही खोज निकालें।

सीता भी मुसकरायी 'सौमित्र ठीक कह रहे हैं। अपनी गणना के अनुसार मुझे यह सब ठीक नहीं लग रहा है। ये नाविक रात्रि तक इसी प्रकार चप्पू चलाते रहें और देवर लक्ष्मण दिन भर बातें भी बनाएं और रात भर जाग कर पहरा भी दें—यह संभव नहीं है।"

ठीक कहती हो सीते!' राम बोले मुझे भी लक्ष्मण की वाक्-चातुरी कुछ कचती-सी लग रही है। अच्छा हो कि लक्ष्मण नाव के भीतरी भाग में जाकर अपनी नींद पूरी कर लें।'

राम उठकर नाविकों के मुखिया के पास चले गए सुनो मित्र! नाव काफी गति पकड़ चुकी है। हमें कोई ऐसी विशेष जल्दी नहीं है। यात्रा लंबी है। बारी-बारी कुछ नाविकों को विश्राम के लिए भेज दो। कदाचित रात को भी हमें बारी-बारी जागना पड़े।"

जो आपकी इच्छा।"

नाविकों का मुखिया अपनी व्यवस्था में लग गया।

लक्ष्मण आराम करने चले गये। राम ने सीता को देखा—वे अनमनी-सी क्षितिज को घूरती हुई मौन बैठी थीं। उन्हें अकेली छोड़ दिया जाए तो यही उनकी सहज मुद्रा थी। सीता में गंभीरता और चपलता का विचित्र मिश्रण था। लक्ष्मण साथ होते तो उनके व्यंग्यों की स्पर्धा में सीता का वाग्वैदग्ध्य चिर-जागरूक रहता था। वे पास न होते तो पति-पत्नी में भी हास-परिहास हो जाता था पर अकेली होते ही सीता अपनी उस चिर गंभीरता तथा मौन चिंतनधारा में डूब जातीं।

'क्या सोच रही हो सीते ?"

सीता चौंकी "ऐसे ही तनिक माता कौसल्या के विषय म सोच रही थी। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि हमने उन्ह अयोध्या म अकेली छोड कर उचित नहीं किया ?"

"क्या ? ऐसी क्या बात है ?" राम हल्के ढग से मुसकराए "वे अपन राजप्रासाद म सुविधापूण जीवन के बीच अपने पति के सरक्षण म है।"

"है तो। किन्तु मैंने सम्राट को रानी कैकेयी के सम्मुख जितना अक्षम देखा है उससे एकदम नहीं लगता कि कोई किसी के भी सरक्षण म है। मुझे अयोध्या का प्रत्येक व्यक्ति केवल रानी कैकेयी की दया पर पडा लगता है। मैं न अधिक भीरु हू न आशकित, किंतु फिर भी मैं माता कौसल्या की सुर ग की ओर स सतुष्ट नहीं हो पा रही।"

"कोई विशेष बात है प्रिय ?" राम गभीर हो गए।

"जाने से पूव मैं उनसे विदा लने गयी थी।" सीता बोली "मुझे देखत ही वे रो पडी और रोत रोत उ होने कहा कि आप उनके पास से इस प्रकार भाग आए थ जसे डरते हो कि वे आपको पकड कर बैठा लेंगी और आपका कोई काम अधूरा रह जाएगा "

"स्थिति तो यही थी, सीत !"

"मैंने कहा मा ! उन्ह कई प्रकार की व्यवस्था करने की जल्दी थी इसलिए चले गए। वे बोली जल्दी किसे नहीं होती बेटी ! पर कोई देख मैंने कितनी लबी प्रतीक्षा की है। मैंने अपना दु ख कभी अपने बेटे के सामने भी प्रकट नहीं किया क्योंकि वही मरे लिए सबसे बडा आश्वासन था। मेरा सारा जीवन पति की प्रताडना और सपत्नियों की उपेक्षा की कथा रहा है। मैं एक सामान्य सामन्त की पुत्री—इस रघुकुल म कभी वह महत्त्व न पा सकी जो एक साम्राज्ञी को मिलना चाहिए। मरे जीवन म सुख का पहला क्षण तब आया था जब मरा राम मेरी गोद म आया। मैंने तिल तिल कर उसे पाला कि बडा होकर ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते वह युवराज बनेगा फिर सम्राट बनेगा—मेरे दु ख क दिन कट जाएगे। सुख की घडिया आएगी वर्षों के सजोए मेरे स्वप्न को आकार मिलने को हुआ, जब मैंने कहा कि मैं कैकेयी के भय से मुक्त हो गयी तो इस कैकेयी

न फिर दण्ड मार दिया। वह रोज प्रहार करती थी, रोज शस्त्र चलाती थी, और मैं अपने महाप्रहार की प्रतीक्षा में चुपचाप दम साधे पड़ी थी। मैं नहीं जानती थी बेटी! कि वह मेरे अन्तिम प्रहार को निष्फल करने के लिए झूठे-सच्चे वरदानों की काल्पनिक कहानियां लिये, पहले से ही तैयार बैठी है!" माता ने मुझे अपनी भुजाओं में बांध लिया "बेटी! राम को समझाओ। वह एक बार कह दे कि वह पिता की प्रतिज्ञाओं के लिए उत्तरदायी नहीं है। उसका अभिषेक हो या न हो, किंतु वह अयोध्या से नहीं जाएगा। सीते! राम अयोध्या में नहीं रहा, तो मेरी रक्षा कौन करेगा? मेरा पालन कौन करेगा! "

राम विह्वल हो उठे। मां ने, अपनी ओर से कभी पुत्र को अपनी पीड़ा का तनिक भी आभास नहीं दिया था। पहली बार उन्होंने अपनी व्यथा खोलकर सम्मुख रखी थी। सच कहती हैं मां! इन प्रासादों में राम ने भरत के ननिहाल की चर्चा पचासों बार सुनी थी। कैकेयी के मायके, केकय-नरेश, युधाजित—सब के विषय में बातें होती थीं पर राम ने अपने अथवा लक्ष्मण के ननिहाल की चर्चा कभी नहीं सुनी। कभी माता कौसल्या अथवा माता सुमित्रा के मायके से यहां कोई नहीं आया—जैसे इन महलों में उनकी चर्चा उनका प्रवेश—सब-कुछ वर्जित हो।

पर किस अनुपयुक्त घड़ी में मां ने अपनी पीड़ा को वाणी दी थी। राम की अपनी पीड़ा गहराती जा रही थी—काश! मां ने ये बातें पहले कही होतीं। काश! विश्वामित्र अयोध्या में न आए होते और राम ने उनको वचन न दिया होता। पर अब क्या हो सकता था। राम संसार में ध्वस्त अत्याचार की झलक पा चुके थे उसके विरुद्ध लड़ने का वचन दे चुके थे। उन असंख्य लोगों की पीड़ा के सामने एक व्यक्ति की निजी पीड़ा क्या अर्थ रखती है। ठीक कहा था विश्वामित्र ने—एक वृहत् सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने के लिए अपने संकीर्ण पारिवारिक स्वार्थों की बलि देनी ही होगी। एक व्यक्ति के सुख के लिए—चाहे वह व्यक्ति स्वयं माता कौसल्या ही हो—समस्त ऋषियों दलित जन जातियों ज्ञान विकास रत लोगों तथा न्याय प्रतीक्षित जनों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। राम का अपने सामाजिक मानवीय दायित्वों को पहले देखना

अतिथियो के लिए सब प्रकार की व्यवस्था का निर्देश देकर भरद्वाज आकर उनके पास बैठ गए।

राम ! मैं ऐसे स्थान पर बैठा हू जहा आर्यावर्त के विभिन्न भागो के सब प्रकार के लोगो का आवागमन लगा रहता है। मेरे पास अधिकाशत ऋषि मुनि तथा तापसगण ही आते हैं राजपुरुषो तथा व्यापारियो के आतिथ्य का अवसर भी कभी कभी मिलता है। किंतु तुम जसे युवराज का अपनी पत्नी और भाई के साथ शुभागमन आज पहली बार ही हुआ है। क्या ऐसा सभव है राम ! कि तुम लोग यही मेरे आश्रम म या मेरे आश्रम के निकट ही अपने वनवास की अवधि व्यतीत कर सको ?

राम बहुत मीठे ढग से मुसकराए यदि ऐसा सभव होता तो उसे हम अपना सौभाग्य समझते ऋषिवर ! किंतु यह स्थान सगम के तट पर होने के कारण अयोध्या से इतना निकट है कि वहा से यहा और यहा से वहा व्यक्ति तथा समाचार इतनी शीघ्रता और सविधा से पहुच सकते हैं कि यह वनवास न होकर वनवास का नाटक मात्र रह जाएगा। अयोध्या से निरतर ऐसा सपर्क बनाए रखना न हमारे लिए श्रेयस्कर है न अयोध्या के लिए।"

ठीक कहते हो राम !" ऋषि चितन मे अर्ध-लीन हो गये तो फिर कहा आश्रम बनाने का निश्चय किया है ?

माता कैकेयी की आज्ञा दडकारण्य म जाने की है। अतत हम वही जाना है किंतु माग मे रुक रुककर ऋषि मुनियो तथा जन साधारण के जीवन से परिचय प्राप्त करते हुए उनकी कठिनाइयो को देखते हुए उनके साथ समय व्यतीत करते तथा उनकी सहायता करते हुए हम आगे बढना चाहेगे। पहला पडाव के लिए आपके निर्देश की अपेक्षा है। वसे मैं चाहता हू कि ऋषि वाल्मीकि के दशन कर हम चित्रकूट के आस-पास मदाकिनी-तट पर तपस्वियों के साथ कुछ समय बिताए।

'तुमने बहुत ठीक सोचा है वत्स ! ऋषि कुछ उदास भी थे और प्रसन्न भी 'तुम्हारी दोनो ही बातें अच्छी हैं। चित्रकूट बहुत सुदर स्थान है। वहा की प्राकृतिक शोभा अदभुत है। मदाकिनी का जल स्वच्छ, निमल

तथा स्वास्थ्यकर है। आस-पास कोई नगर अथवा जनपद न होने के कारण बहुत जन रव नहीं है, अनेक तपस्वियो के आश्रमों के कारण जन शून्यता भी नहीं है। किंतु वत्स ..." ऋषि मौन हो गए।

"किंतु क्या ऋषिवर!" लक्ष्मण ने पहली बार अपना मौन तोड़ा।

सीता मुसकराई—लक्ष्मण की उत्सुकता जाग उठी थी।

"वह स्थान अब बहुत सुरक्षित नहीं समझा जाता।" भरद्वाज बोले "राक्षसों की दृष्टि उस क्षेत्र पर बहुत दिनों से लगी हुई थी। अब क्रमश उनका आतंक बढ़ता जा रहा है। यदा-कदा होने वाले उनके आक्रमण अब नियमित घटनाओं में परिवर्तित होते जा रहे हैं। उस क्षेत्र में बसने वाले आर्य तथा आर्येतर जातियों के टोले पुरवे शनैः शनैः उजड़ते जा रहे हैं। राक्षस नहीं चाहते कि सामान्य जन परिश्रम कर ईमानदारी से अपनी आजीविका कमाए तथा शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करें। वे नहीं चाहते कि तपस्वियों तथा बुद्धिजीवियों का ज्ञान और बल साधारण जनता को मिले, ताकि उनका जीवन सरल हो सके। वे ज्ञान विज्ञान को जन-साधारण से दूर रखना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि विभिन्न जातियां परस्पर एक दूसरे के निकट आए और परस्पर अपने ज्ञान का लाभ बांटें। चित्रकूट में अब अधिकांशतः भीरु तपस्वी बचे हैं जो राक्षसों के किसी अत्याचार का विरोध नहीं करते वहां निर्धन तथा उपायहीन वनवासी बचे हैं, जिनके पास अन्य स्थानों पर जीविका कमाने का कोई संबल नहीं है या वे सुविधाजीवी लोलुप जन बचे हैं जो राक्षसों के सहायक होकर स्वयं राक्षस हो गए हैं।

"प्राय यही स्थिति सिद्धाश्रम प्रदेश की भी थी।" लक्ष्मण धीरे से बोले।

"दुष्ट संचित धन हिंस्र पशु-बल तथा भ्रष्ट राजनीतिक सत्ता की पुंजीभूत कृति, इस राक्षसी प्रवृत्ति को यदि न रोका गया तो वह आश्रमों का क्या, समस्त आर्यावर्त और देवभूमि को भी ग्रस लेगी। पहले तो सुमाली के भाई-बांधव ही राक्षस थे अब अनेक यक्ष गंधर्व किरात तथा आर्य भी राक्षस होते जा रहे हैं। स्वर्ण को अपना सर्वस्व मानने वाला मनुष्य के पशुत्व को उकसाने वाला रावण प्रत्येक दुष्टता को प्रश्रय दे रहा है। वह

समस्त मानवीय मूल्यों का ध्वंस कर रहा है। तांत्रिक अंधविश्वासों तथा अभिचार कृत्यों से वह ज्ञान एवं सत्य का गला घोंट रहा है। मानवता के भविष्य के स्वरूप की अवज्ञा कर, वह किसी भी प्रकार अधिकाधिक भोग-विलास में लगा हुआ है।'

"इसका प्रतिरोध कैसे होगा ऋषिवर?" सीता बोली, "क्या इन दो धनुर्धारी वीरों के द्वारा?"

'नहीं पुत्रि! ऋषि हँसे, प्रतिरोध करेगी जागरूक तथा चैतन्य, भ्रष्ट व्यवस्था के रूप समझने वाली अपने श्रम से आजीविका अर्जित करने वाली जनता। ये दो धनुर्धर तो उसके संकल्प के प्रतीक मात्र हैं। यदि कोई यह समझता है कि दो व्यक्ति विश्व की प्रवृत्तियों को रोक सकते हैं, तो यह भ्रम है। वे प्रभावित कर सकते हैं जन मत तैयार कर सकते हैं मार्ग दिखा सकते हैं नेतृत्व कर सकते हैं। बस राक्षसत्व प्रकृति का अनघड़ और आदिम रूप है प्रत्येक युग उसका अपने ढंग से विरोध करता है। ये धनुर्धर उसका विरोध करने वाले न तो पहले व्यक्ति हैं न अंतिम होंगे। यह संघर्ष तो चिरंतन है कभी तीव्र होता है कभी मंद। कहीं केंद्रित होता है कहीं विकेंद्रित। आज भी प्रयाग से अधिक यह चित्रकूट में है चित्रकूट से अधिक जनस्थान में और जनस्थान से अधिक किष्किंधा में और उससे भी अधिक लंका में।'

राम कुछ विस्मित हुए 'ऋषिश्रेष्ठ! जनस्थान के विषय में मुझे गुरु विश्वामित्र ने बताया था किंतु किष्किंधा और लंका के विषय में मुझे ज्ञात नहीं था। वहाँ कौन रावण का विरोध कर रहा है?

व्यक्ति रावण से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रावण है। ऋषि बोले विरोध उस दुष्ट प्रवृत्ति और भ्रष्ट व्यवस्था का है जिसका अधिनायकत्व रावण कर रहा है। जनस्थान में अगस्त्य और पुत्री लोपामुद्रा उससे जूझ रहे हैं सशस्त्र जन बल तैयार कर। किष्किंधा में वाली का छोटा भाई सुग्रीव उसके सहयोगी हनुमान और जामवंत यहाँ तक कि वाली का तरुण पुत्र अंगद भी, रावण के निरंतर वर्धमान प्रभाव से प्रतिदिन उलझ रहे हैं। किंतु उनकी समस्या और भी विकट है। उनका अधिपति वाली स्वयं राक्षस नहीं है। वह एक प्रकार का पूजापाठी और कर्मकांडी व्यक्ति है, जो

उस धार्मिकता का आवरण प्रदान करता है, किंतु उसमें कुछ दुर्बलताएं हैं। वह स्त्री-लम्पट और कामी है। फिर रावण का मित्र होने के कारण न केवल वह अधिकाधिक सुविधाजीवी होता जा रहा है, तथा प्रजा की उपेक्षा कर रहा है, वरन् रावण के बढ़ते हुए प्रभाव का विरोध भी नहीं कर रहा। सुग्रीव और उसके साथी विकासमान दुष्टता को देख रहे हैं, और भीतर-ही भीतर ऐंठ रहे हैं। और अंत में, स्वयं रावण के अपने घर में विभीषण और उसके मुट्ठी भर साथी हैं। विभीषण रावण का भाई होते हुए भी, उसकी किसी नीति से सहमत नहीं है, किंतु रावण के सम्मुख वह पूर्णतः अशक्त है। राघव! आज राक्षसी शक्तियां संगठित हैं और मानवीय शक्तियां बिखरी हुई हैं। विजय संगठन की होती है। अतः राक्षसी तंत्र का ध्वंस करने का श्रेय भी उसी व्यक्ति को मिलेगा, जो राक्षस विरोधी शक्तियों का संगठन करने में सफल होगा।"

सहसा भरद्वाज अत्यंत भावुक हो उठे, "और मेरी विडंबना यह है राम! कि मैं शरीर से यहां बैठा हूं और आत्मा मेरी लोपामुद्रा और अगस्त्य में बसती है। उन्होंने राक्षस विरोधी इस संघर्ष को चिंतन के धरातल से, कर्म के धरातल पर उतार दिया है। संघर्ष केवल सिद्धांत के धरातल पर होता है, तो प्रवृत्ति का विरोध कर हम व्यक्ति के साथ समझौता कर भी लेते हैं, किंतु संघर्ष के कर्म धरातल पर उतरने के पश्चात् कोई समझौता नहीं होता। समन्वय नहीं होता। सह-अस्तित्व नहीं होता।"

भरद्वाज मौन हो नहीं हुए, किसी और लोक में लीन हो गए। कोई और व्यक्ति भी नहीं बोला। चारों ओर निस्तब्धता छा गयी। सीता ने दृष्टि उठाकर राम को देखा—वे भरद्वाज से कम लीन नहीं थे। इतने लीन वे कभी-कभी ही होते थे और तभी होते थे, जब उनके मन में कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण घटित हो रहा होता था, और उनका निश्चय करने का क्षण होता था। जब कोई विचार कर्म में परिणत हो रहा होता था। और लक्ष्मण! लक्ष्मण के मन में जो कुछ था, वह सब उनके मुख मंडल पर प्रतिबिंबित था। वे उग्र से उग्रतर होते जा रहे थे।

"भैया! हम यहां से कब चलेंगे?" सहसा लक्ष्मण ने पूछा।

अपनी अन्तर्मुखी दृष्टि से क्षण भर राम ने प्रश्नवाचक मुद्रा में लक्ष्मण को देखा और दूसरे ही क्षण वे खिलखिलाकर हंस पड़े, 'ऋषि श्रेष्ठ! आपकी वाणी ने लक्ष्मण के उद्वेग को जगा दिया है। उन्हें न्याय, अन्याय, मानवता और राक्षसत्व की मंथन भूमि में पहुंचने की जल्दी मच रही है। वे अब इस आश्रम में अधिक रुकना नहीं चाहते।'

भरद्वाज मुसकराए, 'मैं तो स्वयं यह कामना कर रहा हूं कि जन-जन में यह उद्वेग जागे। यदि मेरी बातों ने लक्ष्मण के उद्वेग को जगाया है तो मैं धन्य हुआ राम! पर पुत्र सौमित्र! अब संध्या का समय है। इस समय जाना उचित नहीं। आज रात मेरे ही आश्रम में आतिथ्य ग्रहण करो। कल प्रातः प्रस्थान करना। मेरे शिष्य अगले पड़ाव तक तुम्हारे साथ जाएंगे—और तुम्हारे सामानों के परिवहन में तुम्हारी सहायता करेंगे।'

'यही उचित होगा।' राम बोले, 'क्यों वैदेही?'

'स्वामी की क्या इच्छा है?' सीता ने लक्ष्मण की ओर देखा।

'जो ऋषि-श्रेष्ठ का आदेश हो।' लक्ष्मण अपने आक्रोश को दबा गए।

भरद्वाज-शिष्यों के साथ यमुना पार कर चित्रकूट की ओर बढ़ते ही राम के सम्मुख प्रकृति का रूप स्पष्ट हो गया। यह भूमि प्रयाग की भूमि के समान उपजाऊ नहीं थी। कहीं-कहीं वन देखे भी थे, किंतु अधिकांश धरती या तो [illegible] तथा [illegible] पौधों से भरी हुई थी। कहीं धरती में [illegible] पत्थर की [illegible] बिखरी हुई दिखाई देती थी। निश्चित रूप से इनमें [illegible] अधिक मात्रा में विद्यमान था। [illegible] उपजाऊ [illegible] भूमि के बाहर [illegible] प्रयाग की ओर से [illegible] और कहीं भी [illegible] चित्रकूट के [illegible] से हो [illegible] दिखाई थी।

[illegible] भूमि के [illegible] और किसी भी [illegible], दिखाई नहीं दी। [illegible] किंतु यह [illegible] नहीं [illegible]

आवागमन की सुविधा नहीं थी। कदाचित इसी कारण से जनसंख्या विरल ही थी।

पयस्विनी नदी पार करते ही वाल्मीकि आश्रम की सीमा आरंभ हो गयी थी। आश्रम के चिह्न प्रकट होते ही, राम ने अपने पग रोक लिये। उनके पीछे आते हुए लक्ष्मण सीता तथा भरद्वाज शिष्य भी रुक गये। राम ने अपने हाथों के खड्ग, कंधों के धनुष तथा पीठ पर दोनों ओर बंधे हुए भारी भरकम तूणीर उतारकर पृथ्वी पर रख दिए। यह संकेत था कि यहां अधिक देर तक रुकना पड़ सकता है। सबने अपने कंधों, बाहुओं तथा अपने हाथों के शस्त्र भूमि पर रख दिए।

आश्रम की मर्यादा के अनुसार सशस्त्र वे भीतर जा नहीं सकते थे, और शस्त्रों को इस एकांत वन में असुरक्षित छोड़कर स्वयं आश्रम के भीतर चले जाना, उचित नहीं था।

राम ने लक्ष्मण की ओर देखा।

"मैं ऋषि के दर्शन कर अनुमति ले आऊं?"

"यही करना होगा।" राम मुसकराए।

लक्ष्मण शस्त्रहीन हो आश्रम के मुख्यद्वार की ओर बढ़ने ही वाले थे कि चार अपरिचित ब्रह्मचारियों ने उनके सम्मुख आ, हाथ जोड़ सम्मानपूर्वक प्रणाम किया।

राम ने देखा—वेश सबका एक ही था किंतु वर्ण और आकृति का भेद स्पष्ट कह रहा था कि वे ब्रह्मचारी विभिन्न जातियों से संबद्ध थे। दो गौर वर्ण के थे। दो पीताभ वर्णी थे। उनके शरीर पर भूरे रंग के पतले लंबे लोम थे। निश्चित रूप से इस प्रदेश से कुछ अन्य आर्येतर जातियों की आबादी भी आरंभ हो गयी थी। वाल्मीकि आश्रम में जाति मिश्रण है तो अन्य आश्रमों में भी यही स्थिति होगी।

"आर्य! कुलपति ऋषि वाल्मीकि की ओर से हम आपका स्वागत करते हैं। वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

सीता चकित रह गयीं, "ऋषि को हमारे आगमन की सूचना कैसे मिली?"

"देवि! यह तो ऋषि ही बता सकेंगे।"

राम ने अपने तूणीर पीठ पर बांधे, धनुष कंधे पर टांगा, खड्ग हाथ में ले लिए।

ब्रह्मचारी सहायतार्थ आगे बढ़े, किंतु राम ने उन्हें रोक दिया, "मित्र! अभी तुम्हारी सहायता की आवश्यकता नहीं।" वे मुसकराए, "आवश्यकता होने पर तुम्हें कष्ट करना होगा।"

ब्रह्मचारियों ने उनकी अगवानी की। उनके पीछे-पीछे सब लोग ऋषि की कुटिया के द्वार पर आए। राम एक बार फिर असमंजस में पड़ गए, इतने सारे शस्त्रों का वे क्या करें?

तभी कुटिया के भीतर से ऋषि का स्वर सुनाई पड़ा, "राम! भीतर आ जाओ। इन शस्त्रों को भी साथ ले आओ।"

राम ने कुटिया में प्रवेश किया। उनके पीछे सीता तथा लक्ष्मण आए और अंत में भरद्वाज शिष्यों ने प्रवेश किया।

"अपना सामान उस कोने में रख दो, राम!"

सारे शस्त्र कुटिया के कोने में व्यवस्थापूर्वक रख दिए गए। ऋषि ने आंख भरकर शस्त्रों को देखा और मुड़कर पूछा, "कैसे हो पुत्र?"

"आपकी कृपा है ऋषिवर!"

राम ऋषि के सम्मुख पालथी मारकर बैठ गए। उनकी बायीं ओर सीता बैठीं, दायीं ओर लक्ष्मण। दूसरी पंक्ति में भरद्वाज शिष्य बैठ गए।

आश्रम के ब्रह्मचारी बड़े आश्चर्य से उन शस्त्रों को देख रहे थे, जैसे या तो पहले कभी उन्होंने इतने सारे शस्त्र न देखे हों, अथवा राम की इस शस्त्र यात्रा का प्रयोजन उनकी समझ में न आता हो।

राम ने बात आरंभ की, "[illegible] हमारे आने की सूचना कैसे मिली गुरुदेव? हम सब चकित हैं कि आप [illegible] परिवार [illegible] [illegible] किसी [illegible] है और उनका पुत्र [illegible] है। [illegible] कि [illegible] परिवार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।"

[illegible] कि [illegible] राम कि तुमने [illegible] [illegible] का [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। पुत्र! [illegible] [illegible] सुरक्षित नहीं है। [illegible] [illegible]

साधना तो करते हैं, उसके माध्यम से जन सामान्य तक पहुंचते भी हैं उनमें न्याय के पक्ष और अन्याय के विरोध का प्रचार भी करते हैं, किंतु जब कभी आत्मरक्षा की आवश्यकता पड़ती है तब हम अपने शस्त्रधारी शत्रुओं का विरोध नहीं कर पाते और अपनी कला के साथ नष्ट हो जाते हैं। क्या यह उचित नहीं कि हम अपनी कला के साथ-साथ शस्त्र भी धारण करें '

सीता को लगा मुखर के चेहरे का आवेश असाधारण था। बोली 'ऋषिवर ! इस ब्रह्मचारी का प्रश्न मात्र सैद्धांतिक विवाद नहीं है। वह भावनात्मक और भावनात्मक धरातल पर भी इन प्रश्नों में उलझा हुआ है। यह उसके मस्तिष्क का ही विवाद नहीं उसके हृदय की उलझन भी है।

ऋषि उल्लसित हो उठे, तुमने ठीक पहचाना पुत्रि ! मुखर के चिंतन की पृष्ठभूमि में उसके अपने जीवन की घटनाएं हैं। यह बालक सुदूर दक्षिण से मेरे पास आया है। इसके पिता बहुत अच्छे कवि तथा संगीतज्ञ थे। खर के राक्षस सैनिकों ने इनके कुटुंब को नष्ट कर डाला।'

'सुदूर दक्षिण से यहां तक के बीच अनेक आश्रम पड़ते होंगे, मुखर उन सब को छोड़कर इतनी दूर क्यों चला आया ? ' लक्ष्मण ने ऋषि की बात के बीच में ही पूछा।

"संगीतकार पिता का प्रभाव। वह कला की साधना से शून्य किसी आश्रम में नहीं टिक सका। किंतु कुटुंबियों के वध को भी मुखर भुला नहीं पाता। यह प्रतिक्षण शस्त्र के आकर्षण का अनुभव करता है। तुम्हारे शस्त्रों से भी यह अभिभूत हो उठा है, और शस्त्र विद्या तथा शस्त्र प्रशिक्षण की बात सोच रहा है।

किंतु यह बालक कहीं बहुत गलत भी नहीं सोचता गुरुवर ! ' सीता बोली, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कला का साधक शस्त्र की साधना भी करे ! आपके इस आश्रम में काव्य और संगीत के साथ थोड़ा-सा समय शस्त्र विद्या को क्या नहीं दिया जा सकता !'

मैं तुम्हारी बात का विरोध नहीं करता पुत्रि !' वाल्मीकि बोले, "किंतु यदि ऐसा हो सकता, तो कदाचित हम प्रत्येक कलाकार को पूर्ण

है। इस लक्ष्य तक पहुचने के लिए अनेक माग है पुत्र ! एक माग वह है जो तुम लोगो ने चुना है—शस्त्रो से अ यायो का दमन। और एक माग वह है जो मैंने चुना है—कला की साधना। काव्य और सगीत की साधना, ताकि शब्द की शक्ति से लोगो के मन म अ याय का विरोध जगाया जा सके। न्याय का पक्ष समभाया जा सके। यदि प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे समान अ याय का सशस्त्र विरोध करेगा और कोई भी व्यक्ति मेरे समान शब्द शक्ति स न्याय और अन्याय का भद उचित और अनुचित का अतर नही बताएगा तो अ याय का विरोध धीरे धीरे शस्त्र शक्ति के कारण केवल विरोध म बदल जाएगा। इसीलिए यह आवश्यक है पुत्र ! कि हम जन सामान्य को उसके अधिकारो क प्रति सचेत बनाए उस उसके शत्रु शोषक वग की पहचान कराए उस मानवता के उच्चादर्शों का ज्ञान दें और साथ ही-साथ उनम अन्याय के विरोध की भावना जाग्रत करें, ताकि जब कभी वे विरोध करें वह मात्र विरोध न होकर अन्याय और शोषण का विरोध हो। वे यह जान कि कहा उ ह शक्ति शस्त्र और हिंसा का प्रयोग करना है कहा उनका प्रयोग अनुचित है। हम उ ह समभाना पडेगा पुत्र ! कि दस्यु और सनिक म क्या भेद है। निस्वाथ होकर जन कल्याण क लिए शस्त्र का प्रयोग करने वाला वीर सनिक है, अ यथा वह दस्यु है। इसीलिए मैंने कला के माध्यम का आश्रय लिया है।

राम ने देखा—मुखर बडी त मयता स गुरु की बात सुन रहा था, किंतु उसकी भगिमा कह रही थी कि वह उस बात स सहमत नही है। अपने सकोच को बडी चष्टा से भग कर वह बोला गुरुवर ! एक शका मुझे भी है।

बोलो वत्स ! ऋषि मुसकराए एक साहसी प्रश्न अनेक दमित सकुचित जिज्ञासाओ को उठाकर उनके परो पर खडा कर देता है। लक्ष्मण के प्रश्न ने तुम्हारे साथ यही किया है। मैं जानता हू तुम्हारी इस विषय मे पर्याप्त रुचि है, और जब कभी ऐसा विवाद उठ खडा होता है तुम्हारे मन म भी उथल पुथल मच जाती है। पूछो !

मुखर ने अपनी त मयता को समेटा अपनी शक्तियो म सामजस्य स्थापित किया और बोला, गुरुवर ! मुझ ऐसा लगता है कि हम कला की

साधना तो करते हैं, उसके माध्यम से जन सामान्य तक पहुंचते भी हैं उनमें न्याय के पक्ष और अन्याय के विरोध का प्रचार भी करते हैं किंतु जब कभी आत्मरक्षा की आवश्यकता पड़ती है तब हम अपने शस्त्रधारी शत्रुओं का विरोध नहीं कर पाते और अपनी कला के साथ नष्ट हो जाते हैं। क्या यह उचित नहीं कि हम अपनी कला के साथ-साथ शस्त्र भी धारण करें '

सीता को लगा, मुखर के चेहरे का आवेश असाधारण था। बोली, ऋषिवर ! इस ब्रह्मचारी का प्रश्न मात्र सैद्धांतिक विवाद नहीं है। यह संवेदनात्मक और भावनात्मक धरातल पर भी इन प्रश्नों में उलझा हुआ है। यह उनके मस्तिष्क का ही विवाद नहीं उसके हृदय की उलझन भी है।'

ऋषि उल्लसित हो उठे 'तुमने ठीक पहचाना, पुत्रि ! मुखर के चिंतन की पृष्ठभूमि में उसके अपने जीवन की घटनाएं हैं। यह बालक सुदूर दक्षिण से मेरे पास आया है। इसके पिता बहुत अच्छे कवि तथा संगीतज्ञ थे। खर के राक्षस सैनिकों ने इनके कुटुंब को नष्ट कर डाला।'

सुदूर दक्षिण से यहां तक के बीच अनेक आश्रम पड़ते होंगे मुखर उन सब को छोड़कर इतनी दूर क्यों चला आया ? ' लक्ष्मण ने ऋषि की बात के बीच में ही पूछा।

संगीतकार पिता का प्रभाव। वह कला की साधना से शून्य किसी आश्रम में नहीं टिक सका। किंतु कुटुंबियों के वध को भी मुखर भुला नहीं पाता। यह प्रतिक्षण शस्त्र के आकर्षण का अनुभव करता है। तुम्हारे शस्त्रों से भी यह अभिभूत हो उठा है और शस्त्र विद्या तथा शस्त्र प्रशिक्षण की बात सोच रहा है।

किंतु यह बालक कहीं बहुत गलत भी नहीं सोचता गुरुवर ! सीता बोली, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कला का साधक शस्त्र की साधना भी करे ! आपके इस आश्रम में काव्य और संगीत के साथ थोड़ा-सा समय शस्त्र विद्या को क्या नहीं दिया जा सकता !"

' मैं तुम्हारी बात का विरोध नहीं करता, पुत्रि ! वाल्मीकि बोले, "किंतु यदि ऐसा हो सकता, तो कदाचित हम प्रत्येक कलाकार को पूर्ण

मानव बना सकत। जो सच्चे कलाकार न्याय-अन्याय कर्तव्य-अकर्तव्य तथा अपने सामाजिक दायित्व को समझ सकें और उन्हें कार्यान्वित कर सकें—ऐसे कलाकार दुर्लभ ही नहीं अलभ्य भी हैं वदेही! कला की साधना बड़ी ईर्ष्यालु है। वह कलाकार को अन्य किसी भी दिशा में ताकने का अवकाश नहीं देती। कलाकार क्रमशः अपनी साधना में इतना डूबता चला जाता है कि वह अन्य प्रत्येक क्षेत्र की उपेक्षा कर देता है। संभवतः मेरे भीतर का कलाकार भी मेरे व्यक्तित्व को पूर्ण नहीं बनने देता वह स्वयं अपने आपको ही पूर्ण बनाना चाहता है। न मैं शस्त्र विद्या का अभ्यास कर पाया न अपने शिष्यों को करा पाया। परंतु मैं इसका विरोधी नहीं हूं। संभव है। आन पर इस आश्रम में शस्त्राभ्यास भी कराया जाएगा।

राम की दृष्टि मुखर के चेहरे पर जमी हुई थी। मुखर ने अपने कुलपति का स्पष्टीकरण सुना किंतु उसके चेहरे पर अंकित विरोध अभी मिटा नहीं था।

राम बोले तो उनका स्वर अत्यंत स्नेहिल था मुझे लगता है बंधु! कि तुम्हारे कुटुंब के साथ हुए अत्याचार ने तुम्हारे मन पर अमिट छाप छोड़ी है। वह छाप तुम्हारे मन में निरंतर घृणा उपजाती है, और वह घृणा तुम्हें शांत नहीं होने देती।'

मन की बात को प्रकट होते देख मुखर झेंपा 'आपने ठीक समझा आर्य! लज्जित हूं मेरे मन में घृणा का भाव आज भी जमा हुआ है। बहुत चाहने पर भी मैं अपने मन में सात्विक भावों को प्रतिष्ठित नहीं कर सका।'

सीता मुसकराईं 'तुम ऐसा क्यों समझते हो मुखर! कि यह घृणा सात्विक नहीं है।

देवि! हम घृणा को सात्विक कैसे कह सकते हैं?'

आश्रम की शांति की कुछ उपेक्षा करता सा लक्ष्मण का किंचित उच्च स्वर गूंजा अन्याय के विरुद्ध मन में जो घृणा उपजे वह काव्यशास्त्र में चाहे सात्विक भाव न हो ब्रह्मचारी! किंतु ऐसी घृणा पूज्य है पवित्र है अलौकिक है। उसे तो कण-कण संचित करना चाहिए। यदि संसार में ऐसी घृणा न रहे तो अत्याचार से कौन लड़ेगा? इस घृणा के कारण तुम अपने

आपको विशिष्ट जन मान सकते हो। लज्जित होना, मात्र अज्ञान है।'

आर्य लक्ष्मण!" मुखर अपने कोमल स्वर में बोला, "आज हमारे परिवेश में रोज ही कोई-न-कोई अत्याचार होता है प्रतिदिन मानवता की हत्या होती है। यह सारा ऋषि समुदाय ब्रह्मचारी समाज, आचार्य और मुनि—सब देखते और सुनते हैं। वे लोग अत्याचार के समर्थक नहीं हैं किंतु उनमें से किसी के भी मन में वैसी तीव्र घृणा नहीं है जैसी मेरे मन में है। यही मुझे सोचने को बाध्य करता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरी प्रकृति ही अधम है, और शेष लोगों की सात्विक प्रकृति के कारण उनके मन में घृणा न उपजती हो।"

लक्ष्मण उत्तर में कुछ कहने को उत्सुक थे किंतु राम ने बात का सूत्र पकड़ा, "बंधुवर मुखर! अन्य ऋषि मुनि, ब्रह्मचारी आचार्य इत्यादि क्या सोचते हैं मैं नहीं जानता। पर मेरा विचार है कि परिवेश में होने वाले अत्याचारों को केवल सुनकर उनकी सूचना प्राप्त कर सामान्य व्यक्ति के मन में असहमति ही जन्म सकती है उसके विरुद्ध तीव्र ज्वलंत उग्र विरोध उत्पन्न नहीं होता। हम सूचनात्मक धरातल पर ही उससे जुड़ते हैं भावनात्मक धरातल पर उससे हमारा कोई संबंध नहीं होता। इसलिए तुम इस प्रकार सोचो कि दुर्भाग्य या सौभाग्य से वह अत्याचार तुम्हारे अपने सगे बंधु बांधवों के साथ हुआ। तुम निजी रूप से उस अत्याचार से पीड़ित हुए। इस प्रक्रिया ने तुम्हारे मन को इतना निर्मल तथा संवेदनशील बना दिया है कि तुम्हारे मन में भावनात्मक धरातल पर उस अत्याचार के विरुद्ध घृणा जन्म लेती है। शेष लोगों को ऐसा अवसर नहीं मिला। वस्तुतः कोई समुदाय निजी रूप से पीड़ित होकर अन्याय के विरुद्ध कम उठता है व्यक्ति ही उसका अनुभव अधिक करता है। समुदाय व्यक्तियों का अनुसरण करता है। संभव है इस व्यक्तिगत निजी लिप्ति के कारण ही तुम अत्याचार के विरुद्ध अपने आस पास के समुदाय का नेतृत्व कर सको।"

"साधु, राम!" वाल्मीकि बोले "तुम मुखर की आत्मग्लानि को दूर कर सकोगे। मैंने भी इसे यथाशक्ति समझाया था। पर, कदाचित मैंने इस रूप में सोचा ही नहीं। यह भी प्रकृति का एक द्वंद्व ही है पुत्र! अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति सबसे अधिक दुःखी भी होता है पर वही दुःख उस अत्याचार

के विरुद्ध लड़ने की शक्ति भी देता है। अतः अत्याचार का नाश करने के लिए उसका ग्रास बनना भी आवश्यक है। जो जितना अधिक पीड़ित और शोषित होगा, उसके मन में अत्याचार और शोषण के विरुद्ध उतनी ही उग्र ज्वलित अग्नि धधक उठेगी और वह न्याय का भी उतना ही बड़ा समर्थक होगा। इसे प्रकृति का द्वंद्व न कहूं तो क्या कहूं—जो व्यक्ति जितना बड़ा अत्याचारी और शोषक है, वह जन सामान्य में न्याय के लिए उतनी ही उद्दाम आग जला देता है।

ऋषि मौन हो गए। कुटिया में स्तब्धता छा गयी। सब अपने-अपने मन की किन्हीं तहों में खोए थे। बोल कोई भी नहीं रहा था।

संध्या के भोजन के लिए राम, सीता, लक्ष्मण तथा उनके साथी भरद्वाज शिष्यों को कुटिया से बाहर आना पड़ा। ऋतु अनुकूल होने के कारण भोजन की व्यवस्था खुले में की गयी थी। सारे शिष्य पंक्तिबद्ध बैठे थे। विभिन्न जातियों के ब्रह्मचारियों, आचार्यों तथा कुलपति में कहीं कोई भेद नहीं था। भोजन सामग्री के रूप में ब्रह्मचारियों ने वन्य फल तथा कंद मूल परोस दिए थे।

"ऋषिवर!" राम ने कुलपति को संबोधित किया, "आपके शिष्य अधिकांशतः कला की एकांत साधना में लगे रहते हैं, वे जीविका उपार्जन के लिए अन्य कोई कार्य करने का तो समय नहीं पाते होंगे?"

"तुम्हारा अनुमान ठीक है, राम!" वाल्मीकि बोले, "यह हमारी एक बड़ी कठिनाई है।"

"आप किसी राज्य से अनुदान की इच्छा नहीं रखते?"

"राज्य का अनुदान!" वाल्मीकि गहरी चिंता में पड़ गए, "अनेक बार सोचा है राम! पर राजाश्रय कलाकार की कला का काल है पुत्र! राज्य के अनुदान का आरंभ में कदाचित् कोई विशेष लक्ष्य नहीं होता। वह कला को संरक्षण देता है, किंतु जब उसके संरक्षण में पल कर कला शक्ति अर्जित कर लेती है, तो संरक्षक राज्य उस शक्ति का उपयोग अपने पक्ष में करना चाहता है, जो कला के लिए काम्य नहीं है। राजाश्रय में पलकर किसी राज्य का अनुदान लेकर कलाकार को उस आश्रय तथा अनुदानदाता का

ध्यान कला से भी अधिक रखना पड़ता है। पुत्र! अन्याय वहीं होता है, जहां सत्ता और धन होता है। कला का मूल धर्म अन्याय का विरोध है। कला जब सत्ता और धन के आश्रय में चली जाती है तो अपने मूल धर्म से च्युत हो जाती है।'

'अर्थ यह है कि" राम मुसकराए "जिसके आश्रय में कला पनप सकती है वह उसी का विरोध करती है। राज्य कला को आश्रय देता है, तो वह उसके साथ ही अपने काल का भी आह्वान करता है।'

'हां, पुत्र!' वाल्मीकि बोले, 'कलाकार विद्रोही होता है और शासन विद्रोह नहीं चाहता। कलाकार और शासन सहमत हों तो कलाकार को ईमानदार न समझो। शासन द्वारा पूजे जाने वाले कलाकारों में वास्तविक कलाकार विरले ही होते हैं अधिकांश भांड मात्र होते हैं। इसीलिए मैंने अपने आश्रमवासियों तथा कला को किसी राज्य से जोड़ने किसी शासन अथवा सत्ता से प्रथित करने का प्रयत्न नहीं किया। मैंने सदा चाहा है कि कला अपने बल पर विकसित हो अपने पैरों पर खड़ी हो यथासंभव आर्थिक रूप में भी स्वावलंबी हो। यदि ऐसा न हो सके तो किसी राज्य से अनुदान लेने के स्थान पर वह जनता में अपनी जड़ें फैलाए। जन-सामान्य से अपने लिए प्राण-शक्ति अर्जित करे।"

'इसमें कोई कठिनाई नहीं है क्या?" सीता ने पूछा।

पहले तो दिखाई नहीं पड़ी थी किंतु अब उस ओर से भी क्रमश चिंताएं ही घरती जा रही हैं।'

"कैसी चिंताएं?" लक्ष्मण उत्सुक जिज्ञासा से उनकी ओर देख रहे थे।

वाल्मीकि थोड़ी देर मौन रहे फिर बोले 'पुत्र! अभी उनका अग्रिम आभास पा रहा हूं। जन सामान्य में अपनी जड़ें फैलाने का परिणाम यह है कि हम उनसे आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है। जब कलाकार, जनता की मांग के बिना उसके सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन करता है और उस प्रदर्शन का पारिश्रमिक चाहता है तो जन-सामान्य उसे कलाकार न मानकर भिखारी मान बैठता है, और भीख के रूप में कला का मूल्य नहीं दिया जा सकता। धीरे धीरे कलाकार निर्धन होता जाता है और इस

निधनता और आर्थिक पराश्रितता के कारण जनता उसकी कला का मूल्य और भी कम आंकती है। कलाकार का सामाजिक स्तर गिरता जाता है। जो समाज धन से व्यक्ति का मूल्य आंकता है, उसमें कलाकार निधन ही नहीं, अत्यज, अस्पृश्य और शूद्र मान लिया जाता है। कला से आजीविका कमाने वाली अनेक पूरी की पूरी जातियां इसी प्रकार हीन घोषित कर दी गई है। यह चिंता मेरी आत्मा को घुन के समान खा रही है राम ? कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं समाज के श्रेष्ठ युवकों को कला का शस्त्र देकर अपने से बलवान, अपने से अच्छा मनुष्य बनाने के स्थान पर उन्हें सामाजिक दृष्टि से भिखारी अथवा अत्यज बना रहा हूं। ऐसा तो नहीं है कि मुझसे काव्य और संगीत की शिक्षा पाकर मेरे ये शिष्य समाज के लिए अधिक उपयोगी नागरिक बनने के स्थान पर गली-गली काव्य और संगीत का रस लुटाते हुए हथेली फैलाकर गृहस्थों से भिक्षा मांगते फिरेंगे और उनकी दृष्टि में कलाकार के स्थान पर घृणित जीव होकर रह जाएंगे। जब इनके लिए इस भविष्य की कल्पना करता हूं तो मुझे कला से, सामाजिक व्यवस्था से और कहीं अपने आपसे भी वितृष्णा होने लगती है।'

'क्या ऐसी कोई शासन-पद्धति नहीं, ऐसा कोई राज्य नहीं, कला जिसका समर्थन करे और उस समर्थन के कारण राजाश्रय उसके लिए भय का कारण न रहे ?'

कला सदा वामा होती है राम ! वाल्मीकि ! इसे गंतव्य प्राप्त होते ही गंतव्य नहीं रहता—वह आगे खिसक जाता है। कला अद्भुत महत्त्वाकांक्षिणी है। ऐसी कोई व्यवस्था नहीं, जिसमें कलाकार कोई त्रुटि न देख पाए।"

तो इसका समाधान क्या हो आर्य ?' लक्ष्मण अधीर हो उठे।

समाधान ही तो अभी मैं खोज नहीं पाया, पुत्र ! कला और राज्य के इस द्वंद्व में फंसा कलाकार कभी अपना धर्म नहीं निभा पाता, कभी अपने सम्मान की रक्षा नहीं कर पाता। मैं नहीं जानता कि अधिक घृण्य कौन है—वह कलाकार, जो राजाश्रय या आर्थिक दृष्टि से अपने सम्मान की रक्षा कर कला के साथ धोखा और बेईमानी करता है, अथवा कला के प्रति

ईमानदारी का व्यवहार करने वाला राजाश्रय का ठुकराने वाला कलाकार जो आर्थिक दृष्टि से पराश्रित होकर अपने परिवार को भूखा मारता है, और स्वयं अपनी तथा अपनी संतान की दृष्टि में घृणा और उपहास का पात्र बन जाता है।

'इस द्वंद्व का अंत कब होगा, ऋषिवर?' सीता ने पूछा।

'कला को आजीविका का साधन न बनाया जाए तो यह द्वंद्व है ही नहीं, और आजीविका का साधन बनी रही तो कदाचित यह द्वंद्व कभी समाप्त नहीं होगा। कलाकार वही धन्य है जो कला से कुछ मांगता नहीं—न धन, न यश, वरन् उसके लिए स्वयं को खपा देता है।'

ऋषि अत्यंत उदास थे।

५

प्रात भरद्वाज शिष्य अपने आश्रम लौट गए।

एक एक धनुष तूणीर तथा खड्ग साथ ले शेष शस्त्रों की सुरक्षा का समुचित प्रबंध कर राम लक्ष्मण और सीता अपने आश्रम के लिए स्थान चुनने निकले। स्वयं वाल्मीकि अपने कुछ शिष्यों को ले उनके साथ साथ मंदाकिनी के किनारे किनारे घूमे। मंदाकिनी की गति अपने नाम के अनुरूप इतनी मंथर थी कि कहना कठिन था कि उसमें प्रवाह था भी या नहीं। पानी की गहराई भी अधिक नहीं थी। बिना घाट के भी किसी भी स्थान पर जल भरने अथवा स्नान करने में कोई जोखिम नहीं था। मन्दाकिनी के दोनों ओर ऊंचे कगार थे किंतु पर्वत की चोटियों की ऊंचाई अधिक नहीं थी। पर्वत पथरीला भी नहीं था। ऊंचे-नीचे मिट्टी के ढूह जैसे अनेक टीले थे। आस-पास घने वन थे।

राम ने मंदाकिनी पयस्विनी और गायत्री के संगम से थोड़ा इधर कगार से हटकर एक दीर्घ वृत्ताकार टीले को आश्रम के लिए पसंद किया। स्थान चुन लिये जाने पर कुटिया निर्माण का वास्तविक कार्य आरंभ होना था जिसका दायित्व लक्ष्मण पर था।

वाल्मीकि कुछ शिष्यों को पीछे छोड़ स्वयं लौट गए। उन्हीं शिष्यों के नेतृत्व में राम लक्ष्मण और सीता वन के भीतर गए। और तब लक्ष्मण ने नियंत्रण संभाल लिया। उन्होंने अपनी आवश्यकता बताई और लकड़ी के

लिए स्वय देखभाल कर वृक्ष चुने।

कटाई आरभ हुई।

सीता क हाथ मे एक कुल्हाडी देकर राम ने भी एक कुल्हाडी उठा ली। वाल्मीकि शिष्यो के चेहरो पर हतप्रभता विरोध और सकोच प्रकट हुए।

राम हस पडे "मित्रो! वनवासी का जीवन बिताना है, तो वनवासी के ही समान काम भी करना पडेगा।"

किंतु आय देवी वैदेही।

व भी वनवासिनी हैं। वैस भी परिश्रम शरीर और मन को स्वस्थ और सतुलित रखता है।'

लक्ष्मण इस बीच कुछ नही बोले। वे जानत थ राम एक नवीन जीवन पद्धति की ओर बढ रहे थे। उन्हे रोकना व्यर्थ था—रोकन की आवश्यकता भी क्या थी। वैसे भी लक्ष्मण के मन मे अनेक प्रश्न तथा उनके समाधान के लिए अनेक योजनाए उथल-पुथल मचा रही थी। आश्रम कैसा होगा? एक कुटिया भया और भाभी क लिए। एक कुटिया स्वय लक्ष्मण के लिए। दोनो कुटीरों क बीच एक शस्त्रागार। शस्त्रागार के दो द्वार जो दोना कुटीरो म खुलत हो। एक कुटिया अग्निशाला के रूप म। एक कुटिया रसोई के लिए। एक कुटिया अकस्मात आ जाने वाले किसी अतिथि के लिए। बीच म एक खुला क्षेत्र, जहा वे इच्छुक वनवासियों को शस्त्राभ्यास करा सकें। थोडी-थोडी भूमि प्रत्यक कुटिया के पास शाक भाजी तथा फूलों की क्यारियो के लिए

आश्रम के चारो ओर बाड की भी आवश्यकता थी—जगली पशुओ और शत्रुओ से सावधान रहन के लिए। फिर उनक पास शस्त्र थे जिनक कारण व सुरक्षित थे, किंतु शस्त्रो के कारण ही उनके लिए जोखिम भी बढ गया था। शस्त्रो को छीनने अथवा उन्हे नष्ट करने के लिए भी उन पर आक्रमण हो सकता था।

इस सारी योजना को कार्यान्वित करन क लिए बहुत सारी लकडी चाहिए थी। उतनी लकडी एक ही दिन म नही काटी जा सकती थी, और फिर केवल लकडी ही नही काटनी थी। सध्या तक दो कुटीर अवश्य तैयार

हो जाने चाहिए थे। तब राम, वे धीरे धीरे लकड़ी काटकर करते रहेंगे।

पेड़ों पर ठकाठक कुल्हाड़ियां चल रही थीं।

सीता थककर दम लेने के लिए एक ओर बैठ पसीना सुखा रही थी। ब्रह्मचारियों का विश्वास था कि योद्धा होने पर भी राम श्रमिक नहीं थे। अत थोड़ी देर में वे भी थक जाएंगे। किंतु राम के चेहरे पर अथवा कुल्हाड़ी के आघात की प्रबलता में थकावट का कोई लक्षण नहीं था। शस्त्र परिचालन के अभ्यास में किया गया श्रम सहज ही उन्हें कुल्हाड़ी चलाने का बल भी दे रहा था। साधारणत कोमल सा लगने वाला राम का शरीर श्रम की प्रगति के साथ साथ फूलता जा रहा था। उनकी पेशियां दृढ़तापूर्वक अपना आकार प्रकट कर रही थीं तथा क्रमश उनके प्रहार सधे हुए और सहज होते जा रहे थे।

लक्ष्मण का मन अपनी निर्माण योजनाओं में तथा आखें कटकर आयी सामने पड़ी लकड़ी पर थी। वे अपनी आवश्यकतानुसार उन्हें चीर फाड़ रहे थे, अलग अलग नाप और गणना के अनुसार उनका वर्गीकरण कर रहे थे।

सहसा लक्ष्मण का ध्यान अनजाने ही चरते हुए निकट आ गए हरिणों के झुंड की ओर चला गया। वे वन्य मृग थे। किसी आश्रम के साथ उनका संबंध नहीं लगता था नहीं तो इस घन वन में वे नहीं आते। उनके आगे आगे एक आकर्षक काला हरिण था लक्ष्मण का ध्यान आया, दोपहर के भोजन का प्रबंध भी अभी करना था। उनके अभ्यस्त हाथों ने धनुष पर बाण चढ़ाया और छोड़ दिया।

झुंड के भागने तथा काले हरिण के गिरने के कोलाहल से शेष लोगों का ध्यान उस ओर गया। लक्ष्मण को उस ओर बढ़ते देख ब्रह्मचारी भी हरिण के पास चले गए।

साधु देवर!" सीता बोलीं तुम साथ आए हो इसकी उपयोगिता तो आज मालूम हो रही है। आवास का प्रबंध करते-करते तुमने भोजन का प्रबंध भी कर दिया।'

'भाभी !" लक्ष्मण हंसे भोजन के संदर्भ में अपनी सीमा यहीं तक है। अब आगे का काम आप संभाल लें। दो व्यक्ति सहायतार्थ साथ ले लें और जब तक हम लोग लकड़ियों का काम निबटाते हैं तब तक आप इसे भून लें।'

'अपने भैया का ध्यान रखना' सीता मुसकराइं 'कहीं मुझ पर यह आरोप न लगे कि मैं जान-बूझकर, लकड़ी काटने का कठिन काम छोड़, हरिण भूनने का सरल काम लेकर बैठ गयी हूं।'

अरे नहीं भाभी!' लक्ष्मण बोले, और कौन इतना अच्छा भोजन पकाएगा। कृपया आप वही काम संभालें। आज के अभियान का नायक मैं हूं। काम विभाजन मैं ही करूंगा।"

'नायक!' मुखर अपनी पंक्ति से आगे बढ़ आया, देवी वैदेही की सहायता के लिए मैं स्वयं को प्रस्तुत करता हूं। इस काम का कुछ अनुभव मुझे भी है।"

ठीक है, मुखर!' लक्ष्मण बोले 'अपने किसी मित्र को साथ ले लो।'

सीता के निर्देशानुसार, मुखर चेतन के साथ मिलकर हरिण को वहां से हटा, सुविधाजनक स्थान पर उठा ले गया। वहां उन्होंने उसका चर्म उतारा, उसके खंड किए, और लकड़ियों को व्यवस्थित कर, आग जलाई।

सीता बताती गयीं और मुखर तथा चेतन उन मांस खंडों के विभिन्न कोणों और पक्षों को आग पर रखते और उलटते-पलटते गए। आवश्यकतानुसार कभी-कभी सीता स्वयं भी उन खंडों का निरीक्षण कर कोण परिवर्तित कर देतीं।

देवी वैदेही!" सहसा बीच में मुखर बोला, सौमित्र ने जिस प्रकार इतनी दूर से एक ही बाण से इतने बड़े हरिण को मार गिराया, क्या वैसे ही वे राक्षसों को भी मार सकते हैं?"

सीता ने मुसकराकर मुखर को देखा। वह लक्ष्मण की बाण विद्या से बहुत चमत्कृत लग रहा था।

'सौमित्र इससे भी अधिक दूर से एक नहीं, अनेक उत्पाती राक्षसों

को मार सकते हैं। सीता बोली।

कितना अच्छा होता यदि मेरे पिता ने भी यह विद्या सीखी होती।' मुखर अपने अतीत में डूब गया "तब मेरे सारे कुटुंब की राक्षसों के हाथों इस प्रकार निरीह हत्या न होती।" उसने रुककर क्षणभर सीता को देखा "दीदी! कहीं..."'

तुम मुझे दीदी कहो मुखर!' सीता के स्वर में ममता थी।

दीदी!' मुखर की आँखें चमक उठीं "मेरे पिता कहा करते थे कि उनकी लेखनी किसी शस्त्र से कम नहीं। गुरुदेव वाल्मीकि भी प्रायः यही कहते हैं। मुझे लगता है कि इसमें कहीं कोई भूल है। लेखनी किसी की प्रेरित कर शस्त्र उठवा सकती है यह ठीक है। केन्द्र में रह, लेखनी शस्त्रों द्वारा संरक्षित रह सकती है यह भी ठीक है, किंतु लेखनी अपने-आप में शस्त्रों की स्थानापन्न नहीं हो सकती"

अपनी बात का प्रभाव जानने के लिए मुखर रुककर सीता की ओर देखने लगा।

मुझे ऐसा लगता है मुखर!' सीता बोली "तुम अधिकांशतः लेखनी वालों के संसार में रहे हो मैं शस्त्र वालों के संसार में। मैं अपने अनुभव से नहीं केवल कल्पना के आधार पर उनके परस्पर संबंध पर विचार कर सकती हूं।'

'मैंने सुना है दीदी..." चेतन कहते कहते रुक गया। कदाचित वह समझ नहीं पा रहा था कि इस संबोधन की अनुमति उसे भी है अथवा नहीं।

हां! कहो कहो।" सीता ने उसे प्रोत्साहित किया।

मैंने सुना है दीदी! राम लक्ष्मण से भी बहुत अच्छे अधिक शक्तिशाली तथा कुशल धनुर्धर हैं, और उन्होंने बहुत पहले अनेक राक्षसों का वध भी किया था।"

तुमने ठीक सुना है चेतन!' माता मुसकराई, 'राम के न्याय, शक्ति और कौशल को शब्दों में बांधना कठिन है।

क्या राम अपनी यह विद्या दूसरों को भी सिखाएंगे?' चेतन का स्वर बहुत भारी था।

क्यों नहीं ! यदि सुपात्र मिला तो अवश्य सिखाएंगे।"

चन्दन आग में भुनते हुए मास-खंड को परखने लगा। मुखर की आँखें क्षितिज पर टिक गयी। वह कुछ भी देख नहीं रहा था। वह सोच रहा था। उसके चिंतन के साथ साथ, आँखों का शून्य भाव, क्षीण ज्योति में बदलता जा रहा था।

भोजन के पश्चात काटी गई लकड़ियां को लेकर वे लोग नये आश्रम के लिए चुन गए स्थान पर आ गए। अब शक्ति और श्रम के स्थान पर कौशल की आवश्यकता थी। प्रत्येक व्यक्ति निरंतर काम करता दिखाई पड़ रहा था किंतु लक्ष्मण सबसे अधिक व्यस्त थे। निर्माण-कार्य बड़ी शीघ्रता से हो रहा था। सूर्य से जैसे होड़ लगी हुई थी। अंततः लक्ष्मण सफल हुए। जिस समय तीन कुटीर बन तैयार हुए सूर्यास्त में अभी समय था।

एक बार फिर से वाल्मीकि आश्रम की ओर यात्रा आरंभ हुई। अत्यंत सावधानी से सारा शस्त्रागार नये आश्रम में स्थानांतरित किया गया और राम सीता तथा लक्ष्मण ने अपने आश्रम में प्रवेश किया। बड़े कुटीर में राम तथा सीता का स्थान था छोटा कुटीर लक्ष्मण के लिए था, और उन दोनों को मिलाने वाला मध्य कुटीर शस्त्रागार था। मध्य कुटीर में बाहर की ओर खुलने वाला न तो कोई द्वार था न गवाक्ष। उसमें से एक-एक लघु द्वार राम-सीता तथा लक्ष्मण वाले कुटीरों में खुलता था।

व्यवस्था पूर्ण होने पर वाल्मीकि शिष्य अपने आश्रम की ओर लौट गए। उन्हें सूर्यास्त से पूर्व अपने आश्रम में पहुंचना था। उस दल के पीछे पीछे सबसे धीमी गति से चलने वाला व्यक्ति मुखर था।

रात को लक्ष्मण सोने के लिए अपनी कुटिया में चले गए, तो राम ने सीता की ओर परीक्षक दृष्टि से देखा, "क्या प्रतिक्रिया है सीता का आज तक की घटनाओं के विषय में ?"

अयोध्या से बाहर न यह पहला दिन था न पहली रात। किंतु अब तक वे लोग चलते रहे थे। प्रत्येक दिन पिछले दिन से भिन्न था, और

प्रत्यक रात पिछली रात स। कोई असुविधा अधिक नही खटकती थी क्योंकि अगला दिन उसी प्रकार कटने वाला नही था। आज म उनक जीवन म एक विराम आया था। और एक सीमा तक स्थायित्व भी। वनवास की सारी अवधि उन्ह चित्रकूट में व्यतीत नहीं करनी थी, किंतु सभव है कि उन्ह यहा वप भर नही तो कुछ मास लग जाए। जाने कब अयोध्या क दूत, भरत का बुलाने जाए। ककयी को भरत क युव राज्याभिषक की जल्दी है इसलिए दूतो को भेजने में अधिक समय नही लगगा। केकय राजधानी बहुत निकट नही है। दूतो को पहुचने में कुछ समय लगेगा फिर भरत के नाना उसे विदा करने में भी समय लगाएंगे ही। भरत लौटेंग उनका अभिषेक होगा, वे सत्ता हाथ में लेंगे, तब कही जाकर उनकी नीति स्पष्ट होगी। तब तक राम को चित्रकूट में रुकना होगा

वनवास की अवधि में लक्ष्मण किसी प्रकार की असुविधा का अनुभव नही करेंगे—राम जानते थे—उन्हे केवल राम का सग मिल जाए तो वे मग्न हो जाते हैं और यहा तो सामने एक लक्ष्य भी था। यह सारा चित्रकूट प्रदेश उनके सम्मुख था। यहा के लोगो से परिचय प्राप्त करना था। उनकी जीवन-पद्धति को समझना था उनकी कठिनाइया और समस्याओं को जानना था। विभिन्न आश्रमो की व्यवस्था और उनके शिक्षण-स्तर को परखना था। फिर प्रकृति एक चुनौती के समान उनक सामने खडी थी। पवत नदी वन हिंस्र पशु, और जसा कि भरद्वाज आश्रम से ही सुनाई पडना आरभ हो गया था कि इस क्षेत्र में राक्षसी अन्याय भी बढता जा रहा था। लक्ष्मण इन सब में उलझ रहेंगे। उन्ह अयोध्या की याद नही आएगी माता की याद भी नही आएगी। जानने सुनने को कुछ नया हो करने को कुछ अपूव हो, सामने एक चुनौती हो तो लक्ष्मण स्वय को भी भूले रहते है

पर सीता ! चार वर्षों के दाम्पत्य जीवन में राम न सीता को अच्छी प्रकार जाना-समझा था। किंतु लोक चिंतन कहता है कि स्त्री कोमल होती है उसका मन कठिनाइयो से भागता है तथा वभव और सुविधा की ओर झुकता है। सीता ने आज तक के व्यवहार ने इस चिंतन का समथन नही किया था। वे सदा लोक-कल्याण की प्रवृत्ति की ओर झुकी थी किंतु

आज स पहले तो राम उनके साथ इस प्रकार का कठिन व"य जीवन व्यतीत करने के लिए बाहर भी नहीं निकले थे। समव है इस कठिन जीवन म सीता को असुविधा हो

दवी सीत !' राम का स्वर बहुत मदु था।

सीता ने चौंककर पति को ओर देखा, 'क्या बात है राम! आप मुझे प्रिय' नही कह रहे। इतने अतिरिक्त कोमल और शिष्ट क्यो हो रहे हैं? कहीं फिर से मुझे अयोध्या लौट जाने का प्रलोभनयुक्त उपदेश देन का विचार तो नही है ?'

राम की आधी चिंता दूर हो गयी। वे कुछ हल्के हुए और कुछ सहज भी।

'नही, प्रिये ! अयोध्या लौटने को नही कहूगा, किंतु यह पूछने की इच्छा अवश्य है कि इस व"य जीवन म कोई असुविधा तो नहीं? वन म आने का कोई पश्चात्ताप कोई उत्तर विचार कोई पुर्नविचार ?'

झगडे की इच्छा तो नहीं ?' सीता सुहाग भरी मुसकान अधरों पर ले आयी।

नही! राम मुसकराए 'पर अपनी पत्नी की उचित देखभाल मेरा कत"य है। इसलिए उसकी सुविधा-असुविधा को तो जानना होगा। जो राम सीता से विवाह कर उसे अपने घर लाया था, वह अयोध्या का समावित युवराज था वनवासी नहीं। मेरे मन म एक अपराध भावना है प्रिय! कि मैं तुम्हे और लक्ष्मण को तुम दोनो के प्रेम का "ड दे रहा हू।

सीता पुन मुसकराइ 'प्रेम तो अपने-आप म एक दड है। प्रेम किया है तो उसका दंड भी स्वीकार करना ही होगा। वह कोई नयी बात तो नही। किंतु एक असुविधा मुझे है। '

'क्या?' राम न उत्सुकता से पूछा, वही तो मैं भी जानना चाह रहा हू।'

सीता गभीर हो गयीं यदि चौन्ह वर्षों तक मेरे पति मुझसे इसी प्रकार औपचारिक व्यवहार करते रह, और एक भले आतिथेय के समान

अपने-आप को भी परायी लगने लगूंगी "

राम जोर से हंस पड़े।

'मैं आपके साथ इसलिए आयी थी कि हमारे बीच राज प्रासाद और राज-परिवार की सारी औपचारिकताएं समाप्त हो जाएंगी। मैं अपने पति के लिए सघन जनसंख्या वाले प्रदेश की इकाई न होकर उनके इतनी निकट होऊंगी कि वे अनेक कामों के लिए मुझ पर निर्भर होंगे। हम दोनों सहज रूप में दो साथियों के समान काम करेंगे। मैं उन्मुक्त प्रकृति के बीच अपने प्रिय के साथ जीवन के नये आयाम देखूंगी और आत्म निर्भर इकाई के रूप में समाज के लिए कुछ उपयोगी हो सकूंगी। '

राम आगे बढ़ आए। उन्होंने सीता के कंधों पर हाथ रख दिए "यही होगा प्रिये! यही होगा। जाने क्यों मैं कभी-कभी विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते करते कोई ऐसी बात सोचने लगता हूं जिसमें स्वयं मुझे भी अपनी पत्नी की उदात्तता समझने में कठिनाई होने लगती है" उन्होंने सीता को अपनी बाहों में भर लिया "मुझे लगता है सीते! व्यक्ति कितना ही दृढ़ निश्चित तथा आत्मविश्वासी क्यों न हो यदि वह मनुष्य है तो उसके जीवन में कभी-न-कभी तो दुर्बल क्षण आते ही हैं—जब वह आशंकित होता है असंभव संभावनाओं की कल्पना करता है तथा स्वयं अपने संबंधों पर संदेह करता है।

'प्रिये! ऐसे ही क्षणों में बल देने के लिए सीता तुम्हारे साथ आयी है।' सीता ने अपना सिर राम के वक्ष पर टिका दिया।

तो ऐसा ही हो प्रिये! कल से तुम्हारा नया जीवन आरंभ हो। कल प्रातः से तुम वनवासिनी वैदेही बन जाओ एक स्वतंत्र आत्मनिर्भर व्यक्ति, राम के साधारण जीवन की संगिनी और सहगामिनी।

सीता ने मस्तक उठाकर दुलार से राम की ओर देखा।

राम मुग्ध हो उठे।

सवेरे राम ने लक्ष्मण को जगाया "उठो सौमित्र! सावधान हो जाओ। मैं और सीता मन्दाकिनी पर जा रहे हैं।"

वे दोनों कुटिया से निकल आए। बाहर निकल सीता ने उस

चमत्कारपूर्ण उषा को मन भरकर देखा। उनकी गति चपल तथा उत्फुल्ल थी। वे कभी राम के साथ चल रही थीं, और कभी राम से दो डग आगे। टीले की ढाल पर दौड़ने में वैसे भी कोई परिश्रम नहीं था।

सुबह की सैर के लिए ऐसे तो हम अकेले पहले कभी नहीं निकले। सामान्य जन होना भी कितना सुविधाजनक है।' सीता बोलीं 'ऋतु कितनी मोहक है।"

प्रसन्न हो ?"

बहुत !'

तो मंदाकिनी से पूछ लो ऋतु कितनी मोहक है। राम बोले 'यहां घाट नहीं है। संभलकर आना। कहीं कहीं नदी अप्रत्याशित रूप से गहरी भी हो सकती है।'

सीता ने राम के पीछे-पीछे जल में प्रवेश किया।

यहां और कोई नहीं आएगा ?

आना निषिद्ध तो नहीं।" राम बोले, यह अयोध्या का राजघाट नहीं है जिस पर आज्ञा द्वारा प्रतिबंध लगाया जा सके। पर किसी के आने की संभावना कम ही है। आस-पास आबादी प्रायः नहीं है। जहां आश्रम अथवा ग्राम होंगे—मंदाकिनी उनके पास से ही बहती होगी। उनकी आवश्यकता वहीं पूरी होती होगी वे यहां नहीं आएंगे।"

अयोध्या में सरयू हमारी होते हुए भी हमारी नहीं थी। मंदाकिनी हमारी न होते हुए भी हमारी है। राजनीतिक अधिकारों से प्राकृतिक अधिकार कितना अधिक सहज है।

'अधिकार तो सारा धरती का है।' राम बोले स्वयं को धरती की संतान बना लेने पर सारे अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।"

सीता की उत्फुल्लता क्रमशः विकसित होती गयी। वे मुक्त रूप से जल में उतरती गयीं। मंदाकिनी के सहज प्रवाह में तैरना कितना अच्छा लग रहा था—न कोई बंधन न नियंत्रण, न प्रतिरोध। जी चाहता था धारा के साथ तैरती-तैरती दूर तक निकल जाए।

वे तेजी से तैरती हुई, राम के पास से निकल गयीं राम! मुझे पकड़ो।'

राम ने सीता को देखा—पिंजरे से छूटे पक्षी ने ज्यों आकाश मिलते ही पंख खोल उड़ानें भरनी आरंभ कर दी थीं। उसकी सारी आशंकाएं सर्वथा निर्मूल थीं। सीता का ऐसा उन्नास तो उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था।

उन्होंने अपनी गति बढ़ाई। अगले ही क्षण वे सीता के समीप थे "पकड़ू ?"

सीता ने ढेर सारा पानी उनकी ओर उछाल दिया और खिलखिला कर आगे बढ़ गयीं, "अरे युवराज की मर्यादा को क्या हो गया! साधारण जन के समान अपनी पत्नी के पीछे भाग रहे हैं।"

"अपनी पत्नी के पीछे भागने वाला साधारण जन होता है और दूसरों की पत्नियों के पीछे भागने वाला विशिष्ट जन ?" राम हंसे।

"परम्परा तो यही है।" सीता खिलखिलाई "वस भी समय जन कब अपनी पत्नियों के पीछे भागे हैं ?"

"पत्नी के पीछे भागना तो पुरुष मात्र की नियति है देवी! विशेषकर रघुवंश में। और तुम तो मेरी प्रिया भी हो।"

राम ने आगे बढ़कर मार्ग छेंक लिया "लौट चलें ? सौमित्र प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

"चलो। पर सध्या समय फिर आएंगे। तैरना बहुत अच्छा लग रहा है।"

"अवश्य।"

किनारे पर आ उन्होंने सूखे वस्त्र पहने।

अपने आश्रम की दिशा के कगार की ओर मुड़ने से पहले सीता ने एक दृष्टि मंदाकिनी के जल पर डाली। दूसरे तट पर पानी में लगकर खड़ा वह कुबड़ा अर्जुन वृक्ष कितना अच्छा लग रहा था। उसकी डालें प्रवाह के ऊपर तक झुक आयी थीं और पत्ते पानी को छू रहे थे। तैरते हुए सीता उसके पास से निकली थीं तभी उन्हें इस वृक्ष ने आकर्षित किया था। और उनकी अपनी ओर के तट पर टिटहरियों का वह जोड़ा... किंतु कुछ दूर पर यह क्या था ? ... कोई मानव आकृति थी। हां स्पष्ट हो गया। घड़ा भरती हुई कोई भील-कन्या थी।

आप चलें। मैं अभी आती हूं।"

राम अकेले अपने आश्रम की ओर चले। सीता कदाचित उस भील किशोरी से परिचय करना चाहती थीं। वे लोग आश्रम के इतने निकट थे कि सीता को अकेली छोड़ने में किसी संकट की संभावना नहीं थी।

सीता को अपनी ओर आते देख, भील किशोरी रुक गयी। उनके निकट आने पर कुछ ठिठकी फिर जैसे साहस कर हल्के से बोली "देवि! आपको पहले तो कभी नहीं देखा।"

सीता मुसकरायीं "मैं देवी नहीं दीदी हूं। समझी? तुम्हारा क्या नाम है?"

"मैं सुमेधा हूं।" किशोरी की प्रगल्भता कुछ सकुचा गयी।

"सुन्दर नाम है। किसने रखा है तुम्हारा नाम?"

"ऋषि वाल्मीकि ने।" सुमेधा बोली "बाबा कहते हैं पहले ऋषि का आश्रम हमारे गांव के बहुत निकट था, तब हम उनके आश्रम में बहुत आया-जाया करते थे। वे मुझसे बहुत स्नेह करते थे।"

"ऋषि ने अपना आश्रम क्यों हटा लिया?" सीता ने पूछा।

"राक्षस लोग रोज झगड़ा करते थे। ऋषि की साधना में विघ्न पड़ता था। ऋषि उत्तर की ओर हट गए।"

सीता के लिए यह नयी सूचना थी। चकित होकर बोलीं "और तुम्हारा गांव?"

"गांव में गड़बड़ होती रहती है।" सहसा सुमेधा कुछ भयभीत और व्याकुल हो उठी, "दीदी! मुझे पानी ले जाना है। फिर बताऊंगी।"

वह चल पड़ी किंतु कुछ ही क्षणों के बाद लौटी "आप कहां रहती हैं?"

"वह ऊपर टीले वाला आश्रम हमारा है।" सीता ने इंगित किया "कब आओगी?"

"दोपहर को।" सुमेधा घड़ा उठाए भागती चली गयी।

सीता उसके आकस्मिक भय और व्याकुलता को समझने का प्रयत्न करती हुई लौट आयीं।

प्रातःकालीन कार्यों से निवृत्त हो लक्ष्मण ने कुल्हाड़ी सभाली, और पिछले दिन लायी गयी लकड़ियों में व्यस्त हो गए।

"नायक ! मेरा कर्तव्य भी बता दें।" सीता बोलीं।

"भाभी ! आज आपका और भैया का इस निर्माण में कोई काम नहीं है। मेरी ओर से आप मुक्त हैं।"

"तो मैं क्या करूं ?" सीता ने जैसे अपने-आपसे प्रश्न किया।

"तुम्हारी शस्त्र शिक्षा आरंभ होगी।" राम बोले, "जाओ शस्त्रागार में से एक धनुष, एक तूणीर और दो खड्ग ले आओ।"

राम ने धनुष तथा खड्ग का चुनाव सीता पर छोड़ दिया था। सीता शस्त्रागार के भीतर गयीं तो उनके मन में अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए—क्या राम यह मानकर चल रहे हैं कि सीता को शस्त्रास्त्रों के प्रकारों तथा वर्गों का आरंभिक ज्ञान है ? अथवा वे ऐसे आरंभिक ज्ञान को इस प्रशिक्षण के लिए आवश्यक नहीं समझते ?

उन्होंने एक धनुष उठाया, किंतु उठाते ही लगा कि धनुष भारी था, चलाने के लिए बहुत देर तक उसे हाथों में उठाए रखना सीता के लिए संभव नहीं होगा। यदि वे उसे उठाए भी रहेंगी तो अधिकांश बल और ध्यान धनुष को उठाये रखने में ही लगा रहेगा, लक्ष्य संधान के लिए न तो बल बचेगा न बुद्धि। इस प्रकार के भारी धनुष से लक्ष्य-संधान सीखना तो एक विदेशी भाषा में ज्ञान प्राप्त करना है—सारी बुद्धि भाषा को सीखने में ही लग जाएगी, विषय तक पहुंचने का तो अवकाश ही नहीं होगा।

एक अपेक्षाकृत हल्का धनुष सीता ने अपने लिए पसंद किया और एक हल्का सा खड्ग। राम के लिए उन्होंने एक भारी खड्ग उठाया, किंतु दूसरे ही क्षण उसे वापस रख दिया। प्रशिक्षण बराबर भार के शस्त्रों से हो, तो अच्छा है।

बाहर आकर उन्होंने अपने मन में गूंजते प्रश्न राम के सम्मुख रख दिए।

राम मुसकराए, "शस्त्रों का चुनाव प्रशिक्षण के लिए अत्यंत

महत्त्वपूर्ण है सीते ! मैंने उनका चुनाव तुम पर छोड़कर देखना चाहा था कि कहीं तुम गलत शस्त्रों का चुनाव तो नहीं करतीं। शस्त्र अपने-आप में वस्तुतः महत्त्वपूर्ण होता है किंतु उससे भी महत्त्वपूर्ण शस्त्र का चुनाव होता है। शस्त्र का चुनाव दो दृष्टियों से होना चाहिए—प्रथम शस्त्र-परिचालन की दक्षता तथा द्वितीय शत्रु के शस्त्र का आकार-प्रकार। वैदेही ! ऐसे शस्त्रों से युद्ध करने का कोई लाभ नहीं जो अपने आप में श्रेष्ठ तो हों, किंतु हम उनका परिचालन दक्षता एवं सुविधा से न कर सकें। इसका बहुत अच्छा उदाहरण जनकपुर में रखा हुआ शिव धनुष था। अपने आप में वह शस्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सक्षम था किंतु यदि सम्राट सीरध्वज उससे युद्ध करने जाते तो कोई लाभ न होता। उतना बड़ा धनुष होते हुए भी वे निःशस्त्र सरीखे ही रहते। ठीक है ?

सीता ने सहमति में सिर हिला दिया।

दूसरी बात शत्रु की प्रहारक शक्ति की है।" राम ने अपनी बात आगे बढ़ाई, "यदि शत्रु के पास धनुष है तो हमारा खड्ग बहुत काम नहीं आएगा। हमें अपने शस्त्र के चुनाव में सावधान रहना चाहिए कि हम उसके प्रहार को रोक भी सकें और अपनी प्रहारक शक्ति उससे अधिक भी सिद्ध कर सकें। अब तुम अभ्यास आरंभ करो।'

सीता बाण चलातीं और राम उसमें हुई त्रुटियाँ समझाकर दूसरा बाण चलाने को कहते। कभी-कभी धनुष वे अपने हाथ में ले लेते और स्वयं बाण चलाकर बताते।

धनुष-बाण के पश्चात खड्ग की बारी आयी। सीता ने खड्ग पकड़ना, उसे सँभालना, बाहु संचालन तथा प्रहार की विभिन्न मुद्राओं का अभ्यास किया।

दोपहर का शस्त्र शिक्षा का कार्य स्थगित हुआ तो लक्ष्मण ने भी अपना हाथ रोक लिया। उनकी अतिथिशाला का निर्माण पूरा हो चुका था।

भोजन के पश्चात राम अपना आश्रम छोड़, टीले से नीचे उतर आए। वे मन्दाकिनी के तट के साथ-साथ आगे बढ़ते गये। उनका लक्ष्य यहाँ के भूगोल को समझना तथा आस-पास के लोगों का परिचय प्राप्त करना था।

कुलपति की सावधानी और सचेतता से राम प्रभावित हुए। बोले आय कुलपति ! निरापद नही है इसीलिए शस्त्र साथ लेकर चलता हू। और शस्त्रधारी क्षत्रिय किसी भी स्थान को अपने लिए निरापद नही मानता। वसे आपकी इस धारणा का कारण जान सकता हू ?'

'यह प्रदेश राक्षसो के आधिपत्य मे है ऐसा तो नही कहूगा। कालकाचाय बोले किंतु राक्षस प्रभावित अवश्य है। ऋषि-आश्रमो के अतिरिक्त भीलो के असख्य ग्राम भी हैं किंतु इच्छा राक्षसो की ही चलती है। यहा दिन प्रतिदिन राक्षस-तत्र प्रबल होता जा रहा है। तुम्हारे शस्त्र देखकर राक्षस भडकेंगे राम। क्योकि वे प्रत्येक शस्त्रधारी को अपना शत्रु मानते हैं। तुमसे मिलने जुलने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर उनकी वक्र दृष्टि पडेगी वत्स ! तुम्हारी युवती पत्नी किसी भी प्रकार सुरक्षित नही है।

राम अपनी आखो से कालकाचाय को तोलते रहे—एक भीरु बुद्धिजीवी उनके सामने बैठा था।

'आय शस्त्र को विपत्ति का कारण समझते है ?'

'हा पुत्र ! शस्त्र तुम्हारी रक्षा कम करेगा जोखिमो को आमन्त्रित अधिक करेगा। इसीलिए मैं अपने आश्रम म शस्त्र प्रशिक्षण की अनुमति नही देता।'

एक व्यक्तिगत प्रश्न पूछना चाहता हू। राम ने कालकाचाय की आखो म देखा अन्यथा तो न मानेंगे ?

कालकाचाय की आखो म क्षण भर के लिए परेशानी झलकी, उ होने स्वय को नियन्त्रित किया पूछो।

यह स्थान निरापद नही है तो आय कही अन्यत्र क्यो नहीं चले जाते ? तपस्वी का जीवन छोड नागरिक क्यो नही बन जाते ?

कालकाचाय की आखें उदास हो गयी 'पुत्र ! अनेक काय ऐसे होते है जिनका दो टूक कारण नही बताया जा सकता। अब तुमसे क्या कहू—स्वभाव से तपस्वी हू कुछ और हो ही नही सकता। तपस्वी नगरो म नही बसते और राम ! ज मभूमि छोड अन्यत्र किसी अपरिचित स्थान म बसने का उद्यम भी जुटा नही पाता।" व सायास मुसकराए कायर नही हू। भीरु हू और अतिरिक्त रूप म सावधान भी।

राम के जाने के पश्चात लक्ष्मण फिर से अपने निर्माण-कार्य में जुट गये। गृहस्थी का कोई छोटा मोटा कार्य भी सीता के पास नहीं था। सोच ही रही थीं कि व प्रात प्राप्त की गयी शस्त्र विद्या का अभ्यास करें या लक्ष्मण के न चाहने पर भी उनके निर्माण कार्य में सहायता करें।

तभी सुमेधा आश्रम की ओर आता दिखायी पडी। सीता को सहज सुमेधा का अकस्मात ही व्याकुल होकर भाग जाना याद आ गया

'सवेरे तुम इतनी जल्दी भाग क्यों गयी सुमेधे?' पास आने पर सीता ने पूछा मुझे लगा कि तुम कुछ भयभीत भी थी।'

आह दीदी!" सुमेधा बोली मुझे स्वामी के लिए जल ले जाना था न। देर हो जाती तो वह मार मारकर मेरी हड्डियां तोड देता।"

तुम्हारा पति?

नहीं दीदी! सुमेधा कुछ सकुचित हुई स्वामी! मेरा स्वामी मेरे पिता का स्वामी इस वन का स्वामी '

सीता चकित थी 'क्या कह रही हो सुमेधे? एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का स्वामी कैसे हो सकता है! कुछ स्थानों पर स्त्रियां अपने पति को गृहस्वामी के स्थान पर स्वामी कहती हैं किंतु वह संबोधन मात्र है। स्नेह और प्रेम जताने की विधि है। प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में जन्म लेता है और स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन करता है। उसका कोई स्वामी कैसे हो सकता है! क्या तुम्हारे यहां अभी तक दास प्रथा प्रचलित है?'

हां! हां!! सुमेधा अत्यंत सरल भाव से बोली 'ऐसी ही बातें ऋषि वाल्मीकि ने भी हमारे गांव के कुछ लडकों को सिखायी थीं। लडकों ने उन बातों को सच मान लिया था और स्वामी से झगड पडे थे। स्वामी ने उन सब को बांधकर कोठरी में डाल दिया था और यातना दे-देकर एक एक को मार डाला। बाद में उसने ऋषि के आश्रम के कुछ लोगों को भी हाथ-पैर तोड दिए थे। अब हमारे ग्राम में इन बातों पर कोई विश्वास नहीं करता। भला सब लोग समान कैसे हो सकते हैं—राक्षस राक्षस हैं, और भील भील।

'तो तुम्हारा स्वामी राक्षस है?' सीता ने कुछ कांपते हुए पूछा।

हां, दीदी ! पहले किरात था, पर जब से धनवान हुआ है राक्षस हो गया है। और अब दिन प्रतिदिन उसका धन भी बढ़ रहा है और बल भी।'

पर वह इस धन का स्वामी कैसे हो गया ? क्या वन उसने उगाया है या यह धरती उसने बनाई है ? धरती उस पर रहने वालों की सामूहिक संपत्ति है। वन नदियां पर्वत तथा खानें—संपूर्ण समाज की संपत्ति होती हैं। शासक जनता की ओर से ही उनका प्रबंध करता है।

सुमेधा जोर से हंस पड़ी, तुम्हारी बात कोई नहीं मानेगा दीदी ! कोई भी नहीं। किसको अपनी जान प्यारी नहीं है। किसे अपनी हड्डियां तुड़वानी हैं।

अच्छा ! तुम लोग इसके दास क्यों हो ? सीता ने बातों की दिशा मोड़ी।

"मेरे पिता को किसी अपराध के लिए स्वामी ने आर्थिक दंड दिया था। पिता के पास धन नहीं था। स्वामी ने ही पिता को ऋण दिया। पिता वह ऋण चुका नहीं पाए हैं। इसलिए वे स्वामी के दास हुए उनकी पत्नी होने के कारण मेरी मां और पुत्री होने के कारण मैं उनकी दासी हुई। दासों की संतान भी तो दास ही होती है।'

सुमेधा अपना ज्ञान प्रदर्शित कर प्रसन्न थी।

'तुम और तुम्हारे माता पिता—तीनों क्या काम करते हो ?'

जो स्वामी कहें।' सुमेधा ने बताया पानी लाना। जमीन खोदना। पेड़ काटना। खाना पकाना। बर्तन मांजना। स्वामी और उसके परिवार की सेवा करना। जो भी स्वामी कहे।'

तुम्हारा विवाह होगा ?"

सुमेधा फिर संकुचित हो गयी यह तो स्वामी की इच्छा पर है। वे चाहें मेरा विवाह कर दें। वे चाहें मुझे किसी को दे दें। वे चाहें मेरा भोग करें। वे चाहें मुझे खा जाएं "

सीता हतप्रभ-सी बैठी सुमेधा को देखती रही। यह लड़की कितनी सहजता से यह सब कह रही है। न केवल कह रही है सब-कुछ स्वीकार भी कर रही है। और उसे कहीं यह बोध नहीं है कि यह गलत है, यह अन्याय

है। इसका विरोध होना चाहिए और यह लडकी यहा के जन-सामान्य की प्रतीक है। सीता समझ नहीं पा रहे थी कि सुमेधा को कैसे समझाए। उससे तक करे उसे बल दें उपदेश दें धिक्कारें

अच्छा! मैं चलू दीदी। सुमेधा उठ खडी हुई।

सुनो सुमेधा!' उसके उठ खडे होने से सीता चौंक उठी मेरा एक काम करना बहन। मेरे पास कोई घडा नही है। पत्तो के दोना म पानी लाने म काफी असुविधा रहती है। मुझे एक घडा कही स ला दोगी? तुम्हारे ग्राम म कोई कुम्भकार है क्या?"

हा दीदी! मैं कुम्भकार को ही तुम्हारे पास भेज दूगी। अपनी इच्छा के अनुसार घडा बनवा लेना। अच्छा दीदी।'

सुमेधा बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए चपलतापूर्वक भाग गयी।

सध्या से पूर्व राम लौट आए। लक्ष्मण ने तब तक अतिथिशाला भी बना कर पूरी कर दी थी।

भारी परिश्रम किया है, सौमित्र, तुमने!" राम बोले 'तनिक भी विश्राम नही किया क्या?

काम करना अच्छा लग रहा है।' लक्ष्मण बोले, 'विश्राम तो थकान के बाद होता है। थकान तो मुझे अभी हुई ही नही।

'तुमने क्या किया प्रिये?'

सीता क्षण भर कुछ सोचती मौन बैठी रही, फिर धीरे से बोली, 'मैंने कुछ किया या नही वह नहीं सकती, पर वह लडकी अनायास ही मेरा ज्ञान बहुत बढा गयी है '

सुमेधा के साथ हुई अपनी बातचीत सीता ने पूरे विस्तार से दुहरा दी।

राम गभीर हो गए। लक्ष्मण के चेहरे पर आक्रोश था।

"इस प्रदेश की स्थिति का कुछ कुछ आभास मुझे था," राम चिंतनमय स्वर म बोले 'किंतु स्थिति इतनी दुखद तथा अत्याचारपूर्ण है, ऐसा मैंने नही सोचा था। आज मैं भी कुछ आश्रमो के निवासियो से मिलकर आया हू। मार्ग म मिले अनेक पथिको से भी बातचीत की है, अब सुमेधा की

नाम भी सुनी है। यह प्रदेश सभ्यता के आदिम युग में जी रहा है। समस्त प्रदेश वनों से भरा पड़ा है। व्यवस्थित राज्य की स्थापना नहीं हुई है, किंतु स्थान-स्थान पर क्षीण जनसंख्या वाले अनेक आश्रम, ग्राम, पुरवे, टोले बस गए हैं। जो कुछ मुझे ज्ञात हुआ है, उसके अनुसार प्रायः प्रत्येक जाति के लोग यहां बसे हुए हैं और बसते जा रहे हैं। आर्यों की अनेक उपजातियों के लोग, शबर, किरात, नाग, निषाद, कोल, भील, यक्ष, किन्नर, वानर तथा ऋक्ष जातियों के लोग हैं। किंतु इन्हीं सब के बीच एक नयी जाति पनप रही है—यह जाति रक्त तथा आकार-प्रकार की भिन्नता के अनुसार नहीं है, वह एक चिंतन प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति-जाति राक्षसों की है। प्रत्येक जाति के अनेक लोग, जैसे-जैसे अन्य लोगों की संपत्ति हड़पकर धनाढ्य बनते जाते हैं—राक्षस प्रवृत्ति में दीक्षित होते जाते हैं। उन्हें राक्षस-सम्राट रावण का अभय प्राप्त है। आवश्यकता होने पर उन्हें उससे धन, बल, सेना, सहायक—सब कुछ मिल जाता है। किंतु सामान्यतः रावण ने इधर सैनिक उत्पात नहीं किए हैं। इसी धरती में उसकी सहायता के बिना इतने राक्षस उपजते जा रहे हैं कि उसे लंका से राक्षस लाने की आवश्यकता नहीं है।

"ये राक्षस इस संपूर्ण वन प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं। ये अन्य लोगों के यहां आकर बसने के विरोधी नहीं हैं, क्योंकि यदि ऐसा होता तो रावण की राक्षस-सेना इस समस्त प्रदेश को घेर लेती और अन्य लोगों का प्रवेश निषिद्ध कर देती। ऐसी स्थिति में ये वन, उपवन, नदियां, पर्वत उनके किसी काम न आते। उन्हें वनों को काटने, भूमि जोतने, खानों से धातुएं निकालने, नदियों से मछलियां पकड़ने, नौकाएं चलाने, अपने घरेलू कामों तथा व्यक्तिगत सेवाओं के लिए दास चाहिए। भोग के लिए स्त्रियां चाहिए, नर-मांस के लिए पुरुष चाहिए। इन्हीं सब कारणों से वे चाहते हैं कि इस प्रदेश में पहले से बसे हुए लोगों की जनसंख्या बढ़े तथा बाहर से आकर भी विभिन्न जातियों के लोग बसें। किंतु वे नहीं चाहते कि यहां की प्रजा बुद्धिवादी, स्वतंत्र चिंतक, आत्मनिर्भर, अधिकारों के प्रति सजग, सचेत तथा आत्म-रक्षा में समर्थ एवं शक्तिशाली हो। वे चाहते हैं, यहां की प्रजा बाड़े में पला उनका पशुधन हो, जिसका

कोई अधिकार न हो जिसकी कोई अपेक्षा और चिंतन न हो। जिसे वे जब काम म चाहें जोत दें और जब चाहें उसे मारकर खा जाएं। अपनी रक्षा म समय शरीर तथा स्वतन्त्र रूप म सोचने वाला मस्तिष्क उन्हें अपने लिए खतरा लगता है अत उसे वे अपना शत्रु मानते है। बुद्धिवादी ऋषि उनके सबसे बड़े शत्रु हैं क्योंकि य लोग न केवल स्वयं शक्तिशाली है वरन चिंतनशीलता का रोग सक्रामक रूप से फैलाते हैं। उनके सपर्क म आने वाले अन्य लोग भी सोचने लगते हैं जानने लगते हैं सगठन म विश्वास करने लगते हैं, जाति सम्प्रदाय तथा व्यवसाय के नाम पर, परस्पर लडने मरने को स्वीकार न कर समता के आधार पर मानवीय अधिकारों के लिए सघर्ष करने लगते हैं

राम ! क्या राक्षस सचमुच नर मांस खाते हैं ?' सीता किंकर्तव्य विमूढ सी लग रही थी या यह प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मात्र है ?'

'प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तो यह है ही। राम बोले जिन परिस्थितियों म ये सामान्य जन को जीने के लिए बाध्य करते हैं उसे उनका रक्त पीना और हड्डियां चबाना ही कहा जा सकता है किंतु यह मात्र प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही नहीं है। हेतिकुल जिस आदिम अवस्था से उठा था वहां नर मांस खाने की परपरा थी। किंतु राक्षसी चिंतन जिस स्वार्थ-बुद्धि पर चलता है वह अंतिम रूप से अपने व्यक्तिगत सुख की ही चिंता करता है। सुख की अति सदा ही बीभत्सता की ओर बढती है। य नव राक्षस भी क्रमश उसी ओर बढ रहे हैं। इन्होंने नर मांस खाने की परपरा को आभिजात्य के धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। मदिरा तथा काम सबधों की नग्नता को भी य गौरवान्वित करते जा रहे हैं— ताकि क्रमश मानवीय सबध समाप्त हो जाए और मनुष्य पूर्ण पशु हो जाए ।'

सहसा राम ने देखा—लक्ष्मण का ध्यान उनकी बातों से हटकर आश्रम की ओर आने वाले मार्ग की चढाई पर चढती एक मानव आकृति पर लगा हुआ था। लक्ष्मण की बायी हथेली धनुष पर कस गयी थी और उनका दाया हाथ तूणीर को टटोल रहा था।

धैर्य रखो सौमित्र !' राम ने धीरे से कहा 'अभी इतना अधकार

हुआ कि हम प्रत्येक आगंतुक को आशंका की दृष्टि से देखें।"

उन तीनों की दृष्टि क्रमशः निकट आती हुई उस आकृति पर लगी हुई। पहचान की सीमा में आते ही तीनों ने उसे प्रायः साथ-साथ पहचाना वह वाल्मीकि आश्रम का मुखर था।

मुखर! इस समय यहां!' सीता चकित थीं।

कदाचित् ऋषि ने कोई संदेश भेजा है। लक्ष्मण बोले।

मुखर के निकट आने पर राम ने सहज भाव से हंसकर कहा, स्वागत मुखर! आओ बैठो। तुम अच्छे समय पर आए। भोजन तो हमारे ही करोगे न? अब आश्रम लौटने का तो समय नहीं रहा।'

हाथ जोड़कर मुखर ने सबका अभिवादन किया और अत्यंत थकी मुद्रा में उनके निकट बैठ गया।

उसने बारी-बारी तीनों के भावों को देखा और संकुचित मद्धम स्वर बोला आर्य! यदि आपको असुविधा न हो तो मैं आज रात आपके श्रम में ही रुकना चाहूंगा। मेरी धृष्टता क्षमा करें—किंतु मुझे विस्तार कुछ निवेदन करना है।

निःसंकोच रुको, मित्र! लक्ष्मण उल्लास के साथ बोले आखिर जो दिन भर के परिश्रम से अतिथिशाला बनाई है, उसका कुछ उपयोग तो हो।

राम ने मुसकराकर लक्ष्मण का अनुमोदन कर दिया।

सीता उठ खड़ी हुईं मैं भोजन की कुछ व्यवस्था करूं। मुखर बहुत से चलकर आया है। थका हुआ है और भूखा भी अवश्य होगा।'

आपका अनुमान एकदम सत्य है देवी।' मुखर पहली बार कराया।

भोजन के पश्चात् वे चारों फिर एक जगह आ बैठे।

भद्र राम!" मुखर बोला, मैं नहीं जानता कि अपनी बात कहां से आरंभ करूं, इसलिए सारी बात कहूंगा।'

निश्चिंत होकर कहो।' राम बोले तनिक भी संकोच मत करो।'

'चित्रकूट प्रदेश में जनसंख्या विरल है।" मुखर ने कहना आरंभ

किया, 'किंतु इससे दक्षिण जन स्थान म जहा एक ओर घन वन हैं वहाँ अनेक स्थानों पर घनी जनसख्या पायी जाती है। उससे और आग बढने पर किष्किंधा म वानरा का प्रसिद्ध राज्य है जिसका सम्राट महाबली वाली है। मैं उसी वानर-जाति का एक सदस्य हू। मैं ठीक-ठीक नहीं जानता कि हम अपने आपको वानर क्यो कहते हैं। कुछ तो हमारे शरीर का वर्ण अपेक्षाकृत पीला है और कुछ उस पर पतले लबे रोम हैं। फिर हमारा जातीय प्रतीक भी वानर' ही है। हमारी अनेक पडोसी जातिया स्वय को इसी प्रकार अन्य पशुओं के नामा स सबोधित करती है।

'तो उसी वानर जाति का मैं एक सदस्य हू। वाली महाबली है, किंतु न तो उसके राज्य की निश्चित सीमा है न नियमित सेना है। वह अपने व्यक्तिगत शौर्य पर जीने वाला प्राचीन काल के यूथ पति जैसा राजा है। एक प्रकार स अपनी बात का धनी भी है। यदि उसने रावण को अपना मित्र कह दिया तो कह दिया—रावण उसका मित्र है, चाहे रावण के अनेक सहयोगी राक्षस वानरो को जहा-तहा पीडित करते रहे। वह साधारण राक्षसा से वाली नहीं लडेगा। असाधारण है रावण किंतु वह उसका मित्र है—अत युद्ध का प्रश्न ही नहीं है। परिणामस्वरूप अपने ही घर म वानर जहा-तहा पीडित होत रहते है और उनका मास लका के हाट-बाजारा म खुल आम बिकता है।

सुदूर दक्षिण-पश्चिम म समुद्र-तट पर हमारा गाव है। उस गाव म हमारा घर था। घर म मेरे माता पिता थे बहन भाई थे भाभिया थी भतीजिया भतीजे थ। पडोस के गाव म बहन का विवाह हुआ था। बहनोई ध्यान-पीन व्यक्ति थे। भाजिया भाजे प्रसन्न थे। कितना सम्मान था मेरे पिता का। वे कवि और सगीतकार थे पर साथ ही कृषक भी थ। उन्होंन कला को अपनी आजीविका का साधन नहीं बनाया था। खेतो म इतना अन्न मिल जाता था कि सारे कुटुब का पालन सुविधा से हो सके। कला की साधना के कारण सारा समय खेती किसानी को नहीं दिया जा सकता था। ऐसा होता तो कदाचित और अधिक अन्न उत्पन्न होता। उसे बेचकर व्यापार के नाम पर अन्नहीनों की बाध्यता का शोषण कर अधिक लाभ कमाया जाता। धन सचित किया जाता और फिर सचित धन की

▌ शक्ति से कुछ अ य लोगा का श्रम और श्रम के माध्यम स स्वय उन लोगा को खरीदा जाता। किंतु, मरे पिता ने इस ओर कभी ध्यान ही नही दिया। अपनी आवश्यकता भर मिल जान स वे सतुष्ट थ और शेष समय म अपनी कला की साधना करत थे। कला क माध्यम स अपन गाव और आस पास क ग्राम क लोगो का मनोरजन करते थ किंतु उनकी कला मनोरजन के साथ लोगो को यह भी बताती थी कि उनक परिवेश म क्या ठीक है क्या गलत क्या याय है क्या अयाय क्या अधिकार है क्या अत्याचार। उनकी कला का यह पक्ष गाव के धनकुबेर राक्षसा को अच्छा नही लगा। उ होन अपने अनक सगठना की सहायता स हमार घर पर आक्रमण किया। मैं वहा नही था। कह नही सकता कि हमार कुटुम्बियो म स किसका मास वही भूनकर खाया गया किसका ग्राम म बिका और किसका लका क हाट म। अब ससार म मेरा कोई नहा है।

मैं वहा से भागा तो सगीत और का य के आकषण म ऋषि वाल्मीकि क आश्रम म आया। किंतु जसा आपने उस दिन देखा मुझ शस्त्रो का आकषण भी खीचता है। अब मैं अपन कुलपति की अनुमति ▌ आपक पास आया हू। यदि आप मुझे शस्त्र शिक्षा दना स्वीकार करें तो उतनी अवधि तक मैं आपके आश्रम मे, आपके शिष्य क रूप म रहने का इच्छुक हू ।

मुखर ने अपनी बात समाप्त कर राम की ओर देखा।

राम गभीर थे मित्र! ऋषि ने तुम्हार जीवन की घटनाओ का सकेत भर दिया था। विस्तार से सुनकर, तुम्हारे प्रति मरा स्नेह और भी बढा है। मुझे लगता है कि तुम्ह शस्त्र शिक्षा प्राप्त करन का पूण अधिकार है। यदि तुम दो वचन मुझे दो तो मैं तुम्ह सहष शस्त्र शिक्षा दूगा।

कसे वचन आय?

तुम्हारा शस्त्र-कौशल प्रत्येक दलित का सहज-सुलभ होगा और तुम्हारा शस्त्र केवल याय के पक्ष म उठेगा।

मैं वचन देता हू राम!' मुखर ने अपने दोना हाथ जोड दिये।

तो मैं तुम्ह कनिष्ठ मित्र क रूप म स्वीकार करता हू।'

"आज अतिथिशाला म ही ठहर जाओ मित्र! कल तुम्हार लिए अलग कुटीर का निर्माण करग।'

लक्ष्मण की प्रसन्नता उनके चेहरे से फूटी पड रही थी।

सवेरे राम और सीता नहाकर मदाकिनी से लौट रहे थे। मार्ग मे सुमेधा मिली। वह रुकी नही। चलते चलते ही कह गयी "दीदी! कुम्भकार को कह दिया है। वह आज आएगा।"

राम ने कल सीता से सुमेधा के विषय म सुना था। उन्होंने ध्यान से उसे देखा—उसके मुख मडल पर कोई विषाद दुख परिताप अथवा चिंता नही थी जो कि इस भयकर दमन के कारण स्थायी रूप से होनी चाहिए थी। कदाचित् उस दमन को उसने अपनी जीवन विधि के रूप मे अगीकार कर लिया था उसे अपनी नियति मान लिया था। नियति राम को लगा इस शब्द का साक्षात्कार होते ही, उनके मन मे एक भयकर झझावात उठ खडा होता है। किसने फलाया है यह विष सारे समाज म? जिस व्यक्ति ने पहली बार इस अवधारणा की कल्पना की थी, उसने भी कभी इसकी घातकता की तीव्रता का ठीक-ठीक अनुमान न लगाया होगा। जिस व्यक्ति जाति या समाज मे यह विष एक बार घर कर लेता है उसका सपूर्ण उद्यम समाप्त हो जाता है उसका विद्रोह उसका तेज, उसकी प्रतिक्रिया शक्ति पूर्णत नष्ट हो जाती है। यह मृत्यु है—जीवतता का अत। शोषण का कितना बडा माध्यम है भाग्य की यह अवधारणा! इसके रहते किसी के मन म व्यवस्था के विरुद्ध असतोष जन्म नही लेगा उसके विरुद्ध आक्रोश नही उठेगा व्यक्ति व्यवस्था के विरोध और उसके परिवर्तन तथा सुधार की बात सोच ही नही सकता भौतिक विष तो घातक होता ही है किंतु मानसिक विष चिंतन का विष, उससे कहीं अधिक घातक होता है

लक्ष्मण और मुखर को वन से लौटने म अधिक देर लगी। लौटते हुए, वे अपने साथ कुछ फल और लकडिया भी लाए थे। लक्ष्मण वन म जाते थे तो उनका ध्यान लकडियो का ओर अधिक रहता था। आज उन्हे मुखर के लिए कुटिया भी बनानी थी। उसके पश्चात आश्रम के चारो ओर बाडा भी बनाना था। एक फाटक बनाना था। ईंधन के लिए भी लकडिया चाहिए

थीं। लकड़िया की आवश्यकता तो अभी बात अनेक दिनों तक बनी रहेगी।

लक्ष्मण कुटीर निर्माण के काय म लग गए, तब राम ने सीता और मुखर को शस्त्राभ्यास कराना आरभ किया। मुखर को शस्त्रों के विषय म कुछ भी ज्ञात नहीं था अत उसे आरभिक ज्ञान भी दिया जाना था। सीता को बाण-सधान सबधी कुछ बातें बताकर, उनका अभ्यास करने के लिए कह राम ने मुखर को शस्त्रों के विषय म सूचनाएं देनी आरभ की—उसे सैद्धातिक पक्ष बताकर ही व्यावहारिक ज्ञान कराया जा सकता था।

सौमित्र सहसा अपना काम छोड़कर एक अन्य स्थान पर चल गये, जहा स टील की चढाई अच्छी तरह दिखायी देती थी।

राम ने लक्ष्मण को देखा—निश्चित रूप स कोई व्यक्ति टील की चढ़ाई चढकर उनक आश्रम की ओर आ रहा था। पर अभी शस्त्राभ्यास रोकने का कोई कारण नही था। उन्होने सीता और मुखर को उनके अभ्यास म लगाए रखा ताकि न उनका ध्यान लक्ष्मण की ओर जाए और न व लक्ष्मण के समान अपना काम छोड़कर उस पगडडी को ताकन लग।

थोडी देर म एक व्यक्ति उपर आया। वह वय स नवयुवक था। उसकी कमर मे मृगछाल नही थी उसने एक लगोटी बाध रखा था। निश्चित रूप से वह वनवासी न होकर ग्रामवासी था। उसका सवलाया-सा गेहुआ रग था। पहले तो वह लक्ष्मण से बातें करता रहा फिर उसका ध्यान शस्त्राभ्यास करत हुए मुखर तथा सीता और निर्देश देते हुए राम की ओर चला गया। वह आश्चय विस्फारित नयना स उनको देखता क्षण भर भौंचक खडा रहकर लक्ष्मण के साथ उनकी ओर बढ़ा।

शस्त्राभ्यास थम गया।

'भाभी! यह कुभकार है। इसे सुमेधा ने भेजा है।' लक्ष्मण न उसका परिचय दिया।

राम ने देखा—कुभकार की आखो म जीवन की चमक थी। मुख की रेखाए उसके कुछ समझदार होने की ओर सकेत करती थी। यह व्यक्ति सुमेधा के गाव का था किंतु सुमेधा के समान अपने जीवन से सतुष्ट नही था। उसके मुख मडल पर कुछ सम्मान कुछ भय, कुछ जिज्ञासा के मिश्रित भाव थे।

'आप लोग कौन हैं ?' वह पहला वाक्य बोला।

मुखर ने केवल अपनी बात कही थी—सीता सोच रही थी—उन लोगों के विषय में उसने कुछ भी नहीं पूछा था। उसकी आँखें अपने परिवेश की ओर से बंद थीं मस्तिष्क सोया हुआ था। यह व्यक्ति वैसा नहीं था। वह जागरूक था। उसने अपने विषय में कुछ बताने से पूर्व उनके विषय में जिज्ञासा की थी।

'मैं राम हूँ। ये मेरे छोटे भाई हैं—लक्ष्मण। ये मेरी पत्नी हैं—सीता। और यह है मेरा मित्र मुखर, हमारे आश्रम में शस्त्राभ्यास कर रहा है।

आप लोग यहाँ क्या कर रहे हैं ? कुम्भकार कुछ हकलाता-सा बोला।

लक्ष्मण के चेहरे पर आवेश झलका, किंतु राम ने उन्हें संकेत से शांत करते हुए कहा, हम लोग अपने पिता के आदेश से वन में आए हैं। यहाँ वैसे ही वास कर रहे हैं जैसे साधारण वनवासी निवास करते हैं जैसे तुम निवास कर रहे हो।"

इस बार कुम्भकार के चेहरे पर भावावेश आया, "नहीं मैं निवास कर रहा हूँ। *एक दिन कुम्भ निर्माण छोड़कर एक मूर्ति का निर्माण करने* लगा था तो तुम्भरण ने मार-मारकर मेरी खाल उधेड़ दी थी। उस दिन उसे कुछ बर्तनों की आवश्यकता नहीं होती तो वह अवश्य ही मुझे मारकर खा जाता। और आप लोग तो शस्त्रों का अभ्यास कर रहे हैं—यहाँ तक कि यह महिला भी।

'शस्त्राभ्यास से तुम्हें क्या आपत्ति है ?' राम ने पूछा।

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आपत्ति है तुम्भरण को।' कुम्भकार जल्दी-जल्दी बोला, "उसका कहना है कि मेरा दादा कुम्भकार था, बाप कुम्भकार था, इसलिए मुझे भी कुम्भकार ही बनना पड़ेगा। मैंने कुछ और बनने का तनिक भी प्रयत्न किया तो वह मुझे आवे में पकाकर मार डालेगा। यहाँ तक कि वह मुझे बर्तन छोड़ मिट्टी के खिलौने भी नहीं बनाने देगा। और जहाँ तक शस्त्रों की बात है उन्हें रखने का अधिकार केवल राक्षसों का है।'

क्या ? राक्षसों को ऐसा विशिष्ट अधिकार क्यों है जो अन्य लोगों

मेरा कुंभ, नवयुवक ! सीता ने उसे टोक दिया।

'आपके लिए मैं अपनी इच्छा से कुंभ बनाऊंगा देवि ! यहीं इसी आश्रम में। निश्चिन्त रहें।

वह तेजी से ढलान की ओर चल पड़ा।

वे चारों उसे देखते रहे। वह पेड़ों की ओट में छिप गया तो राम मुस्कराए, 'देखा ! एक कालकाचार्य है कि शस्त्र देखकर सहम गए, और एक यह कुंभकार है कि अपने बंधन तोड़ने के लिए मचल उठा।

'यह क्या मात्र वृत्ति का भेद है ?' सीता ने पूछा।

कुछ वय का कुछ वृत्ति का। राम बोले 'कुछ सहे गए अत्याचारों की तीव्रता कुछ मुक्त होने की इच्छा—अनेक बातें हैं सीते !'

'किंतु सिद्धाश्रम में तो हमारे शस्त्र देखकर कोई भयभीत नहीं हुआ था' लक्ष्मण जैसे वाचिक चिंतन कर रहे थे वहां का तो बच्चा-बच्चा उठ खड़ा हुआ था। ग्रामीण तथा आश्रमवासी एक साथ संघर्ष करने के लिए जुट आए थे।

'वहां की स्थिति भिन्न थी' राम बोले ऋषि विश्वामित्र के कारण वहां तेजस्विता का इतना दमन नहीं हुआ था। फिर ताड़का के वध ने जन सामान्य का आत्मविश्वास जाग्रत कर दिया था।

राम के आश्रम के व्यावहारिक दृष्टि से दो दल बन गए। प्रातः राम और सीता मंदाकिनी में स्नान चले गए। उनके लौटने पर लक्ष्मण और मुखर गए। बाद के समय में लक्ष्मण आश्रम के निर्माण कार्य में लग रहे और राम सीता तथा मुखर को शस्त्राभ्यास कराते रहे। दोपहर के पश्चात सौमित्र और मुखर निर्माण तथा आश्रम की रक्षा के लिए पीछे रुक गए और राम तथा सीता पड़ोस के आश्रम निवासियों से परिचित होने के लिए चल गए।

पिछले कुछ दिनों से राम का अपना कार्यक्षेत्र विस्तृत करने की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। उन्हें लग रहा था आश्रम में बैठकर शस्त्र शिक्षा देने से ही उनका दायित्व पूरा नहीं हो सकता। सिद्धाश्रम क्षेत्र

के ग्रामवासियो के ही समान इस क्षेत्र के ग्रामवासी ता राक्षसा से आतंकित थे ही साधारण आश्रमवासियो म भी तज नही था। कालकाचाय, राम के शस्त्रागार क इस प्रदेश म आ जाने से भयभीत थे। उन्ह राक्षसा की अप्रसन्नता की आशका थी। कुछ अन्य कुलपतिया की भी यही स्थिति थी। ऐसी स्थिति मे राम की शस्त्र शिक्षा क्या करती ! कोई उनके पास आए ही नही तो वे क्या करेंगे। शस्त्र शिक्षा तो भौतिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए है किंतु उसक पूव लोगो क मन को मुक्त करना होगा। उसक लिए उनके आश्रमो म, ग्रामो म यहा तक कि उनके घरो म भी जाना होगा। उन्ह बताना होगा कि उनका जीवन कैसा हो जीवन म उनके क्या-क्या अधिकार हो जन साधारण को समझाने के लिए लक्ष्मण उपयुक्त पात्र नही है—उनम तज के साथ आक्रोश तथा अधैय है। व तक कम करते हैं व्यग्य और प्रहार अधिक करते हैं। नही ! जन-साधारण तक तो राम को हो जाना होगा। उनके हृदय तथा मस्तिष्क को मुक्त करने के पश्चात वे उन्ह लक्ष्मण को सौंप सकते हैं। लक्ष्मण उन्हें शस्त्र शिक्षा देंगे शस्त्र निर्माण का काम सिखाएंगे सगठन और युद्ध का व्यावहारिक ज्ञान देंगे

वद्ध कुलपति कालकाचाय न पहली भेंट म इगित मात्र किया था दूसरी भेंट म स्पष्ट कहा था "राम ! तुम कितने ही वीर क्या न हो, तुम्हारे पास कितने ही शस्त्र क्या न हो, तुम्हारा आचरण कितना ही शुद्ध और न्यायपूर्ण क्यों न हो तुम एक भयकर जोखिम म घिर गये हो, तुम अपनी युवती पत्नी के साथ एक ऐसे स्थान पर आ गए हो जहा किसी क प्राण सुरक्षित नही हैं, किसी का सम्मान अक्षत नही है। मेरी बात मानो राम ! तुम लौट जाओ, और जब तक यहा रहो, अत्यत सावधान रहो, प्राणपण से अपनी और अपनी पत्नी की रक्षा करो "

कालकाचाय ने जो ठीक समझा, कहा। किंतु वनवास की बात अनेक ऋषियो से हुई थी—विश्वामित्र, भरद्वाज वाल्मीकि किसी न भी तो उन्ह लौट जाने क लिए नही कहा। ये वद्ध कुलपति ही क्या ऐसा कह रहे हैं ? क्या उन समय ऋषियों को इस जोखिम का ज्ञान नही था, या ये कुलपति उन्हें व्यथ ही डरा रहे हैं ? बात कदाचित् ऐसी नही

थी। यह कदाचित् अपने-अपने सामर्थ्य और दृष्टि की बात थी। विश्वामित्र भरद्वाज तथा वाल्मीकि समर्थ ऋषि हैं। वे जोखिम उठाने, शत्रु से भिड़ने और सत्य का मूल्य चुकाना जानते हैं, और यह वृद्ध कुलपति कालकाचार्य मध्यम कोटि के बुद्धिजीवी मात्र हैं। उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि झूठ और अन्याय से टकराएं। इस क्षेत्र में तेज को जगाना होगा जन-सामान्य को समझना होगा। यह काम राम को ही करना होगा। कालकाचार्य जैसे लोगों को बताना होगा कि घबराकर अथवा भयभीत होकर भाग जाने से काम नहीं चलता। आप अत्याचार के सम्मुख से पलायन कर अपनी जान नहीं बचा सकते। वह आपको ढूंढेगा, घेरेगा और अंत में कुचल डालेगा। अत्याचार से छिपा नहीं जा सकता, उसका तो सामना ही किया जा सकता है।

अंधकार होने से पहले, राम और सीता आश्रम में लौट आए। आश्रम में फल और अन्न पर्याप्त था। भोजन की व्यवस्था में कोई परेशानी नहीं थी। भोजन पकाने का काम कोई भी कर लेता था अथवा सब मिलकर कुछ-न-कुछ कर देते थे, किंतु नियंत्रण तथा निर्देशन का सर्वाधिकार सीता पर था।

बीच में आग जलाकर वे लोग उसके चारों ओर भोजन के लिए बैठे। किन्तु भोजन आरंभ करने की स्थिति ही नहीं आयी। उससे पूर्व ही आश्रम के बाड़े के फाटक पर किसी के हाथों की थाप सुनाई दी। कोई ऊंचे स्वर में आश्रमवासियों को पुकारकर फाटक खोलने के लिए कह रहा था।

कोई अतिथि होगा। सीता बोलीं।

'फिर भी सावधानी आवश्यक है। मुखर ने कहा।

तुम दोनों की बात ठीक है।' राम धीरे से बोले, अतिथि ही होगा, नहीं तो इस प्रकार पुकारकर फाटक खोलने के लिए नहीं कहता, पर देश काल को देखते हुए सावधानी भी आवश्यक है। सौमित्र और मुखर तुम लोग उल्काएं ले आओ और देखो। मैं और सीता शस्त्रागार के पास हैं।'

मुखर और सौमित्र ने वैसा ही किया। उल्काओं के साथ वे अपने

शस्त्र ले जाना न भूले।

किंतु उन्हें लौटने में अधिक देर नहीं लगी। वे लौटे तो उनके साथ सुमेधा कुंभकार तथा एक और अपरिचित वृद्ध थे। राम और सीता ने उठकर उनका स्वागत किया। कुंभकार अपनी बात का पक्का निकला था।

भद्र राम ! मैं आ गया हूं अपनी जान पर खेलकर, ' कुंभकार बोला अपने साथ सुमेधा तथा उसके पिता झिंगुर को भी ले आया हूं। इन्हें साथ लाने के लिए पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा है। ये दोनों ही ऐसा साहस करने के पक्ष में नहीं थे। इनका विचार था कि तुभरण के अधीन रहकर फिर भी कुछ दिन जीवित रहने की संभावना थी, किंतु वहां से भागकर, हमने अपने जीवन के समस्त द्वार बंद कर दिए हैं। ये अपने को मृतप्राय ही मान रहे हैं। अब आप चाहें तो हमारी रक्षा कर, हमें जीवन-दान दें, अथवा हमें तुभरण को लौटा कर मृत्यु के हाथों सौंप दें।

राम ने लपलपाती अग्नि के प्रकाश में उनके चेहरों को देखा—कुंभकार ठीक कह रहा था। कुंभकार के मुख मंडल पर जोखिम तथा दुस्साहस की उत्तेजना थी किंतु झिंगुर और सुमेधा के चेहरे मृत्यु की ठंडी राख के समान बुझे हुए थे।

राम ने झिंगुर के कंधे पर हाथ रखा 'तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है, बाबा ?'

झिंगुर ने उनकी ओर देखा पर उसकी दृष्टि अधिक देर टिकी न रह सकी। उसने अपना मुख फेर लिया था। वह अंधकार में देख रहा था मैं आपके प्रति अविश्वास की बात कैसे कहूं पर मुझे तुभरण की शक्ति और दुष्टता दोनों पर पूरा विश्वास है। उसके हाथों से कोई भी नहीं बचा '

'तो फिर तुम आ क्या गए ?"

'सुमेधा आ रही थी—मैं क्या करता। मुझे उससे अधिक प्रिय और कुछ नहीं है। तुभरण के हाथों मेरी अन्य कोई संतान नहीं बची। एक यही शेष है, इसे नहीं छोड़ सकता।"

और तुम क्यों चली आयीं सुमेधा ?" राम ने पूछा।

सुमेधा कुंभकार की ओर देख रही थी 'मैं कुंभकार से प्रेम करती हूं।

यह आ रहा था, इसलिए मैं भी आ गयी।'

'तुम्हारी मा नहा आयी सुमेधा ?" सीता न पूछा।

'वह किसी भी प्रकार तयार नहीं हुई इसलिए उस छोडकर आना पडा।

'अच्छा सुना, बधुओ!' राम का स्वर कुछ ऊचा हा गया 'निस्सदेह तुम लोगो न जोखिम का काम किया है किंतु इस आश्रम क भीतर प्रवेश करन के पश्चात तुम्हारा जोखिम समाप्त हो चुका है। तुम्हारी रक्षा का दायित्व मुझ पर है सौमित्र पर है—सक्षम होन पर सीता और मुखर पर भी हागा। रात भर विश्राम करो। कल से तुम्हारी शस्त्र शिक्षा आरभ होगी ताकि आश्रम के बाहर भी हमारे निकट न रहन पर भी तुम अपनी तथा अपने साथियो की रक्षा कर सको।

'तुम्हारा नाम क्या है मित्र ?' लक्ष्मण न पूछा 'नाम न जानने के कारण, तुम्हे सम्बोधित करने म काफी परेशानी हो रही है।"

कुभकार।'

यह क्या नाम हुआ ?"

अन्य किसी शब्द से आज तक मुझे किसी न सबोधित नही किया।'

तो आज स तुम्हारा नाम उदघोष होगा मित्र।' राम बोल 'तुमने इस सपूर्ण क्षेत्र म आज से स्वतत्रता का उदघोष किया है।

कुभकार मुसकरा पडा।

आओ अब भोजन करें।' सीता ने सुमेधा का हाथ पकड अपने पास बठाया 'तुम यहा बठो सखि।'

सुमधा और उदघोष बठ गए किंतु झिगुर नही बठा।

सब की प्रश्नवाचक दृष्टि उसकी ओर उठ गयी।

झिंगुर के चेहरे पर कुछ इतने मिश्रित भाव थे कि समझना कठिन था कि वह क्या सोच रहा था—वह प्रम न भी था और पीडित भी उसके चेहरे पर श्रद्धा भी थी और अविश्वास भी, माग उसके सामने था और उस पर पग भी नही उठ रहे थे।

प्रभु!'

मैं प्रभु नही हू।" राम मुसकराए 'मैं एक साधारण आदमी हू।

तुम मुझे राम कहो, बाबा।"

"भद्र राम!" झिंगुर और भी सकुचित हो गया "इन बच्चों का अपराध क्षमा करना ये लोग भोजन की इच्छा से आपके साथ बैठ गए हैं। कड़ी भूख ने इनकी बुद्धि असंतुलित कर दी है।"

कोई नहीं समझा कि झिंगुर क्या कहना चाह रहा है। क्षण भर सब-कुछ अनबूझा ही रहा। पर तब झिंगुर फिर बोला, हम जाति के भील हैं, भद्र! और स्थिति से तुभरण के दास। हम आपके साथ बैठकर "

राम खिलखिलाकर हँस पड़े भोजन परोसो सीते!'

व झिंगुर से संबोधित हुए 'बाबा! इसे भूल जाओ कि तुम्हें क्या बताया गया है कि तुम क्या हो। याद केवल यह रखो कि तुम एक मनुष्य हो बस ही जस अन्य मनुष्य है। बड़े छोटे, ऊँच-नीच दास स्वामी, जाति पाँति के संबंध मनुष्य निर्मित है, और उनका निर्माण उन्होंने किया है जिन्हें उनसे कोई लाभ है। मैं मनुष्यों म मानवीय संबंध के अतिरिक्त दूसरा कोई संबंध नहीं मानता। और इस समय तो तुम राम के आश्रम के सदस्य हो। तुम्हारी जाति वर्ण गोत्र स्थिति—सब कुछ वही है, जो राम की है। बैठो और शांत मन से भोजन करो।"

राम ने झिंगुर का हाथ पकड़कर उसे अपने पास बैठा लिया।

झिंगुर बैठ गया, किंतु सब ने ही लक्ष्य किया कि वह सहज भाव से खा नहीं पा रहा है। जो कुछ उसने खाया भी वह उसकी भूख की दृष्टि से बहुत कम था।

भोजन के पश्चात उद्घोष ने अपनी बात कही, "राम! कल सवेरे ही तुभरण को मालूम हो जाएगा कि हम लोग गाँव से भाग गए हैं। उसे यह पता लगाते देर नहीं लगेगी कि हम यहाँ आए हैं। और यह पता लगते ही वह अपने बंधु बांधवों को लेकर सशस्त्र आक्रमण करेगा। हम गाँव से भागने और आपको हमें आश्रय देने का दंड देना चाहेगा "

तुम आश्वस्त रहो, मित्र!" लक्ष्मण ने उसकी बात पूरी नहीं होने दी यह तो समय आने पर देखा जाएगा कि कौन किसको दंड देता है। जब तक तुम्हें तुभरण के आक्रमण का भय हो, अथवा जब तक तुम द्वंद्व-युद्ध की दृष्टि से पूर्णतः समर्थ न हो जाओ तब तक मेरी कुटिया में रहो,

उसके पश्चात ही तुम्हारे लिए अलग कुटीर बनाएंगे।'

मैं भयभीत नहीं हूं सौमित्र! किंतु अपनी असमर्थता को जानता अवश्य हूं।'

जब तक तुम असमर्थ हो उद्‌घोष! तब तक हमारी सामर्थ्य पर भरोसा रखो। राम मुसकराए सौमित्र! सुमेधा और भिंगुर के लिए अतिथिशाला में प्रबंध कर दो। उद्‌घोष तुम्हारे अथवा मुखर के कुटीर में टिक जाएगा। कल इन सबके लिए कुटीर निर्माण तथा शस्त्र शिक्षा।'

प्रातः राम और सीता उठकर अपनी कुटिया से बाहर आए तो उद्‌घोष उनके सामने खड़ा था। वह सहज नहीं था उसका सँवलाया हुआ गेहुआ रंग इस समय एकदम पीला पड़ गया था।

राम विस्मित हुए तुम यहां कब से खड़े हो, उद्‌घोष? जल्दी उठ गए या तुम्हें रात को नींद ही नहीं आयी?'

उद्‌घोष ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह केवल फटी-फटी आंखों से उन्हें देखता रहा।

क्या बात है? राम मुसकराए रात कहीं तुभरण से भेंट तो नहीं हो गयी?'

नहीं, आर्य! वह खोये-से स्वर में बोला तुभरण से भेंट तो नहीं हुई, किंतु लगता है कि यहां रात को तुभरण या उसके साथी आए अवश्य थे। सुमेधा तथा भिंगुर अतिथिशाला में नहीं हैं।'

'क्या?'' सीता के मुख से विस्मय भरा चीत्कार निकला।

उद्‌घोष! तुम सौमित्र को बुलाओ।

राम सीता को साथ लिए हुए अतिथिशाला की ओर बढ़ गए।

लक्ष्मण, मुखर तथा उद्‌घोष के भी आने में अधिक देर नहीं लगी, किंतु तब तक राम कुटिया का अच्छी प्रकार निरीक्षण कर चुके थे। अतिथिशाला पर आक्रमण, उसे तोड़ने उस पर किसी प्रकार के बल प्रयोग का वहां चिह्न नहीं था। रात में किसी ने भी किसी प्रकार का कोलाहल नहीं सुना था। मुखर की कुटिया अतिथिशाला से बहुत दूर भी नहीं थी। वह यह मानने के लिए रत्ती भर भी तैयार नहीं था कि बाहर से कोई

आया हो, सुमेधा और झिंगुर को बलात ले गया हो, और मुखर ने एक भी शब्द न सुना हो।

"यह संभव ही नहीं है।" वह अत्यंत रोष से बोला, "मुखर के कान ऐसे नहीं हैं। रात को आश्रम का एक पत्ता भी खड़कता, तो मुखर के कान झनझना उठेंगे।"

"तो इसका एक ही अर्थ है कि सुमेधा और झिंगुर अपनी इच्छा से रात को आश्रम से निकल भागे हैं।" उदघोष का स्वर पहले से भी अधिक दीन हो गया।

"पर क्यों?" सीता जैसे अपने-आप से पूछ रही थीं।

"क्योंकि सुमेधा मुझसे प्रेम नहीं करती। उसे अपनी मां अधिक प्यारी है, वह कायर बाप झिंगुर प्यारा है। मैं उसे प्यारा नहीं..."

लक्ष्मण आगे बढ़कर उसे संभाल न लेते, तो उदघोष अवश्य ही चक्कर खाकर गिर पड़ता। वह लक्ष्मण का सहारा लेकर वट की छाया में बैठ गया। शेष लोग भी उसके आस-पास बैठ गए।

राम सोच रहे थे—यदि सुमेधा और झिंगुर को बलात ले जाया गया होता तो उसकी चिंता तुरंत की जानी चाहिए थी, किंतु परीक्षण से जिस निष्कर्ष पर वे लोग पहुंच रहे थे, कदाचित वही ठीक था। वे पिता पुत्री अपनी इच्छा से आश्रम छोड़कर, रात के अंधकार में अपने गांव लौट गए थे। उनकी चिंता का कोई लाभ नहीं। इस समय तो उदघोष की चिंता की जानी चाहिए थी। कदाचित उसने अपने जीवन का दांव सुमेधा पर लगाया था, और सुमेधा उसे छोड़ गयी थी। उसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी। यदि इस समय उसे न संभाला गया तो कुछ अघटनीय भी घट सकता है।

राम ने स्नेहपूर्वक उदघोष के कंधे पर हाथ रखा और अत्यंत कोमल वाणी में बोले, "तुम ऐसा क्यों मानते हो मित्र! कि सुमेधा तुमसे प्रेम नहीं करती। उसका अपने माता पिता से प्रेम तुम्हारे प्रेम के मार्ग में तो नहीं आता। संभव है कि वह पीछे छूट गयी अपनी माता के प्रेम में लौट गयी हो।"

उदघोष का वह शरीर जो क्षणभर पहले तक सर्वथा प्राणहीन लग

रहा था भयकर आक्रोश म तप उठा, 'नही यह बात नही है। अब तक मैं समझता नही था पर आज इस सुमेधा को अच्छी तरह समझ गया हू। मेरे प्रेम से उस क्या मिलता ? गाव छोडना पडता। इस या उस आश्रम म रहना पडता। प्राणा का जोखिम बना रहता। सभव है पीछे गाव म राक्षस उसकी मा की हत्या कर देते। मैं हू क्या ? एक कुभकार। मैं उसे क्या दे सकता था। एक निधन यक्ति का प्रेम दे ही क्या सकता है

उदघोष ! सीता ने टोका।

कहने दो सीते !' राम न कहा।

उदघोष बोलता गया 'सुमेधा ने ठीक किया, वह लौट गयी। अब उसकी मा और झिंगुर का कोई कुछ नही कहगा। उसे भी कोई कुछ नही कहगा। राक्षसा की सावजनिक भोग्या होकर रहेगी और उनकी जूठन खाएगी। मेरा पता बताकर मेरी हत्या करवाने म उनकी सहायता करेगी तो सभव है जब वे लोग मेरा वध कर मुझे खाने लगें तो मेरे शरीर की एक आध जूठी हड्डी उसकी तरफ भी फक द वह थकावट से हाफता हुआ भाव शू य आखा से बारी-बारी सब की ओर देखता रहा और फिर अपने भीतर डूब गया और मैं क्या-क्या स्वप्न देखता था। मैं सोचता था मैं तुभरण राक्षस का दास नही रहूगा। मैं किसी सुदर स्थान म एक छोटी सी कुटिया बनाकर रहूगा। सुमधा मेरी पत्नी होगी। हमारे छोटे छोटे सुन्दर बच्चे होंगे। हम दोनो मिलकर परिश्रम करेंगे और अपनी गहस्थी चलाएगे। अवकाश के समय मैं अपने घर के लिए बतन बनाऊगा उस पर सुदर-सुदर स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी अकित करूगा। अपने बच्चों के लिए छोटे छोटे खिलौने बनाऊगा। कुछ अ य मूर्तिया बनाऊगा। मैं मूर्तिकार बनूगा ' उसने फिर बारी-बारी एक एक यक्ति के चेहरे को देखा और अत मे उसकी आखें राम के मुख मडल पर टिक गयी। वह बोला तो उसका स्वर अत्य त हताश था 'मैंने जीवन से बहुत अधिक ता कुछ नही चाहा। क्या ईश्वर की इस सृष्टि मे मेरा इतना छोटा-सा स्वप्न भी पूरा नही हो सकता, राम ?'

राम ने उसे स्नेहभरी आखो से देखा, और फिर उनकी आखा और अधरो से मोहक मुसकान झरने लगी सुनो, उदघोष ! इस सृष्टि म मनुष्य

का बड़े-से-बड़ा स्वप्न पूरा होता है, किंतु मनुष्य की बनाई हुई इस व्यवस्था म नदी के किनारे पड़ी हुई मछली के लिए एक बूद पानी भी नहीं है। तुम रण तथा उसके जैसे सत्ताशाली राक्षसों की बनाई हुई इस दुष्ट व्यवस्था म तुम एक दास कुम्भकार पैदा हुए हो और दास कुम्भकार ही मरोगे। इसम सुमेधा ही नहीं सुमेधा जैसी सारी किशोरियां धन और सत्ता सपन्न राक्षसों की भोग्याए ही बन सकेंगी। पर स्वप्न देखना प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है। स्वप्न देखने वाला मनुष्य ही जीवित मनुष्य होता है। यदि तुम्हारे गाव म स्वप्न देखन वाला उदघोष ज म न लेता तो प्रत्यक कलाकार कुम्भकार का जीवन बिताने को बाध्य होता। किंतु अब एसा नहीं होगा। तुमने स्वप्न देखा है तुम उस पूण करने के लिए सघष करो और अपने साथ सपूण ग्राम का मुक्त करो। प्रत्येक उदघोष और सुमेधा का मुक्त करो प्रत्येक झिंगुर और उसकी पत्नी को मुक्त करो

पर झिंगुर तो मुक्त होना नहा चाहता। उदघोष बोला।

एसा मत कहो। राम फिर बोले झिंगुर हो या सुमेधा अथवा सुमेधा की मा मुक्त सब होना चाहते हैं किंतु पहले उनको बताया तो जाए कि व स्वतन्त्र हो सकते हैं। उनका तन ही नहीं मन भी बदी है। पहले उनके मन को मुक्त करो। उनको साहस दो उनको आश्वासन दो। उनका मन मुक्त होगा तो वह स्वप्न देखेगा, मन स्वप्न देखेगा तो तन मुक्त होगा '

"और सुमेधा के विषय मे भी वह सब मत सोचो जो तुमने अभी कहा है' सहसा बीच म सीता बोली वह तुम्ही से प्रेम करती है तभी तो तुम्हारे साथ चली आयी। यदि उसका पिता अभी साहस नहीं जुटा पा रहा उसकी मा का मन जोखिम नहीं उठा पा रहा और वह उन दोनों मे प्रेम करती है तो उसके लिए उसे अपराधिनी नहीं ठहराया जा सकता।

'आप सच कहती हैं देवि! उदघोष के चेहरे का रग लौट रहा था, क्या सचमुच सुमेधा मुझसे प्रेम करती है? क्या आप शपथपूर्वक यह बात कह सकती हैं?

' यद्यपि सुमेधा ने मुझसे इस बात की कभी चर्चा नहीं की" सीता

बोली किंतु उसके हाव भाव देखकर मैं शपथपूर्वक कह सकती हूं कि वह तुमसे ही प्रेम करती है उदघोष! उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करो।'

उद्यम करो उदघोष! लक्ष्मण बोले, तुम्हारी प्रिया उस राक्षस के पास बंदिनी है। यह मत समझो कि वह अपनी इच्छा से लौट गयी है। लौटाया है उसे तुभरण के आतंक ने। तुम उस आतंक को नष्ट करके ही, उसे पा सकोगे। पराक्रम करो। थक हारकर मत बैठो। संसार उद्यमी और पराक्रमी मनुष्य का है।

उदघोष उठकर खड़ा हो गया कदाचित आप लोग ही ठीक कहते हैं। मैं ही भ्रमित था। मैं सुमेधा को ही नहीं संपूर्ण ग्राम को तुभरण के आतंक से मुक्त करूंगा।

साधु उदघोष! साधु! राम बोले, आज से तुम्हारी भी शस्त्र शिक्षा आरंभ होगी।'

सीता और मुखर कुछ-कुछ शस्त्राभ्यास कर चुके थे। वे धनुष संभाल लेते थे बाण चला लेते थे, और बाण लक्ष्य से बहुत अधिक भटकता भी नहीं था। वे खड्ग को हाथ में संभाल लेते थे शत्रु पर प्रहार कर लेते थे और एक आध वार मेल लेते थे। अब उदघोष उनकी टोली में सम्मिलित हुआ था वह शस्त्र संसार में एकदम अपरिचित था। उसने धनुष बाण और खड्ग को कभी हाथ में लेकर देखा तक नहीं था। पहले पहल तो वह खड्ग को हाथ में लेकर उसकी धार तथा धनुष की लचक को ही देखता रहा। उसकी पकड़ में दबाव तथा भुजाओं में धनुष की प्रत्यंचा खींचने की वह शक्ति भी नहीं थी जो सीता और मुखर ने अभ्यास से अर्जित कर ली थी। वैसे भी उदघोष सामान्यतः अधिक कोमल और भावुक ही था किंतु उसमें सीखने की उत्कट इच्छा थी और वह परिश्रम के लिए तैयार था।

एक सप्ताह तक उदघोष निरंतर शस्त्राभ्यास में जुटा रहा। राम से निर्देश पाकर वह विधि सीखता और उसके पश्चात अभ्यास में जुट जाता। कभी कभी आवश्यकता होने पर वह सीता अथवा मुखर से भी सहायता लेता। आश्रम में लक्ष्मण के लिए कोई निर्माण-कार्य न होता, और वे कहीं बाहर न गए होते तो वह उनकी भी सहायता लेता। आश्रम के शेष

लोग कोई भी अन्य काय कर रहे होते तो भी उद्घोष केवल शरगाभ्यास ही करता ।

सप्ताह भर के अभ्यास से उसकी पंजियो म कुछ कठोरता आ गयी । उसके बाण लक्ष्य तक पहुचन लगे और उसे लक्ष्य भेद की आशा बधन लगी।

सन्ध्या समय वाल्मीकि आश्रम से चेतन आया। वह बहुधा मुखर से मिलने आया करता था। सदा के समान वह राम के समीप आ अभिवादन कर खड़ा हो गया। किंतु उसके पश्चात न उसने आश्रम का समाचार पूछा न मुखर से मिलने की उत्सुकता दिखाई।

राम न ध्यान से देखा—चेतन गभीर ही नही उदास भी था। उसका चेहरा बता रहा था कि वह अपना दुख छिपाने का नही, उसे विज्ञापित करने का प्रयत्न कर रहा था।

क्या बात है चेतन?" राम मुसकराए, "ठीक तो हो? यह चेहरा क्स लटका रखा है?'

चेतन ने सिर उठाकर एक बार राम को देखा और फिर से सिर झुका लिया।

'क्या बात है मित्र? लक्ष्मण का स्वर आशकित उत्कठा से पूर्ण था।

ऋषि ने बार-बार मुखर से मिलने आने की अनुमति देने म कोई आपत्ति की है? सीता ने वातावरण हल्का करना चाहा।

नही देवि!' चेतन बुदबुदाते-से स्वर म बोला ऋषि ने मुझे एक दुखद सूचना देने के लिए भेजा है।

क्या हुआ?" राम का स्वर गभीर किंतु स्थिर था, क्या किसी सनिक अभियान की सूचना है?'

'नही, आर्य! ऋषि भरद्वाज के आश्रम से सदेश आया है कि अयोध्या म सम्राट दशरथ का देहात हो गया है"

सब की दृष्टि चेतन पर टिक गयी। बोला कोई नहीं।

वह किसी राक्षस की आंखों में चढ़ गयी, तो उसके हाथों पड़ने से नहीं बचेगी। किसी भी दिन वह उससे छिन सकती है, किसी भी दिन

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि राम उनके गांव पर आक्रमण करें? आश्रम में वे केवल पांच व्यक्ति थे सीता समेत। क्या वे तुंभरण तथा उसके राक्षस साथियों को जीत सकते हैं? संख्या को देखते हुए तो ऐसा नहीं लगता किंतु राम और लक्ष्मण का अजेय आत्मविश्वास इसका प्रमाण है। यदि ऐसा न होता तो तुंभरण कब का आश्रम पर आक्रमण कर, सबको टुकड़े-टुकड़े कर चुका होता। जो तुंभरण उसका वध को चिंतित करना सहन नहीं कर सकता था वह उसका ग्राम छोड़, आश्रम में स्वतन्त्र रूप से रहना कैसे सहन कर रहा है? क्या उसे अभी तक कुम्हार का गांव में चल जाना मालूम ही नहीं हुआ? कैसे मालूम नहीं हुआ होगा? क्या इतने दिनों तक किसी भी राक्षस को बर्तन बनवाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी? नहीं ऐसा संभव नहीं है। तुंभरण को उसके विषय में अवश्य ही बात होगा किंतु या तो वह आक्रमण के लिए अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है या फिर वह राम और लक्ष्मण से डरकर चुप बैठ गया है।

क्या उसे सुमेधा तथा भिंगुर के गांव से जाने और फिर लौट आने के विषय में भी कुछ बात नहीं हुआ। कदाचित नहीं ही हुआ होगा नहीं तो गांव में रहते हुए भी उनका वध न होता यह असंभव था। जब से सुमेधा और भिंगुर आश्रम से भागकर गये थे उनसे भेंट नहीं हुई थी, किंतु राम और सीता ने मंदाकिनी आते-जाते दो एक बार सुमेधा को देखा था। वह उसी समय जल लेने आती है। किंतु अब वह पहले से कहीं अधिक सावधान हो गयी है। बात करने के लिए रुकती नहीं है। आते जाते कोई बात हो जाए तो हो जाए। तब से कभी आश्रम में भी नहीं आयी। उ घोष से तो नहीं हो मिली—अच्छा ही है। वह भी इस स्थिति में उससे मिलना नहीं चाहता। भेंट होने पर पता नहीं वह क्या कर बैठे

संध्या ढलने पर मुखर ने समाचार दिया कि उसने आश्रम के चारों ओर कई राक्षस घूमते तथा परस्पर कुछ संकेत इत्यादि करते देखे हैं। वे राक्षस ही थे, वनवासी नहीं। ग्रामवासी भी वे नहीं हो सकते थे, क्योंकि इधर किसी

साधारण ग्रामवासी के पास न तो वैसे भड़कीले राजसी वस्त्र थे, न कोई ग्रामवासी सोने के गहने पहनता था और न किसी के पास शस्त्र ही थे। उतना मोटा और उतना भड़कीला निश्चित रूप से राक्षस ही हो सकता था।

सूचना सबके सामने थी। इस बात में अधिक मतभेद नहीं था कि वे लोग आश्रम पर आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं। किंतु किस समय? यदि खुला आक्रमण करना होता तो दिन के समय करते किंतु उनके हाव भाव बता रहे थे कि वे आक्रमण रात में ही करेंगे।

आधी विजय हमारी हो चुकी। राम प्रसन्न मुद्रा में बोले, हम संख्या में केवल पांच हैं। उनकी संख्या बहुत अधिक है फिर भी वे छिपकर आक्रमण करना चाहते हैं इसका अर्थ स्पष्ट है कि वे हमसे भयभीत हैं। भयभीत व्यक्ति आधा तो पहले ही हार चुका होता है।'

फिर भी, भद्र राम! हमें सावधान रहना चाहिए।' उद्घोष बोला आप तुंभरण को नहीं जानते। वह बहुत नीच और दुष्ट है।"

लक्ष्मण विशेष रूप से प्रसन्न मुद्रा में थे, 'जितना भी नीच और दुष्ट है उसे आने दो। मुझसे तो उद्घोष का कष्ट देखा नहीं जाता। आज तुंभरण आ जाए तो तुम्हारा विरह तो समाप्त होगा। क्यों बंधु! यदि तुंभरण का वध हो जाए तो सुमेधा से तुम्हारा विवाह होने में कोई बाधा तो नहीं रह जाएगी न?'

सीता हंस पड़ीं लक्ष्मण तो समझते हैं कि तुंभरण का वध सुमेधा के स्वयंवर की शर्त है। ऐसा नहीं है देवर! और यदि ऐसा हो तो तुम्हें और अधिक सावधान रहना चाहिए। कहीं तुमने तुंभरण का वध कर दिया, तो सुमेधा का विवाह उद्घोष के साथ कैसे होगा?

उद्घोष लजाकर मौन हो गया। सुमेधा की बात बीच में आ जाने से, युद्ध की बात कहीं पीछे रह गयी थी।

किंतु राम संभावित आक्रमण के विषय में गंभीरता से सोच रहे थे। उन्होंने सिर उठाकर सबको देखा, वैसे तुंभरण का आक्रमण बहुत गंभीर आक्रमण नहीं होगा। उसके पास न किसी योद्धा के युद्ध-कौशल की ख्याति इस सारे क्षेत्र में मैंने नहीं सुनी। होगा वह खिलवाड़ ही। फिर भी थोड़ी-

थे, धनुर्धारी तीन चार ही थे। लक्ष्मण मन ही मन उनकी युद्ध-बुद्धि पर मुसकराए।

जब अंतिम राक्षस भी लक्ष्मण के वृक्ष से होकर आगे बढ़ गया तो पीछे से लक्ष्मण ने साधकर बाण मारा बाण अंतिम राक्षस की पीठ में लगा—वह चीखकर भूमि पर गिरा।

चीख सुनकर सारे राक्षस पलटे। उन्होंने उत्पात उठा उठाकर प्रहार करने वाले को खोजना आरंभ किया। वे समझ गए थे कि आश्रम में कोई जाग रहा था और उन लोगों का आना अब गुप्त नहीं था। उन्होंने भी स्वयं को छिपाने का प्रयत्न छोड़ दिया था। उनका चीत्कार सुनकर आश्रम के वृक्षों पर सोए पक्षी तक उड़ गये थे।

राक्षस धनुर्धारी आगे आए। उन्होंने धनुष को उठाकर शत्रु को देखना आरंभ किया, किंतु उसी क्षण बहुत कम अंतराल में उदघोष, मुखर तथा सीता के धनुषों ने बाण छोड़ दिये।

लक्ष्मण की ओर पलट जाने के कारण इस बार फिर बाण राक्षसों की पीठों पर पड़े थे। वे दोनों ओर की मार से एकदम अव्यवस्थित हो उठे और क्षण भर में ही अपने शस्त्र उठाए चीखते हुए आश्रम के फाटक की ओर भाग गये।

बहुत थोड़े से समय में ही वे लोग आश्रम की सीमा से बाहर हो गये उनके पीछे एक राक्षस चिल्ला चिल्लाकर उन्हें पुकारता खड़ा रहा। शायद उसका विचार था कि वे लोग उसके पुकारने से लौट आएंगे, किंतु जब उसके साथी पूरी तरह आश्रम की सीमा के बाहर हो गये और उनके लौटने की कोई संभावना शेष नहीं रह गयी, तो वह भी चौकन्ना होकर आगे बढ़ा।

तभी सौमित्र वृक्ष से उतरकर धनुष साधे हुए उसके सम्मुख आ खड़े हुए।

'शस्त्र फेंको।' उन्होंने आदेश दिया।

राक्षस का चेहरा भय से पीला पड़ गया। खड्ग उसके हाथ से छूटकर भूमि पर गिर पड़ा 'मेरी तुमसे कोई शत्रुता नहीं है।' वह घिघिया रहा था।

'रात के अंधकार में तुम इतने सशस्त्र साथियों के साथ आश्रम में आग

लगाने और मार काट करने आए। अभी तुम्हारी मुझसे शत्रुता ही नहीं है।" लक्ष्मण कड़ककर बोले लौटो।

राक्षस प्राणहीन ढंग से मुड़ा।

उदघोष भी अपने वृक्ष से नीचे उतर आया और सौमित्र के साथ साथ चलने लगा किंतु राक्षस उसे पहचानने की स्थिति म नहीं था। भय के कारण उसकी आखो के सम्मुख पूरी तरह अधकार छा चुका था। वह किसी को भी नहीं देख रहा था

'यही तुभरण है।' उदघोष ने धीरे म लक्ष्मण को बताया।

लक्ष्मण ने देखा—उदघोष की मुट्ठिया भिची हुई थी। उसके चेहरे पर घृणा और प्रतिहिंसा थी।

आह।" लक्ष्मण मुसकराए, बस इतना ही था इसका साहस और बल। उदघोष। अपने को सयत करो भाई। हम युद्ध बन्दी पर प्रहार नही कर सकते।

तुभरण राम के कुटीर के सम्मुख पहुचा। सीता और मुखर अपने कुटीरो से निकल आए। राम भी दूसरी ओर से आ गए। उन्होने देखा उनके सम्मुख भड़कीले वस्त्र पहने बहुत सारे मूल्यवान आभूषण धारण किए असाधारण रूप से स्थूलकाय गौर वर्ण का एक व्यक्ति मुह लटकाए खड़ा था। वह भय से काप रहा था।

तुभरण ने एक बार भी दृष्टि उठाकर नहीं देखा कि उसके सम्मुख कितने व्यक्ति थ, और उनम कौन-कौन था।

राम न लक्ष्मण स उसका परिचय पाकर उस नाम स ही सबोधित किया तुभरण। रात क इस समय इतन सशस्त्र साथियो के साथ हमारे आश्रम का फाटक जलाकर, भीतर घुसन का क्या अर्थ है?'

मेरी तुमसे कोई शत्रुता नहीं है" तुभरण फिर पहले क ही समान घिघियाया 'मैं तो मैं तो मुझे क्षमा कर दो।

'तुम यहा क्या करन आए थ?' राम का स्वर कठोर हो गया।

'मैं तुम लोगो को तुमस मेरी तुभरण बुरी तरह हकला रहा था 'मैं तो अपने दास कुभकार को खोजने आया था। वह मेरे घर से भाग आया है।

राम ने उद्घोष को संकेत किया। उद्घोष जाकर तुभरण के सम्मुख खड़ा हो गया।

"इसे पहचानते हो ?"

तुभरण ने अपनी डरी हुई आंखें उद्घोष पर टिकाई। अस्वीकार में सिर हिलाते हुए सहसा उनकी आंखों में पहचान उतर आयी, "यही है।"

"यह मेरे आश्रम का विद्यार्थी है, उद्घोष!" राम बोले, "यह तुम्हारा दास कैसे है ?"

तुभरण ने विकल आंखों से राम को देखा, "इसके पिता को मैंने अपने बल से जीता था, इसलिए वह मेरा दास हुआ। यह उसका पुत्र है, इसलिए मेरा दास है।"

"तुम्हें आज इसने युद्ध में जीता है।" राम बोले, "आज से तुम उद्घोष के दास हो जाओगे ?"

"नहीं!" तुभरण भय से चीखा, "नहीं! नहीं!!"

"तुभरण!" राम का स्वर दृढ़ था, "दास प्रथा अमानवीय है—चाहे वह व्यक्ति की हो, समाज की हो या राष्ट्र की। हम उसे स्वीकार नहीं करते। तुम बलात किसी को अपने अधीन नहीं रख सकते। उद्घोष स्वतंत्र मनुष्य है। ... बस तुम्हें अपने बल का गुमान हो, तो तुम उद्घोष से द्वंद्व युद्ध कर सकते हो। हो तैयार ?"

उद्घोष अपना खड्ग संभाले आगे बढ़ा। उसके जीवन में इतने उत्साह और उल्लास का क्षण पहले कभी नहीं आया था। किंतु तुभरण का चेहरा और भी रक्तहीन हो उठा, "नहीं।"

राम हंस पड़े, "तुम तभी तक शूर हो, जब तक दूसरा पक्ष तुमसे दुर्बल है। दूसरे पक्ष के समर्थ होते ही, तुम कायर के समान भाग जाओगे। बंदी के प्राण लेना हमारी नैतिकता के विरुद्ध है। इसलिए मैं तुम्हें एक छोटा-सा दंड देकर मुक्त करता हूं। किंतु फिर कभी तुम आश्रम के आस पास दिखे गये, तो तुम्हें मृत्यु-दंड दिया जाएगा।"

राम लक्ष्मण की ओर मुड़े, "इसके हाथ पीठ पीछे बांध दो। इसकी पीठ और छाती पर, लिखकर लगा दो कि यह कायर अंधकार में अचेत, दुर्बल लोगों की हत्याएं करता है, और समय प्रतिपक्षी को देखकर भय से

काप उठता है। यह भी लिख दो कि इस उद्घोष की द्वंद्व युद्ध की चुनौती स्वीकार करने का साहस नहीं हुआ है। और उद्घोष ! तुम इसे पशु के समान हांककर आश्रम की सीमा से बाहर खदेड़ आओ।'

सुभरण को खदेड़कर उद्घोष वापस लौटा तो अकेला नहीं था। उसके साथ वाल्मीकि आश्रम के चार ब्रह्मचारी थे जिनका नेता चेतन था।

"चेतन तुम !" मुखर सबसे पहले बोला, "आधी रात को।"

"आवश्यक समाचार है।" चेतन बोला, "किंतु यहां क्या हो रहा है ? आप लोग जाग ही नहीं रहे, पर्याप्त सक्रिय और स्फूर्त लग रहे हैं। फाटक भी जला पड़ा है।"

"यहां एक मजेदार घटना घटी है।" राम बोले, "वह कहानी तुम्हें सवेरे सुनाएंगे। तुम समाचार कहो। ऐसा क्या है कि ऋषि ने तुम्हें आधी रात को भेज दिया ?"

"भद्र ! अयोध्या का समाचार है।"

"क्या ?"

"भरत लौट आए हैं। उन्होंने अपने अभिषेक का विरोध किया है और आपको मनाकर वापस अयोध्या ले जाने के संकल्प की घोषणा की है। किंतु..."

"किंतु क्या ?" लक्ष्मण बोले।

"उन्होंने सेना को प्रस्तुत होने का आदेश दिया है। वे चतुरंगिणी सेना के साथ आपको मनाने आएंगे।" चेतन के मुख पर एक वक्र मुसकान थी।

"धोखा !" लक्ष्मण बोले, "मनाने के नाम पर सैनिक अभियान।"

"अभी चलकर सब लोग सो रहो।" राम बोले, "शेष बातें कल होंगी।"

राम अपनी कुटिया में चले आए। पीछे-पीछे सीता आयीं।

"क्या सोच रहे हैं आप ?" सीता उत्कंठित हो राम की ओर देख रही थीं।

"निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता।" राम स्थिर वाणी में बोले, "सौमित्र की आशंका भी ठीक हो सकता है और भरत की भावना भी

सत्य हो सकती है।" सहसा वे मुसकराए, 'तुम परेशान मत हो, सौते! आशंका की कोई बात नहीं है। जो आशंका सौमित्र के मन में है वह सुयज्ञ चित्ररथ त्रिजट तथा गुह के मन में भी होगी। भरत की सेना आएगी तो मेरे मित्र भी अपने सैनिक-असैनिक योद्धा साथ लेकर आएंगे। फिर यदि भरत यह समझता है कि वह चित्रकूट में युद्ध करेगा तो मानना पड़ेगा कि वह सैनिक अभियानों में कच्चा है। यहां का भूगोल सैनिक अभियानों के उपयुक्त नहीं है। वह हार जायगा वैसे ऐसी आशंका होने पर हम उसके पहुंचने से पूर्व ही उसकी मन स्थिति की सूचना मिल जाएगी।"

'आप पूर्णत आश्वस्त हैं?'

'पूर्णत।'

प्रात एक असामान्य से कोलाहल से राम की नींद टूटी। उषा की सुनहली आभा अभी नहीं फूटी थी। अभी तो आकाश पर से अंधकार की घनी परत में काई दरक भी नहीं पड़ी थी पक्षियों का संगीतमय कोलाहल भी आरंभ नहीं हुआ था।

पर राम की नींद टूट गयी थी। दूर कहीं हल्का सा कोलाहल सुनाई पड़ रहा था जो क्रमश आश्रम की ओर बढ़ रहा था।

राम उठकर बैठ गए। सीता को जगाया और कुटिया से बाहर निकल आए।

अगले ही क्षण वे पांचों कवच धारण कर कमर में खड्ग बांधे हाथों में धनुष बाण लिए अपने शस्त्रागार और कुटीरों को घेरे सन्नद्ध खड़े थे। चेतन तथा उसके साथी अतिथिशाला के भीतर ही रहे।

आश्रम के जले हुए फाटक में से पहले कोलाहल भीतर आया और उसके बाद एक भीड़।

राम ने अपना धनुष वाला हाथ झुका दिया। यह संकेत सबके लिए था—युद्ध नहीं होगा। सबके हाथ शिथिल पड़ गए। आने वाली भीड़ थी सेना नहीं। वे लोग व्यूह बद्ध नहीं थे। उस सारी भीड़ में शस्त्र भी दो-चार लोगों के पास ही थे, धनुष बाण तो किसी एक के पास भी नहीं था। यह भीड़ लड़ने नहीं आ रही थी। उसमें आक्रमण की उग्रता नहीं थी।

उनकी भंगिमा पर्याप्त भिन्न थी।

भीड के निकट आने पर सब ने आश्चय स देखा—भीड की अग्रिम पक्ति म, माग निर्देशन करत से झिंगुर और सुमेधा थ।

"सुमेधा !" उदघोष जैसे अपने आपसे बोला।

भीड थम गयी। कोलाहल रुक गया।

सुमेधा आकर उग्घोष के साथ खडी हो गयी। वह उसके कवच पर हाथ फिराकर स्पश से जान लेना चाहती थी कि वह क्या है

झिंगुर ! तुम कैसे आए ? राम मुसकराए तुम तो रात के अधकार म छिपकर भाग गए थे।'

इसीलिए तो रात के अधकार म छिपकर वापस भी लौटे हैं। लक्ष्मण बोले 'सुबह तो हो लने देत आय झिंगुर! या अपने नाम का प्रभाव छोड नही पाओग ?"

झिंगुर हसा। आज वह सारे सकोचो-ग्रथियो स मुक्त लग रहा था। आज वह सिमटा हुआ न होकर, उन्मुक्त था भद्र राम ! मुझे क्षमा करें। तब मैं तुभरण का आतक अपन मन से निकाल नही पाया था। तब मैं आपका सामर्थ्य भी नही जानता था अत आप पर विश्वास नहीं कर सका। किंतु "

किंतु क्या बाबा ?' सीता ने पूछा।

'किंतु कल प्रात से ही राक्षस आपके आश्रम पर आक्रमण करने की तयारी कर रह थे—ग्राम का प्रत्येक निवासी इस बात का जानता था। प्रत्येक ग्राम ग्रामवासी की सहानुभूति आपके साथ थी किंतु हम म से कोई आप तक सूचना पहुचाने का साहस नही कर सका।" झिंगुर क्षण भर के लिए रुका, रात को जब आश्रम पर आक्रमण हुआ तो कुछ ग्रामवासी छिपकर राक्षसो के पीछे-पीछे आए। उन्होने यहा हुई राक्षसो की दुर्गति देखी। उन्होंने देखा कि जो राक्षस ग्रामवासियो के सम्मुख सवशक्तिमान थ जिनके सम्मुख कोई सिर नही उठा सकता था वे मात्र पाच शस्त्रधारियों के सम्मुख नही टिके। बिना युद्ध किए भाग गए। और फिर तुभरण का भी उन्होन देखा, जो हम म से ही एक इस कोमल युवक कुभकार से द्वद्व-युद्ध का साहस नहीं कर सका। गाव म य सारी

सूचना पहुँची और हम में से अनेक के मन में गर्वित तुभरण और राक्षसों का आतंक नष्ट हो गया और

और तुम लोगों को प्रातः भ्रमण की सूझी।' लक्ष्मण मुसकराए।

यह तो सूझी ही। झिंगुर कह रहा था। उसने अपने साथ खड़े युवक को उसकी भुजा से पकड़कर आगे किया, यह है धातुकर्मी। इसने अपनी लोहे की एक छड़ से तुभरण पर प्रहार किया। उसके खड्ग को अपनी छड़ पर सहा और तुभरण को यम के घर पहुँचा दिया। फिर क्या था सारे गांव में विप्लव हो गया।

साधु! मित्र! राम बोले, क्यों सौमित्र! यह तो तेजस्वी पुरुष है!

अवश्य! लक्ष्मण की आंखों में प्रशंसा का भाव था, इसे अब धातुकर्मी से शस्त्रकार बन जाना चाहिए।

तुम ठीक कह रहे हो।'

किंतु अन्य राक्षस कहां गए?' सीता ने पूछा।

वे लोग भी तो कुत्ते के समान दुम दबाए हुए गांव में आए थे।' धातुकर्मी बोला, गांव का विप्लव देखकर उसी प्रकार दुम दबाए हुए वन की ओर भाग गए।

वे लोग अपने मित्र राक्षसों के पास सहायता के लिए गए होंगे, उद्घोष बोला, वे अवश्य लौटकर गांव में आएंगे और फिर पहले से भी अधिक अत्याचार करेंगे।

इसीलिए तो हम सब आपके पास आए हैं। झिंगुर उत्साह के साथ बोला, अब हमारे मन में से राक्षसों का भय समाप्त हो गया है। वे लौटेंगे तो हम प्रतिरोध करेंगे। उसके लिए आवश्यक है कि आप हमें शस्त्र और शस्त्र-शिक्षा दें। हम उनसे युद्ध कर उन्हें भगा देंगे अथवा मार डालेंगे।'

'आपका प्रस्ताव श्लाघ्य है आर्य झिंगुर!' राम बोले, और यही राक्षस समस्या का समाधान भी है। आप लोगों को सशस्त्र होना भी चाहिए। इस नयी-नयी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए आप लोगों को सैनिक शिक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। इन सारे कामों के लिए हम पूरी तरह

से आपकी सहायता करेंगे। किंतु उसके साथ एक अन्य मोर्चे पर भी आप लोगों को लड़ना होगा। आपको अपने गांव में मानव ममता पर आधृत समान अधिकारों वाला समाज बनाना होगा जिसमें उत्पादन के साधनों पर सबका समान अधिकार हो। नये समाज की नयी नैतिकता स्थापित करनी होगी, अन्यथा आपके अपने ग्रामवासियों में से ही गलत व्यवस्था के कारण अनेक राक्षस जन्म लेंगे जो आज आपके मित्र हैं वे कल आपके स्वामी बन जाएंगे। अतः आपका प्रशिक्षण लंबा है '

तो ?"

भीड़ के चेहरों पर अनेक आशंकाएं थीं।

'तो आप सबका इस आश्रम में रहना व्यावहारिक नहीं है। अब, जब आप अपने गांव के स्वामी स्वयं हैं इस आश्रम में नया ग्राम बनाने की आवश्यकता नहीं है। हमारे पास जितने शस्त्र हैं वे आप सबके लिए पर्याप्त भी नहीं हैं। अतः आपको अपने शस्त्रों का निर्माण भी स्वयं ही करना होगा। आप लोग अपने गांव में लौट जाएं। उद्घोष आपके साथ जाएगा और शस्त्र निर्माण की व्यवस्था करेगा। लक्ष्मण के कहे अनुसार आपके मित्र धातुकर्मी अब शस्त्रकार बनें। वे तथा उनके सहयोगी आपकी धातुओं को शस्त्रों में ढाल देंगे। प्रशिक्षण सहायता निरीक्षण तथा निर्देशन के लिए सौमित्र प्रतिदिन आपके गांव जाएंगे। स्त्रियों के प्रशिक्षण के लिए आवश्यकतानुसार सीता भी जाएंगी। मुखर भी आवश्यकता पड़ने पर जाएगा और इसके पश्चात भी आवश्यकता हो तो यह आश्रम आपका है—मैं आपकी सहायता के लिए प्रस्तुत हूं।'

राम मौन हो गए। कुछ क्षणों के लिए भीड़ पर,चमगादड़ के समान अनिश्चय आ टंगा, किंतु धीरे धीरे वायुमंडल की धूल के समान वह भूमि पर बैठ गया।

ठीक है। उद्घोष ने कहा मैं जाऊंगा।'

कोई असुविधा तो नहीं बंधुओ ?" राम ने पूछा।

'नहीं। आप ठीक कह रहे हैं।" झिंगुर बोला हमारा अपने घरों में अपने परिवारों के साथ रहना अधिक सुविधाजनक है। अब देखिए न ! सुमेधा की मां एक बार फिर मेरे साथ नहीं आयी।"

चलो मित्रो !" घातुकर्मी बोला चलो गाव की ओर।
उन लोगो ने हाथ जोडकर, नमस्कार किया और लौट चल।
'जा रही हो सुमधा ?" सीता वोली।
हा दीदी ! 'सुमेधा मुसकराई 'अब ता उदघाप भी गाव लौट रहा है। तुम कब आओगी हमारे गाव दीदी ?'
तरे विवाह पर।'
धत ! सुमेधा ठिठककर खडी हो गयी पर फिर गतिमान हो उठी, अब तो मैं प्रतिदिन आऊगी दीदी ! प्रतिदिन !'
वह भी भीड क पीछे भाग गयी।

सध्या समय भोजन करने बठे, तो सब न ध्यान दिया कि मुखर अतिरिक्त रूप स चुप था। वह जैसे अपने भीतर किसी उधेड बुन म लगा हुआ था।
क्या बात है मुखर ?' सीता ने उसे टोका आज भोजन म ध्यान नहीं है। सुमधा और उदघोप के विवाह से तुम्हे अपनी कोई सुमेधा तो याद नही आ गयी ?'
नही, दादी ! छलनी म छने प्रकाश के समान गभीरता म से मुखर की मसकान उभरी, मेरी कोई सुमधा नही है। हा मुझे अपना कुटुम्ब याद आ गया।
राम मुखर के चेहरे की रेखाओ का पढ्ने का प्रयत्न कर रहे थ कुटब याद आ जाए ता कोई बुराई नही, मुखर ! किंतु तुम्हारी याद पीडायुक्त है। इसलिए उसक कारण की चिंता हम भी हाती है।'
मुखर तनिक खुलकर मुसकराया चिंता की कोई बात नही आय ! तुभरण की मत्यु और उदघाप क ग्राम-वधुओ की मुक्ति से मुझम कुछ अतिरिक्त उत्साह जागा है। मुझे लगता है कि मैं भी अपन गाव लौटकर उसे मुक्त कराऊ और अपने कुटुब का प्रतिशाध लू।
लक्ष्मण खुलकर हसे बहुत अच्छे मुखर ! उदघोप का ग्राम ही मुक्त नही हुआ तुम्हारा मन भी मुक्त हो गया।'
राम गभीर ही रह यह तो प्रसन्नता का विपय है मुखर ! किंतु तुम्हे जान की अनुमति देने से पूव हम अनेक बाता पर सोच विचार कर

लना चाहिए।'

'किन बातों पर राम?"

धातुकर्मी के प्रहार से तुभरण की मृत्यु हो गयी तो ग्रामवासी उत्साहित हो उठे और राक्षस भयभीत होकर भाग गए। किंतु यदि उस प्रहार से तुभरण बच जाता और उसके खडग के प्रहार से धातुकर्मी मारा जाता तो क्या स्थिति होती?"

राक्षस और अधिक क्रूर हो उठते।" मुखर सिहर उठा "ग्राम-वासियों का तेज पूर्णत नष्ट हो जाता। इस क्षेत्र म फिर कोई राक्षसों के विरोध का साहस न करता।

इन परिणामों को कभी उपेक्षा मत करना मुखर!" राम सहज हो गए, 'तुम एकाकी जाकर खर और दूषण के सैनिकों से टकरा जाओगे तो तुम्हारी निश्चित मत्यु है, और उसका प्रभाव राक्षसो के आत्मबल को बढ़ाने म सहायक होगा। ऐसा कोई काम मत करना मेरे मित्र! ऐसा बलिदान पाप है जिससे अत्याचारियों का आत्मबल बढे। उससे तो कहीं अच्छा है कि तुम ऋषियों के समान राक्षसों के प्रतिरोध मे, जन सामान्य म आक्रोश जगाने के लिए सार्वजनिक ढग से आत्मदाह कर लो।"

नहीं, राम! मैं केवल बलिदान नहीं चाहता, मैं तो प्रतिशोध चाहता हूँ।' मुखर बोला "मेरे मरने का क्या लाभ यदि राक्षसो की तनिक-सी हानि भी न हो।'

तो मित्र! अपने आपको तैयार करो। सारे पीड़ितों को तैयार करो।' राम ने सहास कहा "अकेला बलिदान कुछ नही करेगा। शुभ कर्मों के लिए जागरण सगठन और बलिदान—तीनों की आवश्यकता होती है। नहीं तो, मैं भी कब से जा रावण से टकराया होता और छोटे मोटे तुभरणों का स्वत समाप्ति हो जाती। किंतु अभी सगठन नही है अत रावण से टकराना मूर्खता होगी। यह मत समझना कि मैं इक्के-दुक्के बलिदानों का महत्त्व नहीं मानता। उनका महत्त्व अपने स्थान पर है। उद्घोष के ग्राम की घटना के समान विस्फोट का भी अपना महत्त्व है। ऐसे विस्फोट असफल भी हो जाए तो खाद का काम तो करते ही हैं। किंतु उन विस्फोटों के पीछे पूर्व-योजना नही होती—वह तो प्राकृतिक प्रक्रिया है। तुम्हारा

प्रयास उससे भिन्न होगा।"

मुखर की आकृति पर सहमति का भाव था "ठीक कहते हैं आप।"

भोजन के पश्चात सब लोग अपने-अपने कार्यों में लग गए। किंतु राम के मन में मुखर से हुई बातचीत अनेक नये प्रश्न जगा गयी थी।

पहले भी उनके मन ने सिद्धाश्रम और कालकाचार्य के आश्रम की तुलना की थी। आज फिर कालकाचार्य का बिंब बार बार उनके मन में उभर रहा था। वे मुखर और उद्घोष से अजाने ही उनकी तुलना कर रहे थे। राम को अपने आश्रम में आया देखकर हर बार कालकाचार्य के ▮ द्वम ग्रस्त हो जाते थे। उनमें उत्साह कम और संकोच अधिक होता था। जैसे वे राम को उस आग के समान मानते थे जो दूर रहकर प्रकाश तो देती है किंतु निकट जाने पर ताप भी देती है। उनकी सावधानी ध्यान देने योग्य थी। खुलकर न तो कभी उन्होंने राम का स्वागत किया था न उन्हें अपने आश्रम पर निमंत्रित किया था। राम को सदा लगा कि वे ऐसे भीरु सज्जन हैं जो यह तो जानते हैं कि शोषक कौन है वे यह चाहते भी हैं कि कोई उस शोषक का अंत कर दे, किंतु यह नहीं चाहते कि उनका अपना नाम कहीं बीच में आए। वे उस वर्ग के प्रतिनिधि थे जो अपनी समस्त सद्भावनाओं और न्याय बुद्धि के बावजूद दुष्ट का ताडन करने के लिए साहस नहीं जुटा पाता है जो संघर्ष में से स्वयं को बचाए रखना चाहता है जो अपना दामन बचाकर शांति की आकांक्षा करता है। पर वह शत्रु नहीं है। उस वर्ग से भी निरंतर संपर्क बनाए रखना होगा उसके आत्मबल को जगाने का प्रयत्न करते रहना होगा। शायद उनका आत्मबल जाग ने भी जागे

और फिर मुखर के समान राम को भी अपने कुटुंब का ध्यान हो आया। अभी तक अयोध्या से भरत के प्रस्थान का समाचार नहीं था। वहां क्या घटित हो रहा था—या कुछ भी घटित नहीं हो रहा था? संभवत वहां ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था जिसकी सूचना उस दिन तक तुरंत पहुंचाई जाती। नहीं तो कोई-न-कोई उन तक अवश्य पहुंचता। किंतु जब तक निश्चित समाचार मिल नहीं जाता तब तक राम आगे नहीं बढ़ सकते। उन्हें यहीं रुकना होगा।

रात गए बड़ी देर तक राम भविष्य के विषय में सोचते रहे।

६

कुटिया के द्वार पर एक पेड़ की छाया में सीता छोटा मोटा घरेलू काम लिए बैठी थी। उनके पास ही बैठी सुमेधा तकली पर सूत कात रही थी। बीच बीच में बात भी हो जाती थी और फिर दोनों का ध्यान अपने-अपने काम की ओर चला जाता था।

दोपहर तक का अपना काम समाप्त कर सुमेधा हाथों को उलझाए रखने का कोई काम लेकर प्रायः सीता के पास आ बैठती और वन-ग्राम के अनेक समाचार दे जाती। उद्घोष बहुत व्यस्त था—कभी शस्त्र-निर्माण कभी प्रशिक्षण कभी अभ्यास कभी खेतों में काम कभी गांव के कार्यालय में कभी मूर्ति निर्माण कभी कुछ। सुमेधा भी अपने ढंग से व्यस्त थी किंतु अपनी सारी व्यस्तता में भी सीता के पास आने का समय वह निकाल ही लेती, सिवाय उन दिनों के जिन दिनों सीता को उनके ग्राम जाना होता था।

इधर लक्ष्मण भी काफी व्यस्त हो उठे थे। वन में ईंधन कंद मूल फल अथवा आहार का लाना तो नित्य-कर्म था ही, कुटीरों को दृढ़ करने बाड़े की मरम्मत तथा अन्य कामों के लिए लकड़ी की अतिरिक्त आवश्यकता भी रहती थी। अनेक कार्यों से वन के विभिन्न आश्रमों तथा अनेक ग्रामों में भी जाना पड़ता था। सम-वयस्क युवकों से उनका संपर्क स्थापित हो गया था। उनके प्रभाव-क्षेत्र में आश्रमों के ब्रह्मचारी भी थे और ग्रामवासी

युवक भी। लक्ष्मण उनके नेता बन उन्हें शस्त्रों का अभ्यास कराया करते थे। दोपहर के भोजन के पश्चात् प्रायः लक्ष्मण इसी शिक्षण के लिए चले जाया करते थे।

राम ने सीता का शस्त्राभ्यास करा दिया था—मुखर को सक्षम बना दिया था और अब सुमेधा भी दोपहर को सीता के पास आ जाती थी। उसने उद्घोष से थोड़ा-बहुत शस्त्र-परिचालन भी सीख लिया था। राम भी अपने परिवेश पर दृष्टिपात करने के लिए चले जाया करते थे।

किंतु अपने आश्रम से अधिक दूर वे नहीं जाते थे। सीता एक सीमा तक ही अपनी सहायता कर सकती थी। आवश्यकता होने पर सहायता के लिए मुखर भी वहां था, किंतु शस्त्रागार अपनी रक्षा में स्वयं सक्षम नहीं था। राम अथवा लक्ष्मण में से एक का आश्रम के समीप ही कहीं बने रहना आवश्यक था।

आज भी सुमेधा को, सीता के पास आया देख, वे थोड़ी देर के लिए कालकाचार्य से मिलने चले गए थे।

सहसा सीता ने आश्रम के बाड़े के फाटक के खुलने का शब्द सुना। उन्होंने विस्मय से गर्दन घुमाकर उस ओर देखा—इतनी जल्दी तो न राम के आने की आशा थी, न लक्ष्मण की।

आगंतुक कोई अन्य ही था—सीता के लिए पूर्णतः अपरिचित। आरंभिक दिनों में इस प्रकार किसी अपरिचित को समीप आते देखकर सीता बुरी तरह चौंक उठती थीं। किंतु अब कुछ-कुछ अभ्यास हो गया था। इस वन में भी खोज-खोज कर दूर और पास के लोग, राम को मिलने के लिए आते थे। राम थे ही ऐसे—किसी भी व्यक्ति के लिए सहज सुलभ, खुले तथा ईमानदार। कोई भी व्यक्ति आकर उनसे अपनी समस्याएं कह, परामर्श और यदि आवश्यक हो तो सहायता प्राप्त कर सकता था।

कदाचित आगंतुक भी कोई ऐसा ही व्यक्ति रहा होगा।

आगंतुक स्थिर पगों से अब सीता और सुमेधा की ओर बढ़ रहा था। सीता ने देखा—वह कोई स्थानीय व्यक्ति नहीं लगता था। वह ऊंचा, लंबा और स्वस्थ युवक था। वय चालीस-बयालीस के आस-पास रहा होगा।

रंग उसका गोरा था, सिर पर लव-लव पीत केश थ। आखें कुछ नीली थी और उसन राजसी वेशभूषा धारण कर रखी थी। सीता के ज्ञान के अनुसार इस पुरुष को उत्तर कुरु के उस पार का वासी होना चाहिए था। इतनी दूर से यह राजपुरुष यहां क्या करने आया है ?

वह सीता तथा सुमेधा से उचित दूरी बनाए शिष्ट भाव से खड़ा हो गया 'क्या आय राम का आश्रम यही है ?'

उसका स्वर सुनकर सीता चौंक उठी। कैसा कर्कश स्वर था इस पुरुष का—एकदम वनैल कौवे का-सा। और आखें भी तो वैसी ही थी—छोटी-छोटी तीखी और गोल। कौआ एकदम कौआ—सीता ने सोचा—मनुष्य के शरीर म कौवे की आत्मा। उसके शब्द पर्याप्त शिष्ट थे, किंतु उसके चेहरे का भाव वैसा नही था

सुमेधा उसे देखकर अपने आप म सिमट गयी।

सीता न अपने आत्मबल का आह्वान कर निर्भीक स्वर म कहा, आप ठीक स्थान पर आए हैं किंतु राम इस समय आश्रम म उपस्थित नही हैं।'

आय लक्ष्मण ?

वे भी कही गए हुए हैं।' सीता बोली आप अतिथिशाला म ठहरें वे लोग शीघ्र ही आ आएगे।

आगतुक के चेहरे की रही-सही शिष्टता भी धुल गयी। उसके मन के भाव निरावृत्त होकर उसके चेहरे पर प्रकट हुए।

'राम से मुझे कोई काम नहा है। मैं तो तुम्हारे लिए ही आया हू सुदरी।

सुमेधा आशका म पीली पड गयी।

सीता ने साहस नहीं छोड़ा, कौन है तू अभद्र ? तू नहीं जानता राम और सौमित्र को तनिक-सी भी सूचना मिल गयी तो तेरा मुड धड स पृथक हो धरती पर लोट जाएगा।'

पर आगतुक जैसे कुछ भी नहीं सुन रहा था।

सुमेधा! सीता धीरे स बोलीं खड्ग ला। मैं इस दुष्ट को देखती हू।

सुमेधा शस्त्रागार के भीतर घुस गयी।

आगंतुक ने उसे देखा। कुछ सोचकर मुसकराया 'तुम्हारी सखी समझदार है सीते! वह जानती है वह कब और कहां अवांछित है।

वह सधे पगों से आगे बढ़ रहा था।

'तुम्हारी बुद्धि की बलिहारी। किंतु तुम रुक जाओ।' सीता ने आदेश दिया "नहीं तो तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ जाएगा कि तुम कब और कहां अवांछित हो।

'शुभ लक्षण!' आगंतुक के चेहरे पर वीभत्स मुसकान उभरी 'अपने विषय में मैं अच्छी तरह जानता हूं, तुम्हें ही अपना मूल्य ज्ञात नहीं। तुम्हें क्या मालूम मैंने संसार में कहां कहां तुम्हारे रूप की चर्चा सुनी है, और मैं कितनी दूर से तुम्हें पाने के लिए आया हूं।'

मौन हो दुष्ट! सीता के भरपूर हाथ का चांटा आगंतुक के मुख पर पड़ा।

क्षण भर के लिए आगंतुक हतप्रभ रह गया वह इस प्रकार के प्रहार के लिए तैयार नहीं था। किंतु दूसरे ही क्षण वह सीता पर झपट पड़ा। उसने सीता को अपनी भुजाओं में बांध लिया था। उसकी जकड़ में निरुपाय सीता छूटने के लिए तड़प रही थी

तभी सुमेधा ने पीछे से आगंतुक की पीठ में खड्ग अड़ा दिया।

सीता उसकी पकड़ में से निकल गयी। वह पीछे की ओर पलटा।

तब तक सीता सुमेधा से दूसरा खड्ग ले चुकी थी और वे प्रहार के लिए सन्नद्ध थीं।

आगंतुक ने भी अपना लंबा खड्ग कोष से निकाल लिया।

'सीता! समर्पण कर दो, अन्यथा प्राणों से जाओगी।' वह अत्यंत क्रूर दिखाई पड़ रहा था।

'दुष्ट! तू भी देख किसके प्राण पृथ्वी को भारी हो रहे हैं।' सीता बोली 'सुमेधा! मुखर को बुला ला।'

तभी लौटकर राम बाड़े के फाटक पर पहुंचे। वे कालकाचार्य से हुई बातचीत पर विचार करते हुए आत्मलीन-से चले आ रहे थे। अभ्यस्त हाथ बाड़े का फाटक खोलने के लिए आगे बढ़े तो ध्यान आया कि फाटक तो

सुना है। दृष्टि उठाकर देखा तो चौंक उठे—सुमुखी भागी हुई, कदाचित मुखर की कुटिया की ओर जा रही थी। सीता खड्ग लिए हुए द्वन्द्व-युद्ध के लिए तत्पर थी और एक राजसी पुरुष नग्न खड्ग लिये सीता पर प्रहार करने जा रहा था।

राम की शिराओं का रक्त एकदम उफन पड़ा—कौन है यह दुस्साहसी राज पुरुष! वह उनकी पत्नी पर प्रहार करने जा रहा था। सीता कितनी ही साहसी और सक्षम क्या न हो, कदाचित एक दक्ष और अभ्यस्त योद्धा का सामना अभी नहीं कर सकती। राम को तनिक भी विलंब हो गया होता तो यहां कोई दुर्घटना घट गयी होती। सुभरण के वध के बाद से राम जैसे आशंका रहित हो गये थे किंतु यह स्थान उतना सुरक्षित नहीं था।

राम अपना खड्ग नग्न कर झपटे और कूदकर सीता और उस पुरुष के मध्य आ खड़े हुए। सीता और आगंतुक दोनों ही चौंक पड़े।

सीता का सारा भय और समस्त आशंकाएं क्षणांश में विलुप्त हो गयीं। उनके राम आ गये थे और राम संसार के किसी भी योद्धा को [illegible] की चुनौती दे सकते थे।

वे सहज और शांत हो गयीं।

सीता ने देखा, राम का क्षोभ भी समाप्त हो चुका था। आत्म-विश्वासी राम निश्चिंत मुद्रा में खड्ग लिये खड़े थे जैसे उनके सामने खड्गधारी योद्धा न हो, कोई चूहा खड़ा हो... चूहा नहीं कौआ! साधारण कौआ, जिसे ललकारकर डराकर भगा दिया जाए।

आगंतुक राम को देखकर भी संकुचित नहीं हुआ था। अपने दुष्कृत्य के लिए वह रत्तीमात्र भी लज्जित नहीं था। उसने अपनी ओर से राम पर जोरदार आक्रमण किया। पर राम उससे जैसे खड्ग युद्ध नहीं कर रहे थे, खेल कर रहे थे। उन्होंने खड्ग को लाठी के समान जोर से चलाया। आगंतुक का खड्ग उसके हाथ से निकल हवा में उड़ता हुआ दूर जा गिरा।

यह तो एकदम ही कौआ निकला। किसी को असावधान पाकर झपट पड़ने में ही उसका बल था। सीता मुसकरा पड़ीं।

आगंतुक राम का सामर्थ्य पहचान भय से पीला पड़ गया। वह उलट-

कर भागा

राम ने खड्ग से प्रहार नहीं किया। लपककर उसके मार्ग में टांग अड़ा दी। आगंतुक धड़ाम से पृथ्वी पर आ गिरा।

राम ने आगे बढ़कर उसके कंठ पर अपना पैर जमा दिया।

"सीते! आओ! इसकी वीरता देखो।" उन्होंने पुकारा।

तब तक मुखर भी हाथ में धनुष बाण लिये सुमेधा के साथ भागता हुआ आ पहुंचा। राम को आगंतुक के कंठ पर पग धरे देख वे दोनों ही सहज हो गये और तेजी से चलते हुए पास आकर ठहर गये।

सीता राम के पास पहुंच गयी थीं।

राम अपना पग क्रमशः दबा रहे थे।

आगंतुक के चेहरे पर भय के स्थान पर अब क्षोभ था। उसकी आंखें पीड़ा और अपमान से लाल हो रही थीं, "तुम मुझे जानते नहीं हो राम! तभी यह दुस्साहस कर रहे हो। मैं तुम्हें दंड दिलवाऊंगा।"

"अच्छा! इस क्षेत्र में चोर भी दंड दिलवाने की धमकी देते हैं।" राम मुसकराए, "तुम्हें लज्जा तो तनिक भी नहीं आयी दुष्ट! कोई विशेष चीज लगते हो। किससे दंड दिलवाओगे?"

"ब्रह्मा से।" आगंतुक के चेहरे पर दुश्चरित्र समृद्धि खुल खेली थी।

राम मुसकराए, "ब्रह्मा का भय दिखा रहे हो भद्र पुरुष! क्या ब्रह्मा तुम जैसे दुष्टों की रक्षा करते फिरते हैं? फिर तो मुझे लगता है कि किसी दिन मुझे स्वयं ब्रह्मा से भी निबटना पड़ेगा।"

उन्होंने अपना पैर कुछ और दबाया।

"जानते हो।" आगंतुक पीड़ा और क्रोध के मिश्रित स्वर में बोला, "तुम जो मेरा अपमान कर रहे हो, उसके लिए तुम्हें कभी क्षमा नहीं किया जाएगा। तुम्हें कदाचित मालूम नहीं कि मैं इंद्र का पुत्र जयंत हूं।"

"इंद्र का पुत्र!" राम की स्मृति के सारे तंतु एक साथ ही झनझना उठे, "तुम बाप-बेटा एक ही काम करते फिरते हो दुष्टो! मेरे मन से *अहल्या पर हुए अत्याचार की छाया अभी मिटी नहीं* और तुम आ गये। दुष्ट सत्ताधारी के सर्प के विलासी पुत्र! मैंने इंद्र को सम्मुख पाकर उसकी हत्या का प्रण किया था—वह तो मेरे सामने नहीं आया। आज तुम आये

हो। बोलो, तुम्हें क्या दड दिया जाए ?'

राम का खड्ग जयत के वक्ष पर जा लगा।

जयत को पसीना आ गया। उसका स्वर काप गया, पर वह अपना सपूर्ण साहस बटोरकर निर्भयता का अभिनय करता हुआ बोला, तुम ब्रह्मा से नही डरते ? तुम इद्र से नही डरते ?"

'मैं किसी दुष्ट अथवा दुष्टता के सरक्षक से नही डरता।' राम बोले, 'मैं ऐसे लोगो से घृणा करता हू। बड़े बड़े नाम लेकर मुझे मत डराओ। सत्ताधारियो और उनके पुत्रो के अत्याचारो की कथा सुनकर मेरे मन म घृणा की आग धधकने लगती है। मैं दुष्टता का समूल नाश करने को वचनबद्ध हू—चाहे वे दुष्ट कितने ही सबल सत्ता मप न अथवा धनवान हो।'

राम के पाव का दवाब बढ़ता जा रहा था और खड्ग की नोक जयत को बुरी तरह चुभने लगी थी। उसका निर्भयता का अभिनय चल नही पाया। उसके चेहरे का साहस, राम की अडिगता का ताप पाकर हिम के समान गल गया।

उसके चेहरे पर दीनता आ गयी। स्वर घिघियाने लगा मुझे क्षमा करो, राम! मैं तुम्हारे चरण छूकर तुमसे जीवन की भीख मागता हू।

उसने दोनो हाथो से राम का पाव पकड लिया। आखो से अश्रु बहने लगे और होठ रोने के लिए फल गये।

राम ने अपना पग उसके कठ से हटा लिया, 'इतने ही वीर थे तुम इद्र-पुत्र जयत! सीता पर प्रहार करते हुए कदाचित तुम्हें अपना कोमल कठ याद नही रहा।'

'मुझे क्षमा करो, राम!'' जयत ने भूमि से उठकर राम के चरणो पर अपना मस्तक रख दिया मैं तुम्हारी शरण म आया हू। मुझे प्राणो की भीख दो। मुझे अभय दान दो।

"थोडी देर पहले तो तू देवी सीता की शरण म आया था दुष्ट!' सुमेधा ने घृणा से पृथ्वी पर थूक दिया।

राम मुसकराए, 'मुझ मेरे आदर्शों म बाधने की कुटिलता मत करो, पापी पिता के पापी पुत्र! क्षत्रिय शरण म आये व्यक्ति की रक्षा अवश्य

करता है किंतु मैं तुम जसे नीच का शरण याचना को एक षडयंत्र मानता हूं। अभय नहीं दूंगा चाहे प्राणान्त द द। दंड तुम्हें अवश्य मिलेगा। मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूंगा पर अंग भंग अवश्य करूंगा।'

अंग भंग!' जयंत की घिग्घी बंध गयी।

हां! अंग भंग!' राम बोले सीता पर दुष्ट दृष्टि डालने के कारण तुम्हारी एक आंख फोड़ दूं अथवा प्रहार करने के कारण एक हाथ काट डालूं?'

मुझे क्षमा करो राम!' जयंत रोता हुआ राम के चरणों से लिपट गया मैं पिताजी से कहकर तुम जो चाहोगे दिलवा दूंगा—रत्न धन '

विलंब मत करो। राम बोले, मेरी बात का उत्तर दो। विलंब तुम्हारे लिए हितकर नहीं होगा। लक्ष्मण आ गये तो मेरे निषेध पर भी वे तुम्हारी हत्या कर डालेंगे।

लक्ष्मण! जयंत क्षण भर के लिए जड़ हो गया पर फिर जैसे जाग कर रोता हुआ बोला मेरा हाथ मत काटो। मेरा हाथ मत

तो ले।' राम ने अपने तूणीर में से तीखे फलक का एक बाण निकाला।

जयंत ने मुख ऊपर उठाकर राम की ओर देखा ही था कि चीख मार कर पृथ्वी पर उलट गया। वह जान ही नहीं पाया कि राम ने किस कौशल से बाण के फलक से उसकी बायीं आंख बींध दी थी।

चले जाओ!' राम ने आदेश दिया।

जयंत सरपट भागता हुआ आश्रम की सीमा से निकल गया।

राम ने मुड़कर सीता को देखा। सीता के कंधे से बहता हुआ रक्त उनके वक्ष पर आ गया था।

सीते! यह क्या है प्रिये?

सीता ने लापरवाही से कंधा झटक दिया कौआ चोंच मार गया।'

राम के मन में जयंत का कर्कश स्वर तथा छोटी गोल तीखी आंखें कौंध गयीं। वे हंस पड़े ठीक कहती हो प्रिये!' वे मुड़े सुमेधा! सीता के घाव का उपचार कर दो देवि! और मुखर! तुम जाओ मित्र! अब कोई आशंका नहीं।

पात्र का वद करने की ध्वनि सुनकर राम मुड़े । लक्ष्मण कधे पर धनुष टागे मस्त से कुछ गुनगुनाते चले आ रहे थे। उनके साथ चेतन तथा वाल्मीकि आश्रम के दो ब्रह्मचारी और थे।

यहा कुछ हुआ है, भया ?' उन्होंने सब लोगो पर जिज्ञासापूर्ण दृष्टि डाली।

'कुछ विशेष नहीं। एक धृष्ट कौआ आया था। हुश्काकर भगा दिया।' राम मुसकराए और तुम सुनाओ, चेतन ! क्या समाचार लाए ?'

चेतन मुसकराया 'आर्य ! यह न मान लें कि मैं केवल समाचार ही लाता हू कभी कभी वैसे भी आपसे मिलने की इच्छा होती है।"

किंतु आज मैं समाचार लेकर ही आया हू। ' लक्ष्मण बोले।

'जी !'

क्या समाचार है ? ' राम ने पूछा।

'भरत अयोध्या से चल चुके हैं। सदेशवाहक के चलने तक व शृगवेरपुर तक पहुच चुके थे और निषादराज गुह के अतिथि थे। उनके साथ अयोध्या की सेना के साथ साथ मत्री-मडल राजगुरु तथा आपकी तीनों माताए भी आ रही है। अगले दिन उनके साथ गुह भी अपनी सेना समेत प्रस्थान करने वाले थे।'

समाचार तो बुरा नही। राम बोले, 'यदि माताए मत्री मडल, राजगुरु तथा गुह भी साथ हैं तो भरत का प्रयोजन सैनिक अभियान नहीं हो सकता।'

पर भैया यह न भूलें कि भरत कैकयी का पुत्र है। ' लक्ष्मण का स्वर तीखा था।

राम मुसकराए यह बात भी मेरे ध्यान म है।

किंतु राम ! चेतन बोला ' ऋषि भरद्वाज और कुलपति वाल्मीकि दूसरी आशका म पीडित हैं।

वह क्या ?' सीता ने पूछा।

यदि भरत सचमुच मनाने आ रहे हों और राम भाई की बात मान-कर लौट गए '

राम इस पद ऋषि से कह देना आपका मुक्त हो जाए।'

सीता अपनी कुटिया से निकलकर टीले की ढाल की ओर आयी।'

पूरी ढाल हरी भरी हो गयी थी। पिछले कई महीनों के कठिन परिश्रम से यह भूमि खेतों में बदली जा सकी थी। मत भी कसे जस समतल भूमि को उठाकर खड़ा कर दिया गया हो। सीता ने अपने हाथों से इस ढाल का खादा-गोदा था मन्दाकिनी से पानी ला-लाकर उसे सींचा था। पहले तो पानी कहीं ठहरता ही नहीं था मदाकिनी की धारा में पुन मिलने के लिए किसी विरही के समान भागता चला जाता था। सीता ने बड़े धैय और परिश्रम से क्यारियाँ बनायी थी और पानी को रोकने का प्रबंध किया था। समय मिलने पर राम और लक्ष्मण भी उनकी सहायता कर दिया करते थे। मुखर तथा सुमेधा भी यथासभव सहयोग किया करते थे किंतु मूल रूप से यह सीता का ही दायित्व था।

सीता ने अपने परिश्रम के फल फूल को बड़ी तृप्ति से देखा, किंतु एक आश्चय भी था उनके मन म। जाने चित्रकूट की मिट्टी में कोई ऐसी बात थी या मदाकिनी के जल म ही कोई ऐसी विशेषता थी—फलने को तो सब कुछ फलता था किंतु जिस वेग के साथ बगन फलता था न कोई अ य सब्जी फलती थी न फल न फूल।

क्या बात है, सीते ? राम आकर उनके साथ खड़े हो गये अपना बगन-पारावार देख रही हो।

सीता मुसकराई यहाँ तो स्थिति यह है कि आम के वृक्ष पर भी बगन ही फलेंगे।'

फिर खेती पर अधिक परिश्रम क्या करना।" राम मुसकराए 'आओ तनिक नाव खेने का अभ्यास हो जाए।'

राम नीचे उतरते चले गये जाकर मदाकिनी के तट पर रुके। खूटे म बधी नाव उन्होंने खोल ली और सीता की प्रतीक्षा करने लगे।

सीता का शस्त्राभ्यास काफी आगे बढ़ गया था। राम नये-नये शस्त्रों के साथ अन्य प्रकार के शारीरिक व्यायाम भी जोड़ते जा रहे थे। तैरने और नाव चलाने का साधारण ज्ञान सीता को पहले से ही था किंतु राम

अब उन्हे अकेले बड़ी नौका खेने उसकी गति बढ़ाने किसी भागती हुई नाव का पीछा करने इत्यादि का अभ्यास करा रहे थे।

सीता नाव म बैठी तो राम ने चप्पू उन्हे थमा दिए चलाओ।

सीता ने चप्पू थाम लिये। नाव चल पडी।

'आप नौका प्रशिक्षण पर इतना बल देते है।' सीता बोली पर्वतारोहण इत्यादि का भी तो अभ्यास करना चाहिए। पिछले सप्ताह जब वर्षा म भीगते चट्टानो पर फिसलते हम चित्रकूट की विभिन्न चोटियो पर घूमते फिरे थे तो कितना आनन्द आया था।'

नौका प्रशिक्षण आनन्द के लिए नहीं है देवि!' राम मुसकराए शत्रु स बचने के लिए किसी अत्यत बीहड स्थिति म निकल भागने के लिए तुम्हारे पास एक ही मार्ग है—मदाकिनी। तुम्हे इससे पूरी तरह परिचित होना चाहिए।

आपको लगता है कि हम अब भी यहा सुरक्षित नहीं है?' सीता ने राम को आश्चर्य से देखा हम यहा आए दस मास हो चुके हैं। मुझे तो आस-पास शांति लगती है। कभी-कभार जयत जैसा कोई दुष्ट आ जाए '

भली कही जयत की' राम मुसकराए उसके परिवार की तो पीढ़ियो से यही परपरा है। पर मैं देख रहा हू कि यहा नित नये रावण, इंद्र और जयत पैदा हो रहे हैं। मैंने सुना है कि जयत कई दिनो से इस क्षेत्र म घूम रहा था और विभिन्न आश्रमो और ग्रामो म दुष्टता दिखाने का प्रयत्न कर चुका था।'

हा! आज सुमेधा भी कुछ ऐसे ही समाचार लायी थी।

'पर मैं कुछ और ही सोच रहा हू सीते!' राम गभीर हो गये भरत मार्ग म आ रहा है। वह नही सकता ऊट किस करवट बैठेगा। सभावना कम दीखती है पर यदि भरत के मन म खोट हुआ तो हम उसका तो सामना करना ही होगा यहा के दमित राक्षस भी हमारे विरुद्ध उठ खड़े होंगे। इस समय मेरा समस्त ध्यान उस ओर लगा हुआ है। जाने क्या हो। भरत क्या करे और उनकी प्रतिक्रिया यहा क्या हो

आप ठीक कहते है राम!' सीता दूर क्षितिज को देख रही थी 'हम प्रत्येक स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए।'

७

सध्या का झुटपुटा क्रमश गहराता जा रहा था। सारा वन प्रात शात होता जा रहा था। आश्रमो से बाहर गये हुए लोग आश्रमों म लौटत आ रहे थे। थोडी देर म पूण अधकार होते ही वन म पूण शाति भी हा जाएगी। आश्रमो के बाडो के फाटक बद हो जाएगे और लोग अपनी कुटियो म दीपक के निकट अथवा कुटियो के द्वार पर अग्नि के पास बैठ होंगे।

ब्रह्मचारी अश्विन तजी से पग बढाता हुआ अपन आश्रम की ओर चला जा रहा था। आज उस मे विलब हो गया था। कहीं ऐसा न हो कि वह वन प्रातर मे ही हो और पहल ही बाड का फाटक बद हो जाए। एक बार फाटक बद हो जाए तो उसे खुलवाने म पर्याप्त कठिनाई हो जाती है। भीतर वाल लोग जब तक कोई ऐसा प्रमाण प्राप्त नही कर लेते कि आगतुक आश्रमवासी ही है अथवा उसके बहान कोइ और ता भीतर नही घुस आएगा, अथवा आस पास कोई राक्षस या हिंस्र पशु तो नहा है—तब तक फाटक नही खोलत। और इस सारी प्रक्रिया म इतना विलब और कोलाहल होता है कि प्रत्येक आश्रमवासी को यह मालूम हो जाता है कि अमुक व्यक्ति विलब से आया है तथा उसके कारण सबको असुविधा हुइ है।

जल्दी-जल्दी चलने के कारण अश्विन की सास फूल गयी थी और शरीर पसीने से भीग गया था। सतोष यही था कि अधिक देर नहीं हुई।

वह समय से आश्रम में आ पहुंचा था अभी फाटक बंद नहीं हुआ था।

आश्रम की सीमा में प्रवेश करते ही उसकी गति धीमी पड़ गयी। तब उसे अनुभव हुआ कि वह बहुत दूर से असाधारण तेजी से चलता हुआ आया है और उसने अपने शरीर को बहुत अधिक थका डाला है। आसन्न संकट के कारण उसका ध्यान अब तक इस ओर नहीं था उसके मानसिक तनाव ने उसे शारीरिक कष्ट के प्रति सजग होने ही नहीं दिया था। किंतु अब उसके शरीर में अधिक कार्य क्षमता नहीं थी। न तो वह तेजी से चल सकता था और न सिर पर रखी लकड़ियों का बोझ ही अधिक ढो सकता था। पर अब वह आश्रम में प्रवेश कर चुका था किसी-न किसी प्रकार कुटिया तक भी पहुंच ही जाएगा।

वह घिसटता हुआ अपनी कुटिया तक आया। भिड़ा हुआ द्वार खोला और सिर का बोझ धरती पर पटककर सुस्ताने बैठ गया।

कुटिया के भीतर पूरी तरह अंधेरा था किंतु थकावट के कारण दीपक जलाने का उद्यम वह कर नहीं पा रहा था। तेज तेज सांस लेता वह चुपचाप बैठा रहा। थोड़ा सुस्ता लेगा तो फिर उठकर दीपक जलाएगा

क्रमश सांस स्थिर हुई, आंखें भी अंधकार में देखने की अभ्यस्त होती गयी। उसने उठकर कुटिया के कोने में रखा दीपक जलाया और घूमा

दीपक के प्रकाश में दूसरे कोने में खड़े एक विराट शरीर पर उसकी आंखें जड़ होकर जम गयी। सारे शरीर का रक्त उसके मस्तिष्क की ओर दौड़ रहा था और हाथ-पांव ठंडे पड़ते जा रहे थे। उसे लगा वह चक्कर खाकर गिर पड़ेगा। दीवार का सहारा लेकर वह भूमि पर बैठ गया।

उस विराट आकार के राक्षस के हाथ में एक भयंकर परशु था और वह हंस रहा था।

राक्षस धीरे से पास चला आया "यदि तुमने चिल्लाने का प्रयत्न किया तो याद रखना यह परशु बहुत धारदार है। मैंने बहुत दिनों से नर-मांस भी नहीं खाया।

अश्विन फटी फटी आंखों से चुपचाप उस राक्षस को देखता रहा।

'यह धनुष यहां कैसे आया ?' राक्षस ने कुटिया की छत में टंगा

हुआ धनुष उतार लिया।

अश्विन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

बोलता क्यों नहीं ? राक्षस ने तीखी आवाज में डाटा और दाए पैर की एक भरपूर ठोकर बैठे हुए अश्विन के बगल में मारी।

अश्विन कराहता हुआ, पृथ्वी पर उलट गया।

बोल !

अश्विन ने अपने होठों को जीभ से गीला किया और बोला मैंने बनाया है।

किसने सिखाया ?"

लक्ष्मण ने।'

क्यों बनाया ?

आत्म रक्षा के लिए।

आत्म रक्षा ! राक्षस की आखें लाल हो गयीं किससे करेगा अपनी रक्षा ? हमसे ? हमारा विरोध करेगा ? हमसे युद्ध करेगा ?

अश्विन कुछ नहीं बोला।

राक्षस ने एक करारा चाटा उसके गाल पर लगाया बोल ! किससे करेगा आत्म रक्षा ?

अश्विन के मुख से रक्त बहने लगा। उसे बोलना पडा वन्य पशुओं से !

राक्षस हसा तेरे पास लौह फल वाले बाण भी हैं ?

नहीं।

लक्ष्मण ने दिए नहीं ?

'अभी मैं लक्ष्य भेद में सक्षम नहीं हूं। मेरा प्रशिक्षण पूरा नहीं हुआ।'

कितने लोग सीख रहे हैं ?" राक्षस ने पूछा।

बीस।

किस हाथ से बाण पकड़ते हो ?' राक्षस हस रहा था।

'दाए हाथ से।

राक्षस आगे बढ़ा। उसने अपना परशु उठाया और जोरदार प्रहार

किया। परशु सचमुच धारदार था। अश्विन की दाहिनी भुजा शरीर से कटकर पृथक जा गिरी।

अश्विन एक कराह के साथ पृथ्वी पर लोट गया। उसके कंधे से निरंतर रक्त बहता जा रहा था।

राक्षस ने छल से धनुष उतारा और अश्विन की कटी हुई बाहु उठायी, "तुम्हारा धनुष ले जा रहा हूं आत्म रक्षा के लिए और बाहु ले जा रहा हूं अपने भोजन के लिए।"

अश्विन कुछ नहीं बोला। वह संज्ञाशून्य हो चुका था।

सकल्प मुनि प्रातः स्नान के लिए कुटिया से बाहर निकले। किवाड़ भिड़ाए और मुड़े।

उषा होने में अभी थोड़ा विलंब था, किंतु मंदाकिनी तक जाने में उन्हें कुछ समय लगता। फिर हवन के समय तक उन्हें लौटना भी था। उन्होंने तेजी से पग बढ़ाए।

उनका तेजी से उठा हुआ पग किसी चीज में अटका और अपने ही जोर में आगे बढ़ता हुआ उनका शरीर पृथ्वी पर आ रहा। असावधानी में इस प्रकार गिर पड़ने से माथा एक पत्थर से जा टकराया और रक्त बहने लगा। हथेलियों में कंकड़ियां और कांटे एक साथ चुभे थे। घुटने भी छिल गये थे। नाक की नोक पर भी पर्याप्त जलन थी।

किसी प्रकार अपने शरीर को संभालकर उठे और गिरने का कारण खोजने के लिए दृष्टि घुमाई—सामने दो राक्षस एक मोटी सी रस्सी को लपेट रहे थे।

पहले भी कई बार मुनि के साथ ऐसी दुर्घटनाएं हो चुकी थीं। यह राक्षसों का खेल था, उनकी इच्छा थी, उनकी आवश्यकता थी अथवा उनका रोग था। धन, शारीरिक बल एवं संगठन, और प्रायः सैनिक संरक्षण उन्हें इतना उच्छृंखल और मदांध बना दिया था कि उनसे किसी प्रकार के शिष्ट अथवा सुसंस्कृत व्यवहार की अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी। वे निरीह लोगों को अकारण भी परेशान कर सकते थे और सकारण भी। उनसे कुछ पूछना व्यर्थ था। अपनी पीड़ा और अपमान को पी जाना

ही मुनि के लिए एकमात्र उपाय था।

'क्यो, आज हवन शवन नही करोगे ?" एक राक्षस ने पूछा।

मुनि न उस क्रोध से देखा, और फिर स्वय को सहज बनाते हुए बोले नहान जा रहा हू। आकर करूगा।"

'नही ! पहले हवन करो।' दूसरा राक्षस बोला नहाना तो बाद म भी हो सकता है।

'नही ! ऐसा सभव नही है।' मुनि ने उत्तर दिया।

'सभव तो हम बना देंगे।"

दूसरा राक्षस आगे बढ आया। उसने मुनि को जोर का धक्का दिया। मुनि पथ्वी पर लोट गये। उसने मुनि की दाहिनी टाग पकडी और घसीटता हुआ कुटिया मे ले आया। हवन-कुड के पास मुनि को पटककर बोला चल आग जला।

मुनि की नगी पीठ भूमि पर रगड खाती ककड पत्थरो पर घिसटती आयी थी। वह लहूलुहान हो गयी थी और बुरी तरह जल रही थी।

रक्त स्नात् मुनि हवन नही करता। मुनि बोले।

'करता है वे ! राक्षस ने मुनि की गदन म पजा फमाकर ठेला 'करता है या मैं करू तेरा हवन !'

मुनि समझ गए कि निस्तार नही है। अपनी शारीरिक और मानसिक पीडा से नडत थ उठे और उन्होने अग्नि प्रज्वलित की।

एक राक्षस ने स्रुक और स्रुवा उठाकर अग्नि म झोक दिया।

क्या कर रहे हो ?' मुनि न क्रोध स उनकी ओर देखा।

हवन !' वे दोनो हस पडे।

मुनि आखो स अग्नि-वर्षा करते हवन कुड के पास बठे रह।

'अब बता। एक राक्षस मुनि के पास आ, अपने जूत स उनके शरार को कोचता हुआ बोला तू किसी आश्रम म क्यो नही रहता ! यहा कुटिया क्यो बनाइ ?'

यह कुटिया मेरे दादा ने बनाई थी मैं तब स यही रहता हू।' मुनि पीडित स्वर म बाले।

तू गधा है मुनि नही।' दूसरा राक्षस हसा, 'तुमसे पूछा जा रहा

है यहा क्यों रहता है किसी आश्रम म क्या नहीं जा सकता ?

पर आज क्यों पूछा जा रहा है ? मुनि हठ पर उतर आए थ ।

'बकवास मत कर !' राक्षस ने मुनि के पेट पर ठोकर मारी जो पूछत हैं बता । तुझे यहा राम न भेजा है ?"

राम तो यहा अब आए हैं ।" मवल्य मुनि न उत्तर दिया, मर तो बाप-दादा भी यहीं जन्म थे ।

'राम स तेरा कोई सबध नहीं है ?"

है क्या नहा ?"

'क्या सबध है ?'

वे हमारे मित्र हैं । व सज्जन है न्यायी हैं वीर है

तू राम का इस क्षेत्र की सूचनाएं नही देता ? हमारे विरुद्ध भड़काता नहा है ? हमस हमारे अधिकार नहीं छीनना चाहता ?

मुनि की पीड़ा उनकी आत्मा का दमन नही कर सकी व तेजोमय स्वर म बोल "यह वन प्रात है । यहा किसी का राज्य नही है । तुम्हारा कौन-सा अधिकार है यश— निरीह प्राणियो के दमन का, उनके शोषण का उनक रक्तपान का पराई स्त्रियो म बलात्कार का ?

बकवास मत कर ! एक राक्षस ने खड्ग उठाया बोटी बोटी काट पानी म सजाकर ल जाऊगा । तुम जस प्राणी है किसलिए ? आज हमारा आहार उठकर हमसे विवाद करता है । और तरी स्त्री तो हम इसलिए उठाकर न गय थे कि तू वही से कोई और कोमलागी झोंपड़ी मुनि-कन्या ब्याह कर लाए और हम उसे भी उठा ल जाए । पर तू ऐसा गया निकला कि झोंपडी छोड कोई खूसट भी नही लाया ।

नीच ! कुछ तो लज्जा कर ।' मुनि मौन नही रह हम भी मनुष्य हैं चेतन्य प्राणी । हम भी जीने का सम्मानपूवक जीन का पूरा अधिकार है । ससार म सब मनुष्य समान है

व्यथ है । एक राक्षस हसा यह अब हम प्राणियो की समता का सिद्धात पढाएगा । इससे विवाद करने से अच्छा है कि इसकी वे दोनो टांगें काट दी जाए जो इसने हमारी इच्छा के विरुद्ध चलाई हैं ।'

मुनि भय स मूक हो गए । यहा तक का कोई काम नहीं था, और

शारीरिक शक्ति उनमें थी नहीं।

एक राक्षस ने उनके कंधे पकड़ उन्हें भूमि पर लेटा दिया। दूसरे ने उनकी टांग सीधी की और उन पर बैठ गया। उसने अपना परशु उठाकर सधे हाथ का वार किया, जैसे कोई वृक्ष की शाखा पर बैठ उसे काटता है।

मुनि ने एक भयंकर चीत्कार किया और बेहोश हो गए।

"मर गया?" एक राक्षस ने पूछा।

"नहीं। संज्ञाशून्य हुआ होगा।" दूसरा बोला।

"ये मरे इतनी जल्दी मर जाते हैं कि दूसरी बार इनके शरीर का मांस हमें नहीं मिलता।" पहला बोला।

"चिंता मत करो।" दूसरा बोला, "अभी बहुत हैं।"

कालकाचार्य के आश्रम के ब्रह्मचारी दैनिक आवश्यकताओं के लिए वन में लकड़ियां काट रहे थे।

'इन दिनों वन का रूप कुछ बदल गया है।' जय ने कुल्हाड़ी का प्रहार करते हुए कहा, "पहले तो वन ऐसा नहीं था।"

"हां!" आनन्द ने उत्तर दिया, "अयोध्या की सेना के आ जाने से भीड़-भाड़ इतनी हो गयी है कि क्या कहूं। फिर राम के आश्रम के पास तो रोक-टोक बहुत अधिक है। इधर न जाओ, उधर न जाओ। यह सैनिकों के लिए आरक्षित है, यह सेनापतियों के लिए। इधर राजमाताएं गयी हैं, उधर राजगुरु गए हैं। इन लोगों ने तो वन को भी, राजकीय सैनिक अनुशासन में बांध लिया है।"

'भई, मैं तो और बात सोचता हूं।' त्रिलोचन बोला, "यह इतनी बड़ी सेना कुछ दिन और यदि इसी वन में पड़ी रही, तो हमारे लिए फल प्राप्त करना भी कठिन हो जाएगा।"

"कुल्हाड़ी चलाओ, भैया!" आनन्द बोला, "सेना अधिक दिन यहां नहीं रहेगी। मैंने सुना है कि भरत आज लौट रहे हैं। बस पहले ही विलंब हो चुका है। मार्ग में कहीं लौटती हुई सेना में घिर गए या किसी

ठीक कहते हो मित्र ! जल्दी जल्दी काम कर लेना चाहिए।'

जय ने कुल्हाडी उठाई, तो वह उठी-की-उठी रह गयी। उसे नीचे लाना, जय को याद ही नही रहा। उसके मित्रो ने उसकी विचित्र अवस्था को देखा तो उनकी दृष्टि भी उसी ओर घूम गयी जिधर वह देख रहा था।

वे सब के-सब स्तब्ध खड़े रह गए। वृक्षो के बीच जहा कही भी थोडा सा स्थान था वही न जाने कब कोई न-कोई राक्षस आकर खडा हो गया था। राक्षसो ने उन्हे वृत्ताकार घेर लिया था और उन लोगो का अवरोध पर्याप्त दृढ लग रहा था। राक्षसों के हाथ मे शस्त्र थे और वे सब-के सब प्रहार-मुद्रा मे दिखाई पड रहे थे।

सहसा ब्रह्मचारियो मे से किसी ने चीख मारी और वह भागा। कोई नही समझ पाया कि कौन चीखा और कौन भागा। सब जैसे एक साथ ही भागे। पता नही चला कि पहले भटके मे ब्रह्मचारी राक्षसो के घेरे को तोडकर भागे या राक्षसो ने उन्हे घेरा तोडने दिया। दूसरी बार भी कुछ बचे हुए ब्रह्मचारी घेरे मे से निकल गए किंतु तीसरी बार राक्षसो ने वह अवसर नही आने दिया। उन्होंने अपने खड्ग सीधे कर लिये थे अब भागने का प्रयत्न सीधे-सीधे उनके खड्ग की धार पर दौडने की बात थी।

कुल्हाडिया फेंक दो ! एक राक्षस ने आदेश दिया।

जय ने कुल्हाडी भूमि पर फेंक दी और दृष्टि उठाकर देखा—उसके साथ-साथ उसके अपने ही मित्र आनन्द निर्वाचन कुवलय और शशांक ही राक्षसो के घेरे मे बदी हो गए थे। उनमे से अकेले भागने का प्रयत्न किसी ने नही किया था और साथ मिलकर भागने की योजना वे बना नहीं पाए थे। अपनी कुल्हाडिया वे फेंक चुके थे और भयभीत दृष्टि से राक्षसो को देख रहे थे।

राक्षसो से भिडत की बात जय ने कई बार सुनी थी किंतु अधिकागत व अकेले-दुकेले व्यक्तियो को पकडते थे वह भी अधेरे-सवेरे। इस प्रकार दिन-दहाडे इतने अधिक आश्रमवासियो पर आक्रमण की बात उसने पहले नही सुनी थी। हा सैनिक अभियानो की बात और थी, किंतु चित्रकूट-क्षेत्र मे सैनिक अभियानो की बात भी कम ही ... या विशेष

प्रत्येक आश्रम का दूसरे आश्रम से सबध है। तुम लोगों ने राम को राक्षसों का विरोध करने के लिए यहा बुलाया है। और जब राम असमर्थ दीखा तो भरत को उनकी सेना सहित बुला लिया है। यह देखो मेरे पास अधिक समय नहीं है। मुझे यह सूचना मिलनी चाहिए कि भरत को बुलाने के लिए कौन उत्तरदायी है और भरत की योजना क्या है?''

हम मालूम नही

राक्षस प्रमुख ने उस वाक्य पूरा करने नहीं दिया— मैंने सुन लिया। पर मुझे अपने प्रश्नों का उत्तर चाहिए।'

हम कुछ भी ज्ञात नहीं।' नम ढीली आवाज म बोला।

'नही?'

नहीं।"

तुम ब्रह्मचारी?' राक्षस प्रमुख आनन्द स सबोधित हुआ।

मुझ भी ज्ञात नही। आनन्द हीन होकर बोला हमम से किसी का भी ज्ञात नही।

राक्षस प्रमुख न अविश्वास म मुख फर लिया तुम?

नही।

तुम?

नही।

तुम?'

नहीं।'

इन्ह गिन गिनकर सौ कोडे लगाओ।' राक्षस प्रमुख न अपने कशाधारियो को आदेश दिया, 'तब तक लौह शलाकाए भी तप आएगी। यदि य लोग सतोषजनक उत्तर न दें तो उन्ह तप्त शलाकाओ से दागो। ध्यान रहे य मरने न पाए। य धरोहर हैं। इनके शरीरो का अच्छी तरह चिह्नित कर इन्ह इनके आश्रम के निकट फेंक आओ। य स्वय अपने कुलपति को बताएगे कि यदि उन्होंने बाहर स कोई सैनिक सहायता मगवाकर हमारा विरोध करने का प्रयत्न किया तो हमारी ओर से लडने के लिए लकाधिपति रावण की सेना आएगी और इनम स एक एक की यही अवस्था कर दी जाएगी।'

कालकाचार्य चिंतित मुद्रा में सिर झुकाए बैठे थे। आश्रम के सारे तपस्वी तथा आचार्य उनके सामने बैठे उनके बोलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रत्येक चेहरे पर चिंता थी। केवल जय, आनन्द, त्रिलोचन, कुवलय और शशांक—पाँच ब्रह्मचारियों से हटकर कुलपति से कुछ निकट प्रमुखता से बैठे हुए थे। उनकी भंगिमा चिंता की नहीं, यातना और अपमानित क्रोध की थी। उत्तरीयों के नीचे, उनके शरीर विभिन्न प्रकार की औषधियों और पट्टियों में लिपटे हुए थे। इस प्रकार बैठने में भी वे कम कष्ट का अनुभव नहीं कर रहे थे। गुरु का दीर्घ मौन उन्हें और भी पीड़ित कर रहा था।

अंत में कालकाचार्य ने सिर उठाया, "तपस्विगण! यह न समझें कि इस घटना से मेरा मन दुःखी नहीं है। मेरे शरीर पर राक्षसों ने कशाघात नहीं किया, मेरी त्वचा को उनकी तप्त शलाकाओं ने दग्ध नहीं किया, किंतु इस कुलपति के मन के घावों की कल्पना करें, जिसके एक नहीं, पाँच-पाँच ब्रह्मचारियों ने इतनी पीड़ा पायी हो। उनके शरीर पर पड़ा प्रत्येक कोड़ा मेरे हृदय पर पड़ा है। प्रत्येक शलाका ने मेरी आत्मा को दग्ध किया है। किंतु आक्रोश के असंतुलित क्षणों में कोई उग्र कर्म करने के बदले हमें थोड़ा आत्मविश्लेषण करना चाहिए।"

"आर्य कुलपति! कैसा विश्लेषण?"

जय को अपना ही स्वर काफी उच्छृंखल लगा। आज तक उसने कुलपति के सम्मुख कभी ऊँचे स्वर में भी बात नहीं की थी और आज वह प्रतिवाद करना चाह रहा था। उसके मन में कुलपति की सारी श्रद्धा समाप्त हो गयी थी। उसे लग रहा था, यदि कुलपति इसी ढंग से सोचते और बोलते रहे, तो वह अमर्यादित हो उठेगा—उसे कुलपति का विरोध करना पड़ेगा—संभवतः उनका आश्रम छोड़ना पड़े। वह कालकाचार्य को अब अपना गुरु नहीं मान सकता।

"आत्म-विश्लेषण आवश्यक है तपस्विगण।" कालकाचार्य ने तुरंत स्वर में कहा, "वर्तमान परिस्थितियों और उनके कारणों को जानने और समझने की भी आवश्यकता है और अंत में उनका समाधान ढूँढने की भी।"

आपका क्या समाधान है ?" इस बार शशांक बोला। उसका भी स्वर जय के स्वर से कम उच्छृंखल नहीं था।

ठहरो, वत्स ! मेरी बात सुनो। कालकाचार्य अपने उसी दुर्बल स्वर में बोले "राम के इस प्रदेश में आने से पहले भी हम यहां रहते थे और ये राक्षस बस्तियां और शिविर भी यहीं थे। ऐसा नहीं था कि तब राक्षस हमें परेशान नहीं करते थे। किंतु जब से राम यहां आए हैं स्थिति काफी बदल गयी है। राम और लक्ष्मण क्षत्रिय योद्धा हैं। उनके पास भयंकर अस्त्र शस्त्र है। उन शस्त्रों को उन्होंने स्वयं तक ही सीमित नहीं रखा है। उनका प्रयत्न यही रहा है कि जहां तक संभव हो लोग स्थान स्थान पर राक्षसी अत्याचारों का विरोध करें। उस विरोध का माध्यम शस्त्र है। उन्होंने प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति को शस्त्रों के निर्माण और परिचालन की शिक्षा दी है। उससे अनेक स्थानों पर राक्षसों का सफल विरोध हुआ है और अनेक ग्रामों में से राक्षसों का आधिपत्य समाप्त हो गया है। इससे राक्षस राम से ही नहीं समस्त आश्रमों से नाराज हो उठे हैं। राम के आश्रम का वे कुछ बिगाड़ नहीं सकते—अपना क्रोध शेष आश्रमों पर उतारते हैं।

कालकाचार्य ने रुककर तपस्वियों पर दृष्टि डाली। उन्हें लगा कि जय तथा उसके घायल साथियों की आंखों में उत्सुकता का भाव नहीं था। निश्चित रूप से वे अपने कुलपति के दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे।

कुलपति ने अपनी बात आगे बढ़ाई "राम ने पहले दिन से हम से संपर्क स्थापित कर रखा है। राम ने सदा चाहा है कि मैं भी अपने आश्रम में शस्त्राभ्यास कराऊं। हमारा आश्रम उनके आश्रम से निकटतम है। वे हमारी पूरी सहायता के लिए प्रस्तुत थे। किंतु मैं पहले दिन से यह जानता था कि शस्त्र रखने का अर्थ है राक्षसों से वैर पालना। राम हमारी सहायता तो कर सकते हैं पर हमारी रक्षा नहीं कर सकते "

आपने कब चाहा कि वे आपकी रक्षा करें आर्य कुलपति ?" त्रिलोचन बीच में ही चिल्लाकर बोला।

धैर्य न छोड़ो वत्स त्रिलोचन ! " कालकाचार्य का स्वर और भी दुर्बल हो गया मुझे अपनी बात कहने दो, फिर मैं तुम्हारी बात भी

सुनूगा।' और व अपनी वात आगे वढा ले गए ' मैंन कभी नही चाहा कि राम हमारी रक्षा करें। मैंने यहा विद्याभ्यास के लिए आश्रम स्थापित किया था युद्ध शिविर नही वनाया था। राम क्षत्रिय हैं। मेरी प्रवृत्ति क्षत्रिय-प्रवृत्ति नही है। मैं नहीं चाहता था कि शस्त्र निर्माण और शस्त्राभ्यास से मैं राक्षसों के क्रोध और विरोध को आमंत्रित करू। और मैं देख रहा हू कि मैं भूल नही कर रहा था। जिस जिस आश्रम म राम के शस्त्र-दशन का प्रवेश हुआ वहीं-वहीं राक्षसों के क्रोध की उल्का गिरी। और अव भरत की सेना आयी है। उसक लिए भी राक्षस हमे ही दोषी मानत हैं। यदि हम राम क इतने निकट न होत तो राक्षस हमारे ही आश्रम के ब्रह्मचारियो को पकडकर न ले जात। मुझ लगता है, राम एक प्रचड अग्नि है—अग्नि पवित्र हो सही—किंतु उसका नैकट्य ताप भी देता है। अभी तो भरत की सना और राक्षसों म कही भिडत नही हुई। यदि हो गयी तो राक्षस अयोध्या की प्रशिक्षित सेना का तो विरोध कर नहीं पाएग उनका कुंठित क्रोध फिर हम पर हो प्रहार करेगा। इसलिए मरा विचार है कि यह स्थान अब सुरक्षित नही रहा। हम यहा स हटकर राम से दूर चले जाना चाहिए "

आर्य कुलपति! जय उठकर खडा हो गया। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था और स्वर क्रोध से काप रहा था, आपने दूसरों का मत सुना ही नही और अपना निणय दे दिया। यह आश्रम की रीति के अनुकूल नहीं है।'

कालकाचाय म आश्रम के कुलपति का तज नही जागा। वे सहम गए। ह जय का तमतमाया चेहरा जसे डरा गया था।

'यह निणय नही है मरा प्रस्ताव है वत्स! मेरी निजी राय! तुम लोग अपने विचार व्यक्त करने म पूणत स्वतन्त्र हो।

तो फिर मेरा प्रस्ताव सुनें आर्य कुलपति!' जय ने आज एक वार भी कालकाचाय को गुरुवर कहकर सबोधित नहीं किया था, जसे वह उनके गुरुत्व को भूलकर केवल उनके आधिकारिक पद को ही देख पा रहा था, शार्दूल चित्राचन आनन्द कुवलय तथा मेरा—हम पाचों का मत है कि हम लडें या न लडें राक्षस हमसे लडेंगे। हम नि शस्त्र हो तो भी मरेंग

सशस्त्र हो तो भी मरेगे। विकल्प हमारे हाथ मे नही है। इसलिए यदि मरना ही है तो सशस्त्र होकर मरे—कदाचित तब मरना अनिवार्य न रहे। इसलिए हम तत्काल राम के आश्रम पर चलें। उनसे मिलकर सारी स्थिति स्पष्ट करें। उनसे शस्त्र तथा युद्ध विद्या की सहायता तथा सहयोग मागें और आत्म रक्षा मे समर्थ होकर न केवल गौरव और स्वाभिमान के साथ जीवित रहे वरन् राक्षसो से अपने अपमान का बदला भी लें। इसके लिए यदि आवश्यक हो तो राम लक्ष्मण सीता तथा उनके अन्य आश्रमवासियो को अपने साथ रहने के लिए आमत्रित करें या हम अपना आश्रम उनके आश्रम मे विलीन कर दें और यदि किन्ही कारणो से यह सभव न हो तो दोनो आश्रमो की भौतिक दूरी तो समाप्त कर ही दें।

"हम इस प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन करते है। जय के घायल मित्र पूरे जोर से चिल्लाए।

"नही।" कालकाचार्य का स्वर भय तथा आवेश से कपित होने के कारण चीत्कार बन गया "मतभेद तथा व्यक्तिगत विचार-स्वातत्र्य का समर्थक होने पर भी मैं इस प्रकार के आत्मघाती प्रस्तावो पर विचार करने की अनुमति नही दे सकता। मेरे मस्तिष्क मे यह बात पूर्णत स्पष्ट है कि हम युद्ध व्यवसायी नही हैं और राम की मूल वृत्ति क्षात्र वृत्ति है। वे जहा रहेगे वहा आस पास शस्त्र-व्यापार चलता ही रहेगा। कल की जिस घटना से तुम लोग इतने उत्तेजित और क्षुब्ध हो उठे हो, मुझे लगता है वह तो भविष्य का आभास मात्र है। तुम लोग स्वय सोचो कल जब अयोध्या की इतनी बडी और शक्तिशाली सेना की छावनी यहा से उखड ही रही थी अर्थात सेना अभी यही विद्यमान थी तब भी राक्षस इतना दुस्साहस कर गये। भविष्य मे, जब कोई सेना आस-पास नही होगी तब राक्षसो का साहस और कितना बढ जाएगा। भविष्य की उन भयकर दुर्घटनाओ से अपना बचाव करने के लिए ही मैंने यह निश्चय किया है तपस्विगण! कि हम यहा से हटकर अश्व मुनि के आश्रम के निकट जा बसेंगे। राम राक्षसो की निरतर उत्तेजना का कारण है। हम उसके निकट रहकर सदा-सदा के लिए राक्षसो के क्रोध के पात्र नही बनना चाहते। "

और सहसा कुलपति का स्वर ऊचा हो गया इस विषय मे वाद विवाद

की अनुमति मैं नहीं दूगा। यह मेरा अंतिम निश्चय है और आश्रमवासियों के लिए आज्ञा है। इस आज्ञा की अवहेलना का दड आश्रम से स्थायी निष्कासन होगा।"

तो हम स्वय को इसी क्षण से आश्रम से निष्कासित समझते हैं। आनन्द इस सारे वार्तालाप म पहली बार बोला था। उसका चेहरा दृढ और सहज था। स्पष्ट था कि उसने यह बात आवेश म नहीं कही थी—यह उसका सुचिंतित मत था।

जब कुवलय शशांक और त्रिलोचन भी उसके निर्णय के समर्थन म उठकर, उसके पीछे खड़े हो गये थे।

कालकाचार्य का आवेश लुप्त हो गया। उन्हें जसे अपने आवेश का यह परिणाम ज्ञात नहीं था, अथवा वे घटनाओं को यह मोड नहीं देना चाहते थे। वे आश्चर्यजनक ढग से बदले हुए कोमल और स्नेहयुक्त स्वर म बोले 'मैं यह कभी नहीं चाहूगा वत्स ! कि मेरा कोई शिष्य किसी मतभेद के कारण मेरा आश्रम छोड़कर चला जाए। यह वैसा ही है जसे कोई पुत्र पिता का घर छोड दे। और तुम पाचो ही मुझे बहुत प्रिय हो। मैं किसी भी रूप म तुमसे विलग होना नहीं चाहूगा। मेरी बात समझने का प्रयत्न करो वत्स ! मैं अग्नि को स्वय से दूर रखने का प्रयत्न कर रहा हू ताकि उसका प्रकाश तो हम मिले किंतु उसका ताप हमे दग्ध न करे। और तुम चाहते हो कि मैं अग्नि को अपनी कुटिया मे ले आऊ ताकि मेरा आश्रम जलकर भस्म हो जाए।"

कालकाचार्य की कोमलता ने आवेश पर ठडे छीटे डाल दिए थे। किसी ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं आया जसे सब कुछ शांत हो चुका हो।

पर तभी कुवलय उठकर अपने ठहरे हुए मद स्वर म बोला आर्य कुलपति ! आपका और हमारा दृष्टिकोण पर्याप्त भिन्न है यह स्पष्ट हो चुका है। किंतु मतभेद का अर्थ अनिवार्यत विरोध नहीं होता। आप हम आश्रम से निष्कासित नहीं करना चाहते और न ही यह हमारी इच्छा है कि हम आपसे दंडित होकर अथवा आपसे झगड़कर आश्रम से पृथक हो। इसलिए गुरुवर ! एक निवेदन है। आप चाहे तो आश्रम को अश्व मुनि के आश्रम की ओर ले जाने की तैयारी करें किंतु साथ ही हमें यह अनुमति दें—

कि हम राम भद्र से मिलकर इस विषय म उनका मत जानने का प्रयत्न करें। यदि वे सहमत हो गय तो हम पाचो आपकी अनुमति से उनके आश्रम की सदस्यता स्वीकार करना चाहेंगे। और यदि हम ग्रहण करने को वे तैयार नहीं हुए तो हम पूववत आपके शिष्य हैं—अत आश्रम के अनुशासन म बधे आपके साथ जाएग।

कालकाचाय का स्नायविक तनाव ढीला पडा। कुवलय ठीक कह रहा था—वे राम के पास जाना चाहे तो जाए इसम क्या सकट है। व न राक्षसो का विरोध चाहते हैं न राम का और न अपने शिष्यों का।

ठीक है भरत ! तुमने बिलकुल ठीक कहा। तुम लोग आज ही राम से मिलने चल जाओ। भरत की सेना लौट चुकी है अत राम स मिलने म कोई बाधा भी नही है। कल प्रात मुझे अपने और राम के निश्चय की सूचना दो। हमारा प्रस्थान कल मध्याह्न तक रुका रहेगा।'

अपनी कुटिया के बाहर अपराह्न की धूप म राम और सीता कुछ अलसाए से बठे थे। दोनो ही पिछले दो-तीन दिनो म घटी घटनाओं म ऊब डूब रहे थे। बात प्राय कोई भी नही कर रहा था।

"भया ! कुलपति कालकाचाय के आश्रम के ब्रह्मचारी आए है।'

राम ने सिर उठाकर दखा। आगे आगे जय था। इसे राम न कई बार कालकाचाय के आश्रम मे देखा था। आते-जाते कभी-कभार कुछ बातें भी हुई थी। जय ने कई बार धनुष बाण तथा अन्य शस्त्रो म रुचि भी दिखाई थी। अन्य ब्रह्मचारियों के चेहरे भी कुछ परिचित से थ किंतु राम उन्हें ठीक-ठीक पहचानते नही थ।

आओ ! बैठो, मित्र ! राम ने मुखर द्वारा लाए गय आसनो की ओर सकेत किया।

आय ! ये भील-कला के आसन आपके यहा कसे ? ' कुवलय ने कुछ आश्चय स पूछा।

ये आसन मैंने और सुमेधा ने मिलकर बनाए है।' सीता बोली 'सुमेधा भील-कन्या ही है। मैंने उसी से यह विद्या पायी है। तुम्हे भील कला वाले आसन पर बठने मे कोई आपत्ति तो नही ब्रह्मचारी !' वदेही

मुसकराइ 'इधर जाति विभाजन पर बल कुछ अधिक ही है।'

"नहीं देवि!" कुवलय झेंप गया मैंने तो केवल जिज्ञासावश पूछ लिया। आश्रमो म इस प्रकार के आसन सामान्य बात नहीं है।'

'बैठो, मित्र!' राम पुन बोले मेरी भी जिज्ञासा है—तुम पावो ही घायल प्रतीत होते हो। औषध और पट्टिया अभी गीली ही हैं। यह क्या है मित्र! मृगया अथवा राक्षसो से मुठभेड़?

हम इसी सदर्भ म आपसे मिलने आए हैं राम!' जय बोला आने म कुछ विलब अवश्य हुआ। कल अयोध्या की सेना लौट रही थी अत आप तक पहुचने के लिए मार्ग मिलना कठिन था और आज अपने कुलपति से विचार विमर्श मे विलब हो गया।"

ठीक कहते हो, ब्रह्मचारी।" राम गभीर हो गये "कदाचित इसी कारण पिछले तीन दिनो से मैं सारे चित्रकूट से कटकर अपने आश्रम म सीमित हो गया था। इस बीच इस आश्रम मे बहुत कुछ घटित हुआ है मित्र!"

यहा ही नही, आर्य! इस सारे प्रदेश म बहुत कुछ घटित हुआ है। शशाक का स्वर कुछ तीखा था 'कही किसी का सिर कटा कही किसी का पाव। कही आग लगा और कही हम जसो को घेरकर बदी किया गया और राक्षस बस्तिया म ले जाकर कशा के आघातो से आहत और तप्त शलाकाओ से दग्ध किया गया "

क्या लाभ अयोध्या की इतनी बड़ी सेना का!' राम जैसे अपने-आपसे कह रहे थ 'जिसने जन सामान्य को सुरक्षा देने के स्थान पर असुरक्षित कर दिया।

किसने बदी किया?' लक्ष्मण की उग्रता प्रकट होने लगी थी।

राक्षसो ने।

क्या? मुखर ने पूछा।

वही बताने के लिए हम उपस्थित हुए है।" जय बोला।

कहो मित्र! मैं सुन रहा हू।' राम उसके चेहरे की ओर देख रहे थे।

कानकाचार्य न जाने वाले तपस्वियो छकड़ों पर लदे सामान

जुते बैलों को हाँकनेवाले गाड़ीवानों इत्यादि पर अंतिम बार निरीक्षण करती दृष्टि डाली। वे व्यवस्था से संतुष्ट थे। आकृति पर आश्वस्ति के चिह्न एकदम स्पष्ट थे और साथ ही किसी विकट विपत्ति से मुक्त हो जाने का आह्लाद भी था।

उन्होंने मुड़कर इन सारी तैयारियों से अलग एक ओर हटकर खड़े हुए राम की ओर देखा—राम, सीता तथा लक्ष्मण साथ-साथ खड़े थे और उनके पीछे जय तथा उसके चारों मित्र खड़े थे। कुलपति का चेहरा कुछ विकृत हुआ, जैसे मुख का स्वाद कड़वा गया हो। किंतु उन्होंने तत्काल स्वयं को सँभाल लिया। वे सायास मुसकराए और सहज होने का भरसक प्रयत्न करते हुए चलकर उन लोगों के समीप आए।

"वत्स राम! अब हम विदा दो।" कुलपति अत्यंत औपचारिक स्वर में बोले, "बड़ी इच्छा थी कि हम यहाँ साथ-साथ रहते अथवा तुम हमारे साथ अश्व मुनि के आश्रम में चलते। किंतु तात! शायद यह संभव नहीं है। पर जाते-जाते भी मैं तुम्हें एक परामर्श दूँगा। यद्यपि तुम वीर और साहसी हो, युद्ध विद्या में कुशल हो—फिर भी यह स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ तुम अपनी युवती पत्नी के साथ सुरक्षित रह सको। वत्स! तुम भी इन लोगों को लेकर किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाओ।" उन्होंने रुककर राम के पीछे खड़े तपस्वियों को देखा, "और मेरे इन ब्रह्मचारियों की रक्षा करना। भगवान् तुम्हारा भला करें।"

राम ने शांत भाव से कुलपति की बात सुनी और हल्के से मुसकरा दिए। लक्ष्मण ने एक बार उद्दंड आँखों से कुलपति को ताका और वितृष्णा से मुख मोड़ लिया।

राम और सीता ने झुककर, कुलपति के चरण छुए और अन्य लोगों को मार्ग देने के लिए एक ओर हट गए।

लक्ष्मण ने अब तक स्वयं को सँभाल लिया था। पूर्ण गंभीरता का अभिनय करते हुए बोले, "ऋषिवर! हम भी आपके साथ चलकर अश्व मुनि के आश्रम में रहने की बड़ी इच्छा थी पर हम जा नहीं पाएँगे। हमारी असमर्थता को क्षमा करें। हम नहीं चाहते कि हम आपके साथ-साथ लगें फिर और आप अपने छकड़ों से अपना सामान भी न उतार पाएँ।"

इससे पूर्व कि राम आगे बढ़कर लक्ष्मण से कुछ कहते, कालकाचार्य मुक्त कंठ से हंस पड़े। राम ने कुछ विस्मय से देखा—कुलपति का कंठ ही नहीं, मन भी उन्मुक्त था। लक्ष्मण ने अपने इस वाक्य में न केवल अपने मन की कह दी थी, वरन कुलपति के मन की ग्लानि भी धो डाली थी।

"बहुत अच्छी बात कही तुमने वत्स सौमित्र!" हंसी के पश्चात कुलपति अत्यंत निर्मल हो आए थे। उनकी आकृति की औपचारिकता भी विलीन हो गयी थी, और वे सहज हो गए थे, "तुमने न कहा होता तो कदाचित मैं भी सच न बोल पाता। पुत्र! मेरा विश्वास करो। तुम लोगों का सन्वास हम सब तपस्वियों के लिए अत्यंत आनंददायक है। यह हमारी हार्दिक इच्छा है पुत्र! कि तुम हमारे साथ रहो। किंतु लक्ष्मण! सारे मनुष्यों की प्रकृति एक समान नहीं होती। हम लोग स्वयं अपने आप में न्यायपूर्ण आचरण करने वाले हैं। हम बिना किसी जीव को कष्ट दिए मानवता के सुख के लिए ज्ञान विज्ञान कला तथा संस्कृति के विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। अतः मन से हम न्याय के समर्थक और अन्याय के विरोधी हैं। इस दृष्टि से हम तुम्हारे सहयोगी हैं। किंतु पुत्र! अपने जन्म जात स्वभाव, राजसिक वृत्ति के अभाव तथा संयम के लंबे प्रशिक्षण के कारण हम लोग तुम्हारे समान सघषशील नहीं हैं। अतः अन्याय के विरोध के लिए सक्रिय अवसर उपस्थित होते ही, हम लोग प्रायः उस स्थान से हट जाते हैं। हम अपनी सीमाएं पहचानते हैं। ऐसा नहीं है, पुत्र! कि मैं नहीं चाहता कि मैं भी तुम्हारे ही समान शस्त्र धारण कर राक्षसों का हनन करूं। किंतु मैं अपनी तथा इन तपस्वियों की भीरु प्रकृति का क्या करूं? हमें अपना विरोधी न समझो। तुम्हारे साथ न रह सकने का अर्थ कदापि यह नहीं है कि हम राक्षसों के मित्र हैं। हम तुम्हारे अक्षम तथा भीरु मित्र हैं जो संघर्ष करने का साहस नहीं बटोर पा रहे। सौमित्र! हमारे प्रति मन में क्रोध न रखो, करुणा और दया का भाव धारण करो।"

कुलपति मौन हो गए। उनका स्वच्छ मन उनकी पारदर्शी आंखों में से झांक रहा था। कोई भी देख सकता था कि उनके सपूर्ण व्यक्तित्व में कहीं कोई दुराव तो नहीं था। उन्होंने वाणी के माध्यम से अपना मन सहज ही सब के सम्मुख रख दिया था।

लक्ष्मण कुछ सकुचित हुए—शायद उन्हें शिखध्वज और निमग्न वृद्ध से ऐसी कटु बातें नहीं कहना चाहिए थीं।

'आर्य कुलपति !' राम ने आगे बढ़कर बात सँभाल ली, 'लक्ष्मण की बात का बुरा न मानें। हम दोनों एक-दूसरे का पक्ष समझते हैं। ऋषिवर ! हम क्षत्रियों का शस्त्र धारण करना तभी सार्थक होगा जब आप जैसे निष्पाप तपस्वी रुककर हमें अपना स्नेह दे सकेंगे—और हम न्याय के नाम पर आपको अभय दे सकेंगे। कुलपति सहज मन से अपनी यात्रा पर जाएँ। इस अलगाव से किसी के मन में वैमनस्य न रहेगा।'

कुलपति ने धीरे-धीरे अपनी भीगी आँखें ऊपर उठाईं और राम के चेहरे पर टिका दीं, 'राम ! मेरे इन ब्रह्मचारियों का ध्यान रखना। ये पाँचों तेजस्वी हैं। आशा है ये मेरे पाप की क्षतिपूर्ति करेंगे।'

कुलपति ने उन लोगों की ओर देखे बिना मुख मोड़ लिया और धीरे-धीरे चलते हुए, अपने छकड़े पर जा बैठे। बैठते ही उन्होंने गाड़ीवानों को संकेत किया 'चलो।'

राम स्पष्ट देख रहे थे कुलपति का मन उनके कर्म का विरोध कर रहा था। वे उदास थे। विवेक कितना भी प्रेरित करे—अपनी प्रकृति के विपरीत कार्य करना कठिन होता है। मन की भीरुता तन की कोमलता और संघर्ष के प्रति अतत्परता व्यक्ति को क्या बना देती है। ऐसा क्या खो गया है इन लोगों में, जो सत् पक्ष को जानते हुए भी उसका समर्थन नहीं कर पाते उसके पक्ष में खड़े नहीं हो पाते। किस बात से डरते हैं—कष्ट से ? पर कष्ट तो वे उठा ही रहे हैं। अपमान से ? इस प्रकार अपनी इच्छा के विरुद्ध, किसी के भय से अपना स्थान छोड़कर कहीं और भटकने के लिए चल पड़ना क्या अपमानजनक नहीं है ! यह सैनिक दृष्टि से योजनाबद्ध प्रत्यावर्तन नहीं है कि इसे रण-नीति या रण-कौशल मान लिया जाए। यह तो रण ही नहीं है। जब कभी संघर्ष का अवसर प्रस्तुत होगा—ये लोग इसी प्रकार पीछे हट जाएँगे। इन्हें कहीं भी सत्य नहीं मिलेगा कहीं न्याय नहीं मिलेगा, कहीं अधिकार नहीं मिलेगा। सत्य और न्याय के संघर्ष से भागना, स्वयं सत्य और न्याय से दूर भागना है।

राम की दृष्टि बहिर्मुखी हुई—जय तथा उसके साथी कुछ उदास लग

रह थे। लक्ष्मण की मुद्रा अभी भी कुछ उग्र थी। सीता सहज हो चुकी थीं।

'आओ चलें।" राम ने अपना धनुष उठा लिया "उदघोष तथा उसके साथी हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आश्रम पहुंचकर उन्हें शस्त्रागार की रक्षा के दायित्व से मुक्त करना है।'

अपने-अपने विचारों में खोए सब लोग आश्रम की ओर बढ़े। कोई किसी से बात नहीं कर रहा था। केवल यान्त्रिक रूप से आगे पीछे चलते जा रहे थे।

आत्मलीन राम के मन में पिछले तीन दिनों की घटनाओं की स्मृतियां थीं—कितना आकस्मिक था सब-कुछ। किसने घटनाओं के इस रूप की कल्पना की होगी। अयोध्या में घटित घटनाओं के विषय में राम उत्सुक थे। मन में अनेक आशंकाएं थीं। जैसे-जैसे भरत के निकट आने के समाचार मिलते जा रहे थे जिज्ञासाओं की भीड़ भी बढ़ती गयी थी। तीन दिन पहले वन्य-पशुओं में सहसा भगदड़ मच गयी। चित्रकूट पर चारों ओर से धूल ही धूल उड़ने लगी। निकट के विभिन्न आश्रमों से सूचनाएं मिलीं कि भरत की सेना आ पहुंची है। लक्ष्मण ने कवच कस लिया और अनेक दिव्यास्त्रों से सज्जित हो गए। उन्होंने आश्रम के पिछले भाग से मुखर को उदघोष के ग्राम की ओर दौड़ा दिया कि वह विभिन्न ग्रामों तथा आश्रमों में से सशस्त्र युवकों को एकत्रित कर शीघ्रातिशीघ्र पहुंचे।

" सशस्त्र युवक-संगठनों ने तनिक भी विलंब नहीं किया। उदघोष ने इतने युवक एकत्रित कर लिए थे कि वे आश्रम की अच्छी तरह व्यूह-बन्दी कर सकते थे। किंतु युद्ध की आवश्यकता नहीं पड़ी। भरत की सेना आश्रम से दूर ही रुक गयी थी। निकट आते ही भरत राम के चरणों पर गिर पड़े थे।

राम अपनी कुटिया के द्वार पर आकर रुक गये।

'आश्रम के नये सदस्यों के रहने की क्या व्यवस्था होगी सौमित्र ?'

'हम तुरंत निर्माण-कार्य आरंभ कर देते हैं भैया।' लक्ष्मण बोले 'किंतु आज की रात उदघोष की कुटिया तथा अतिथिशाला से ही काम चलाना होगा।'

हम ग क्या तात्पय है लक्ष्मण ? राम मुसकराए, कही तुम इन लागो को तो निर्माण-काय म नही लगाना चाहत ? व आहत है। उन्ह अभी शारीरिक श्रम नही करना चाहिए।'

नही, आय!' जय बोला, हम इतन अक्षम नही है कि आय सौमित्र की कोई सहायता न कर सकें। राक्षसो न हमारी हड्डिया न तोडन की कृपा अवश्य दिखाई है।

नही! कुटीर निर्माण काय मैं और मुखर कर लेंगे। लक्ष्मण मुसकराए इन्ह कवल मनोरजनाथ हमारा हाथ बटाना होगा।

अच्छा! जाओ।

लक्ष्मण इत्यादि को भेज, राम सीता क साथ कुटिया क भीतर आए। सीता बिना कुछ कह भोजन की व्यवस्था म लग गयी और राम की चिंतन प्रक्रिया फिर चल पडी— भरत न आत ही अपना अभिप्राय कहा। वे राम, लक्ष्मण तथा सीता को अयोध्या लौटा ले जाना चाहत थे। वे नही चाहत थे कि अयोध्या के राज-परिवार की परस्पर अविश्वास की परपरा और आगे बढे, और भरत के राज्य को युधाजित के आतक का विस्तार माना जाए। वे नही चाहते थ कि अयोध्या म फिर कोई दु स्वप्नो और आशकाओ स पीडित होकर वसे प्राण त्यागे जसे सम्राट दशरथ ने त्यागे थ

'भरत अयोध्या और मिथिला क राज परिवार मत्रि परिषद पुरोहित वग, प्रमुख प्रजाजन सनापति सनिक परिषद तथा सेना की अनेक टुकडिया लकर उन्ह लिवाने आये थे। वे तत्काल राम का राज्याभिषक करना चाहते थ। किंतु एक बात के लिए भरत एकदम सजग नही थ। भरत के साथ-साथ भरद्वाज वाल्मीकि तथा अनक ऋषि भी आए थे। जो ऋषि आ नही पाए थे—राम जानते थ—उनके चर आश्रम के चारो ओर मडरा रहे थे। वे भयभीत थे कही राम भरत की बात न मान लें। जब सपूण राजवश एक स्वर म कह रहा था कि राम अयोध्या लौट चलें—एक भी ऋषि इस इच्छा का समथन नही कर रहा था

अत म भरत को निराश लौट जाना पडा। अयोध्या से लायी गयी राजसी खडाऊओ को वे राम के चरणो से छुआ भर सके, उन्ह पहना नही

मरे।

' किंतु इन तीन दिनों में जब वे अपने पारिवारिक मनोमालिन्य को दूर कर रहे थे—इस वन में कितना कुछ कलुषित और भयंकर घट गया था। यदि राम राजकीय मर्यादाओं में घिरकर जन सामान्य से दूर न हो गए होते तो कदाचित राक्षस वह सब नहीं कर सकते जो उन्होंने किया। भविष्य में राम को ध्यान रखना होगा कि वे किसी भी कारण से जन सामान्य के लिए अनुपलब्ध न हो जाएं नहीं तो उन जैसे जन नेता और उन विलासी शासकों में क्या भेद रह जाएगा जो अपनी सुख-सुविधाओं के वंदी होकर जनता की असुविधाओं को अनदेखा कर जाते हैं

राम ने कुटिया से बाहर आकर देखा—लक्ष्मण मुखर तथा पाचों ब्रह्मचारियों के साथ लकड़ियों के गट्ठरों के साथ वन से लौट रहे थे। लक्ष्मण और मुखर के कंधों पर अधिक बोझ था किंतु ब्रह्मचारियों ने भी कुछ न कुछ उठा ही रखा था। राम उन्हें टीले का चढ़ाव चढ़ते हुए साफ-साफ देख रहे थे। वे मानो उल्लास में भरे प्रसन्नतापूर्वक बातें करते हुए ऊपर आ रहे थे। उनमें से किसी को भी ऐसा नहीं लग रहा था कि अभी थोड़ी देर पूर्व ही उनके आश्रम के कुलपति अपनी शिष्य मंडली और अन्य तपस्वियों के साथ राक्षसों से भयभीत हो यह स्थान छोड़कर चले गए हैं और पीछे छूटे वे लोग जो राक्षसों के जबड़ों के बीच बैठे हैं।

तभी लक्ष्मण ने कुछ कहा और शेष सब लोग उन्मुक्त अट्टहास कर उठे।

भोजन के पश्चात वे लोग कुटिया के बाहर तनिक खुले स्थान में जा बैठे।

ये अत्रि मुनि कौन हैं ' राम ने बात आरंभ की ' जिनके पास कुल-पति अपने ऋषिकुल को लेकर गए हैं ? '

जय कुछ आगे खिसक आया आर्य मेरी स्पष्टवादिता को क्षमा करें। अभी थोड़े-से ही समय में मैंने आर्य लक्ष्मण की संगति में सीखा है कि तेजस्वी पुरुष न तो स्पष्ट कहने में संकोच करता है और न स्पष्ट बात का बुरा मानता है।

बोलो जय ! संकोच न करो।' राम मुसकराए।

'संघर्ष का आरंभ उस व्यक्ति से होना चाहिए मित्रो ! जो अत्याचार का सीधा सामना कर रहा है। जिन लोगों ने उस अत्याचार के विषय में सुना मात्र है, उनसे प्रत्यक्ष संपर्क होने का अवसर नहीं पाया, उनके मन में दाह नहीं है—अतः प्रकाश भी नहीं है। वे लोग ऐसे संघर्ष को मानसिक सहानुभूति दे सकते हैं उसमें सक्रिय योग नहीं दे सकते।'

'तो भया ! संघर्ष का आरंभ अश्व मुनि के आश्रम में नहीं जनस्थान में ही हो सकता है।

तो जनस्थान की ओर चलो।' सीता मुसकराइ।

देवि ! आप शशांक ने आश्चर्य से सीता को देखा।

ये शक्ति रूपा नारी हैं मित्रो ! राम मुसकराए तुम लोग अभी सीता को नहीं पहचानते।'

तो हम सब का जनस्थान जाना निश्चित रहा।' जय के स्वर में उल्लास था।

नहीं जय ! राम गंभीर स्वर में बोले जनस्थान में न्याय का युद्ध वहीं के निवासी लड़ेंगे। तुम चित्रकूट में ही रहोगे।'

तो यह सारा वार्तालाप

मेरी बात सुनो।' राम बोले हम अर्थात मुझ सीता तथा लक्ष्मण को अंतत दंडक वन में ही जाना है—ऐसा अयोध्या से चलते समय ही निश्चित था। मुखर का अपना घर दक्षिण की ओर है अतः वह भी हमारे साथ जाना चाहेगा। हम लोग यहां इसलिए रुके हुए थे कि हम अपनी अनुपस्थिति में घटित अयोध्या के समाचार मिल सकें। भरत की नीति स्पष्ट हो सके, और हम आगे की योजना तय कर सकें। यह कार्य अब पूर्ण हो चुका है अतः हमारा चित्रकूट छोड़ दक्षिण की ओर जाना निश्चित है

किंतु आर्य ! ' कुवलय ने कुछ कहना चाहा।

'धैर्य रखो कुवलय !' राम मुसकराए तुम लोगों को मझधार में छोड़कर नहीं जाऊंगा। हमारा जाना निश्चित अवश्य है किंतु जाने से पूर्व हम कुछ प्रबंध करना है। राक्षसी आतंक इस क्षेत्र में अभी पर्याप्त मात्रा में है। पर इतना नहीं कि मैं यहां से हिल न सकूं। उद्घाप के रूप में